नवयुग-काव्य-विमर्ष

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १९८वाँ पुष्प

नवयुग-काव्य-विमर्श

(आलोचना)

लेखक

श्रीज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

(भूतपूर्व मनोरमा-संपादक)

—:०:—

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द ३)]   संवत् १९९५   [सादी २॥)
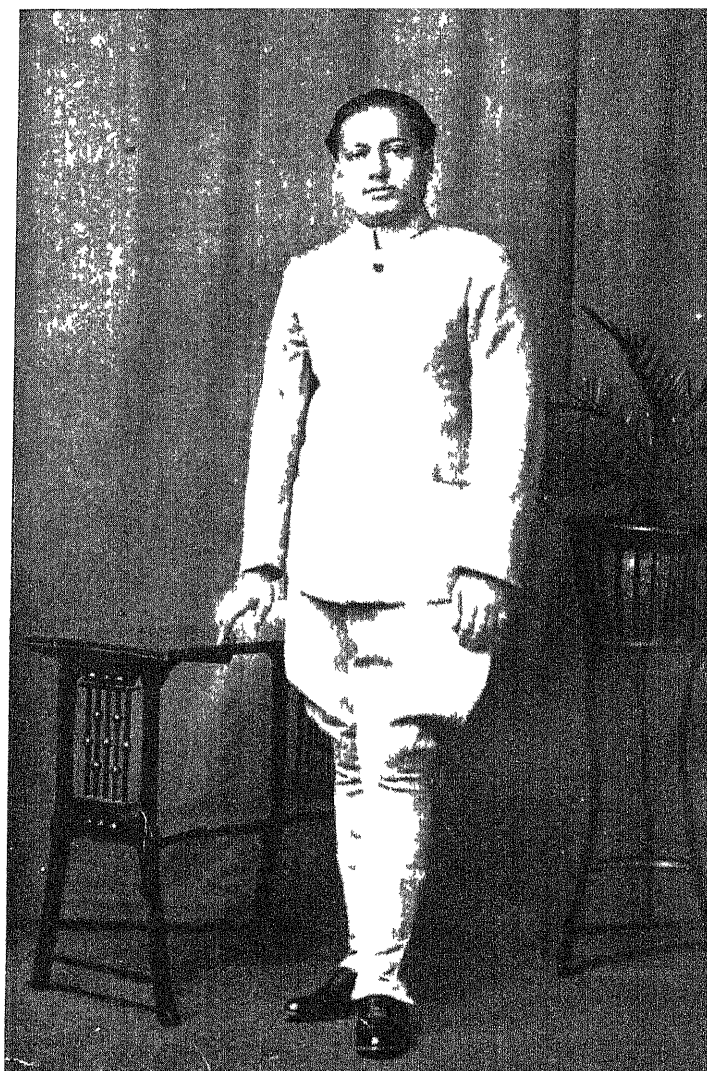
कुँवर राघवेंद्रसिहजी

कविता-कला के

सुकुमार, सुरुचि-पूर्ण रसज्ञ

श्रीमान् कुँवर राघवेंद्रसिंहजी

को

सादर समर्पित

वक्तव्य

रहस्यवाद या छायावाद की कविताएँ हिंदी-भाषा में प्रायः प्रारंभ से ही होती आई हैं। इधर बीसवीं शताब्दी में जब से खड़ी बोली की कविता करने की ओर कवियों ने अधिक ध्यान दिया, पहले भाषा के परिमार्जन और विचारों की स्पष्टता का ही खास ख्याल रक्खा। फिर ज्यों-ज्यों कवियों में विचारों और भावों की प्रौढ़ता आने लगी, त्यों-त्यों अनुभूति और कल्पना-प्रधान कविताएँ भी होने लगीं। यह काव्य-धारा ही इस समय रहस्यवाद या छायावाद के नाम से प्रसिद्ध हो रही है।

इसमें तो किसी को कुछ कहने की गुंजाइश ही नहीं कि रहस्यवाद या छायावाद की कविताएँ हिंदी-भाषा के लिये गौरव की वस्तु रही हैं, और खड़ी बोली का भांडार भी इनसे भरा जाना चाहिए। इस समय कई छायावादी कवि उच्च कोटि की काव्य-रचना कर रहे हैं, और भविष्य में उनके द्वारा सरस्वतीदेवी के मंदिर में और भी उच्च कोटि की भेंट उपस्थित किए जाने की आशा है। 'माधुरी' और 'सुधा' के प्रारंभ-काल से ही हमें इन उच्च कोटि के कवियों की प्रारंभिक रचनाएँ छापने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, और हम सदैव प्रयत्नशील रहे हैं कि नवीन काव्य-धारा की ओर भी कविगण अग्रसर हों। हम प्राचीन और नवीन, दोनो काव्य-धाराओं के, समान रूप से, सदा समर्थक रहे हैं। कारण, हमारी तो यह राय रही है कि कविता में कुछ बात होनी चाहिए, भाषा और कहने का ढंग चाहे जो हो। अस्तु। हर्ष की बात है, खड़ी बोली की कविता की उन्नति के साथ-साथ कविगण हिंदी-भाषा की छायावादी काव्य-धारा की ओर भी तेज़ी के साथ, और सुंदरता के साथ भी,

बढ़े। और, वह दिन दूर नही, जब हमारा यह साहित्य-सदन भी ससार के अन्यान्य भाषा भाडारो के समान संपन्न हो जायगा।

पर छायावाद के नाम से प्रचलित कविताओं के बारे मे कई वर्ग से बड़ा भ्रम फैल रहा है। अक्सर लोग पूछ बैठते हैं, छायावाद है क्या चीज़? इस भ्रम के दूरीकरण के लिये हमारे मन मे यह विचार आया कि छायावाद की सुदर कविताओ का एक सग्रह हम निकालें। हमने अपना यह विचार अपने एक विद्वान्, काव्य-मर्मज्ञ कवि-मित्र से कहा, और अनुरोध किया कि आप गगा-पुस्तकमाला के लिये ऐसा एक संग्रह तैयार कर दे। किंतु अन्य कार्यों में व्यस्त रहने के कारण, ५-६ वर्ष बीत जाने पर भी, इस ओर उन्होंने ध्यान न दिया। हर्ष की बात है, हमारे उपर्युक्त विचार की पूर्ति हिंदी के प्रसिद्ध लेखक और आलोचक प० ज्योतिप्रसादजी मिश्र 'निर्मल' द्वारा हो रही है। आशा है, इस पुस्तक के पाठ से हिंदी-भाषा-भाषियों के हृदयों मे छायावादी कविताओ की ओर अधिक प्रवृत्ति होगी।

इस समय हिंदी-संसार में जहाँ कहीं छायावादी कविताओं का ज़िक्र आता है, हमारा ध्यान खड़ी बोली की ओर चला जाता है। पर छायावाद या रहस्यवाद खड़ी बोली की ही कोई चीज़ नहीं। ब्रजभाषा मे भी अच्छी रहस्यवादी रचनाएँ पहले हुई हैं, और अब भी हो रही हैं। (मै 'निर्मल'जी से अनुरोध करूँगा, दूसरे सस्करण में वह वैसी कविताएँ भी दें।) ब्रजभाषा भारत की पुरानी राष्ट्र-भाषा है, अब भी एक प्रांत की भाषा है, ब्रजप्रांत में अब भी बोली जाती है, एवं उसका साहित्य भी भारत की वर्तमान सभी प्रचलित भाषाओ के पद्य-साहित्य मे अधिक संपन्न है। यदि हम खड़ी बोली के राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन हो जाने पर बँगला, गुजराती, मराठी, उर्दू आदि भाषाओं में अब भी कविता होने देना अनुचित नहीं समझते, तो फिर प्राचीन राष्ट्र भाषा, वर्तमान प्रांतीय

भाषा, पुष्ट-साहित्य ब्रजभाषा मे काव्य-रचना को भी बुरा न हमें समझना चाहिए। जो जिस भाषा को पसद करे, या जिसे जिस भाषा मे कविता करने मे सुविधा हो, उसे उसमे कविता करने देना चाहिए। आखिर भाषा है क्या? भावो, कल्पनाओ और अनुभूतियो को काव्य-प्रेमी जनता के सामने उपस्थित करने का साधन-मात्र ही तो? ब्रजभाषा भारत की ही नहीं, शायद संसार-भर की भाषाओं मे सबसे मधुर है। इसमें संक्षेप मे बात कहने का गुण भी बहुत अधिक मात्रा मे है। भावो को गुंफित करने के ऐसे श्रेष्ठ साधन को हमें अपनाए रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि अब भी ब्रजभाषा में कविताएँ होगी, तो पुराने काव्य-साहित्य से वर्तमान काव्य-साहित्य की शृंखला बनी रहेगी। हर्ष की बात है, कुछ खड़ी बोली-प्रिय छायावादी कवियों ने भी ब्रजभाषा मे छायावादी रचनाएँ की हैं। मैं तो इस पुस्तक मे वर्णित श्रेष्ठ कवियों से अनुरोध करूँगा कि इस मधुरतम भाषा मे भी अपनी अनुभूतियो और कल्पनाओं को व्यक्त करने की ओर ध्यान दें। इससे खड़ी बोली और ब्रजभाषा का विरोध कम हो जायगा, और दोनो भाषाएँ पुष्ट होती रहेंगी। गीत तो ब्रजभाषा में ही अधिक मधुर मालूम होते हैं, इसलिये वे तो अवश्य ही ब्रजभाषा मे भी लिखे जाने चाहिए। कहना न होगा, संगीत मधुर शब्दावली की अपेक्षा करता है, और यह ब्रजभाषा में ही, उसकी माधुरी के कारण, सबसे अधिक संभव है। मुसलमान संगीतज्ञों के मुख से भी आप ब्रजभाषा-गीतों को ही अधिक सुनेंगे, यद्यपि मुसलमान उर्दू-फ़ारसी के कट्टर प्रेमी होते हैं। इसका कारण क्या है?

खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रकाशवाद-प्रेमी जो विद्वान् छायावाद-काव्य के विरुद्ध, समय-समय पर, अपनी आवाज़ बुलंद करते रहते हैं, उनकी सबसे बड़ी शिकायत रहती है ऐसी कविताओं की दुरूहता और अस्पष्टता के संबंध में। दुरूहता तो कवि के अपने

लिखने की शैली या लोगो के शब्द-ज्ञान की कमी अथवा नवीन धारा से अपरिचय है, पर अस्पष्टता अधिक चिंतनीय है । वह इस बात की द्योतक है कि लिखते समय कवि के मस्तिष्क में भाव स्पष्ट न थे—उनमे सामंजस्य न था । यह सच है, छायावाद के नाम मे, जैसा कि 'निर्मल'जी ने लिखा है, बहुत-सी अनर्गल कविताएँ भी लिखी जाने लगी हैं । शायद ये कविगण कुछ छायावादी शब्द एकत्र कर देने-भर को कविता मान बैठे हैं । इसमे दोप पत्रकारो का अधिक है । ऐसी रचनाओ को उन्हें अपने पत्रो मे स्थान न देना चाहिए । प्रकाशन सुलभ न होने पर उनका लिखा जाना बहुत कुछ रुक जायगा । ऐसी कविताएँ लिखने से छायावाद का नाम तो बदनाम होता ही है, छायावाद की वास्तविक कविता की प्रगति मे भी बाधा पड़ती है । इसीलिये छायावाद की कविताएँ अब भी उतनी नही पढी जातीं, जितनी प्रकाशवाद की । यदि कविगण अपनी भाषा को कुछ सरल और स्पष्ट रखने की ओर ध्यान देंगे, तो छायावाद की कविताओ का प्रचार बढ़ेगा । मुझे तो इस ढंग की कविताओ का भी भविष्य उज्ज्वल मालूम पड़ता है । आशा है, सुंदर छायावादी कविताओं से खड़ी बोली और ब्रजभाषा, दोनो का साहित्य उत्तरोत्तर बढ़ता जायगा ।

'निर्मल'जी को ऐसी श्रेष्ठ पुस्तक लिखने के संबध मे, हम अत मे, साधुवाद देते और आशा करते हैं, भविष्य मे और कोई सुंदर पुस्तक छायावाद और छायावादी कवियो के सबध मे वह लिखेंगे ।

कवि-कुटीर
वसंत-पञ्चमी, १९९४

दुलारेलाल भार्गव

भूमिका

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने हिंदी - साहित्य में जो युगांतर उपस्थित किया, उसी के परिणाम-स्वरूप खड़ी बोली का प्रचार हुआ। पं० बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', पं० प्रतापनारायण मिश्र और श्रीदेवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि ने काव्य की गति-विधि को परिवर्तित करने में अपनी जिस योग्यता का परिचय दिया, वह हिंदी में ऐतिहासिक है। साहित्य में इस नवीन प्रगति को एकरूपता देने का श्रेय आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका को प्राप्त है। आचार्य द्विवेदीजी ने डंके की चोट पर काव्य की प्राचीन परिपाटी को वर्तमान काल में अनावश्यक बतलाकर नवीन प्रणाली का आविर्भाव किया। यही नहीं, 'सरस्वती' ने अपनी नीति यह निर्धारित की कि उसमें केवल खड़ी बोली की रचनाओं को ही स्थान दिया जायगा। इसमें सैकड़ों हिंदी-लेखकों और कवियों ने शुद्ध भाषा में गद्य-पद्य की रचना प्रारंभ की, और इतना प्रबल आंदोलन उठा कि व्रजभाषा की रचनाओं की परिपाटी खत्म-सी हो गई। इस काम में पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय, पं० नाथूरामशंकर शर्मा और पं० श्रीधर पाठक-जैसे व्रजभाषा के प्रौढ़ कवियों ने खड़ी बोली में कविताएँ लिखकर बड़ा योग दिया। इनके सिवा जिन्होंने शुद्ध भाषा में ही कविता लिखकर खड़ी बोली का मार्ग प्रशस्त किया, उनमें बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं०

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', पं० रामचरित उपाध्याय, प० कामताप्रसाद गुरु, पं० लोचनप्रसाद पांडेय और ठाकुर गोपालशरणसिंह का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बाबू मैथिलीशरण गुप्त तो इस क्षेत्र मे सर्वप्रिय है। और, सच पूछा जाय, तो इनकी अनवरत काव्य-रचना से वर्तमान कविता ने अपना एक विशिष्ट रूप निर्धारित कर लिया, और खडी बोली के काव्य की प्रगति को बड़ी सहायता मिली।

पंडित नाथूराम शंकर शर्मा ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि थे। उनकी खड़ी बोली की रचना मे शब्द-संगठन, ओज और प्रौढ़त्व उसी प्रकार वर्तमान है, जिस प्रकार उनकी ब्रजभाषा की कविताओं मे। उन्होंने अपनी एक शैली बनाई। काव्य मे शुद्ध खड़ी बोली के शब्दों के प्रयोग के साथ ही ब्रजभाषा के शब्दों के प्रयोग के वह पूर्ण पक्षपाती थे। इसी कारण खड़ी बोली के कवियों मे उनकी समता का दूसरा कवि नहीं हुआ। भाव, भाषा, प्रवाह का पूर्ण निर्वाह 'शंकर'जी की कविताओं मे पाया जाता है, यह उनकी विशेषता है। जैसे—

देखिए इमारते, मज़ारें दुनिया की सारी,
रोज़े ने कहो तो शान किसकी न रद की,
हीरा, पुखराज, मोतियों का दर दूर मारी,
'शंकर' के शंख की भी सूरत जरद की।
शौकत दिखाता यमुना के तीर शाहेजहाँ,
आगरे ने आबरू हरम की गरद की;
धन्य मुमताज़, बेगमों की सरताज,
तेरे नूर की नुमायश है चाँदनी शरद की।

इस कविता में ब्रजभाषा की काव्य-रचना का-सा पूर्ण आनंद

प्राप्त होता है, और यह शुद्ध खड़ी बोली की रचना है। इसके सिवा 'शंकर'जी ने राष्ट्रीय विषयों पर भी ओज-पूर्ण कविताएँ लिखी।

पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने खड़ी बोली की रचना मे संस्कृत-शब्दो के प्रयोग का अधिक महत्त्व दिया, और छंद भी संस्कृत के हो व्यवहृत किए। 'प्रिय-प्रवास' उनके इस सिद्धांत को प्रतिपादित करनेवाला महाकाव्य है। उपाध्यायजी की यह रचना अभूतपूर्व है, और उनकी विशेष शैली का महत्त्व प्रदर्शित करनेवाली। माधुर्य-प्रसाद से पूर्ण और करुण-रस से युक्त यह महाकाव्य वास्तव मे कवि की कीर्ति के लिये प्रचुर है—

रसमय वचनो से नाथ, जो सर्वदा ही
मम सदन बहाता स्वर्ग-मंदाकिनी था ;
श्रुति-पुट टपकाता बूँद जो था सुधा की,
वह नव ध्वनि न्यारी मंजुता की कहाँ है ?

इसके सिवा उपाध्यायजी ने अन्य दिशा की ओर भी काव्य-रचना का स्तुत्य कार्य किया है। 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' द्वारा उन्होंने हिंदी में उर्दू-तर्ज़ पर कविताएँ लिखीं। मुहावरों का सैकड़ों की संख्या मे प्रयोग करके अपना बौद्धिक चमत्कार दिखाया, किंतु 'प्रिय-प्रवास' की कोटि के ये काव्य नहीं। उपाध्यायजी की इन सभी रचनाओं से खड़ी बोली को विशेष बल प्राप्त हुआ। आपकी देशभक्ति-पूर्ण तथा अन्यान्य विषयों की कविताओं ने भी खड़ी बोली के काव्य-साहित्य को अधिकाधिक पुष्ट बनाया।

पंडित श्रीधर पाठक व्रजभाषा के सुप्रसिद्ध कवि थे, साथ ही

ही खड़ी बोली के निर्माताओं में गिने जाते हैं। 'ऊजड़ गाम', 'काश्मीर-सुखमा' आदि उनके छोटे, किंतु ब्रजभाषा के सरस और सुंदर काव्य हैं। जब उन्होंने खड़ी बोली में लिखना शुरू किया, तो वह भी ब्रजभाषा की ही भाँति शुद्ध और मँजे हुए रूप में सामने आई। हिंदी में गीत—विशेषकर भारत-गीत—लिखने की परिपाटी पाठकजी ने ही चलाई। उस समय उनके भारत-गीत बड़े लोकप्रिय हुए। यह युग खड़ी बोली का प्रारंभिक युग था। इसलिये उनके गीतों द्वारा नवनिर्मित भाषा और काव्य को प्रबल शक्ति प्राप्त हुई। पाठकजी भी खड़ी बोली में शुद्ध संस्कृत-शब्दों के प्रयोग के पक्षपाती थे, उनके गीतों में संस्कृत-शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है—

एहो ! नव-युववर, प्रिय छात्र-वृंद,
भारत - हृदि - नंदन, आनंद - कंद !
जीवन - तरु - सुंदर - सुख - फल अमंद,
भारत - आशा - उर - आकाश - चंद !

* * *

वंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अभिमानी हों ;
बांधवता में बँधे परस्पर परता के अज्ञानी हों।
निंदनीय वह देश, जहाँ के देशी निज-अज्ञानी हों,
सब प्रकार परतंत्र, पराई प्रभुता के अभिमानी हों।

पाठकजी की इस प्रकार की रचनाओं ने काव्य के तत्कालीन जीवन को एक नया जीवन प्रदान किया। देशभक्ति-पूर्ण काव्य का सृजन पाठकजी ने ऐसे समय में किया, जब साहित्य में नवीनता का संचार हो रहा था, और इसका

प्रथम खंड

(भाव-प्रधान कवि)

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीपं० माखनलाल चतुर्वेदी

१—माखनलाल चतुर्वेदी

[पंडित माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म संवत् १९४५ विक्रमीय में, मध्यप्रांत के होशंगाबाद-ज़िले के बाबई-नामक गाँव मे, हुआ। आपके पिता का नाम पंडित नंदलाल चतुर्वेदी था। ग्राम के स्कूल मे शिक्षा समाप्त करके आपने, सन् १९०३ ईसवी में, नार्मल पास किया; तदनतर आप अध्यापन कार्य करने लगे। अध्यापन के समय आपने संस्कृत, अँगरेज़ी, मराठी, गुजराती और बँगला-भाषा का भी अध्ययन किया। विद्यार्थी-अवस्था से ही आपका झुकाव साहित्य की ओर रहा, और उसका विकास आगे चलकर विशेष रूप से हुआ। उसी समय खंडवा से 'प्रभा'-नाम की मासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी, और आपकी कविताएँ उसमें छपने लगी। आपकी प्रारंभिक रचनाओ में विशेष प्रकार का उत्कर्ष था, जिसकी ओर मध्यप्रांत के प्रतिष्ठित नेता स्वर्गीय प० माधव-राव सप्रे का ध्यान आकर्षित हुआ। सप्रेजी को उस समय प्रांत में दो-एक ऐसे ही नवयुवकों की आवश्यकता थी, जो सार्वजनिक क्षेत्र मे उनका हाथ बटा सकते। आपने सप्रेजी का साथ दिया, और सार्वजनिक क्षेत्र मे कार्य करने के लिये आगे आए। कुछ समय बाद आपने अध्यापन-कार्य छोड़ दिया, फिर सप्रेजी के साथ 'कर्मवीर'-नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया, और स्वयं उसके संपादक हुए। 'कर्मवीर' के संपादन-काल में आपकी वास्तविक प्रतिभा और ओज-पूर्ण लेखन-शैली का प्रादुर्भाव हुआ। असहयोग-आंदोलन में आप जेल भी गए। तभी से सार्व-जनिक कार्यकर्ता के रूप में आप जनता के सम्मुख आए। कुछ दिन तक

आपने कानपुर से प्रकाशित होनेवाले, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा संस्थापित 'प्रताप' और 'प्रभा' का भी संपादन किया। आजकल आप खंडवा से 'कर्मवीर' का पुनः प्रकाशन और संपादन करते हैं।

पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी कविता में अपना नाम 'एक भारतीय आत्मा' रखते हैं। खड़ी बोली—विशेष रूप से नवीन काव्य अर्थात् नवीन युग—के आप प्रतिनिधि कवि हैं। आप भावुक अधिक हैं, इसलिये आपकी गद्य-पद्य-रचनाएँ भाव-पूर्ण होती हैं। आपने 'कृष्णार्जुन-युद्ध'-नाटक लिखा है। 'साहित्य देवता'-नामक गद्य-काव्य की पुस्तक अभी अप्रकाशित है। 'वनवासी' के नाम से आपने उत्कृष्ट कहानियाँ भी लिखी हैं। आपने कविताएँ काफ़ी संख्या में लिखी हैं, किंतु उनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ।]

पंडित माखनलाल चतुर्वेदी हिंदी के भावुक और हृदयवादी कवि हैं। आपकी कविता में ओज, माधुर्य और प्रसाद का सुंदर सम्मिश्रण है। आपकी प्रारंभिक रचनाएँ देखने से स्पष्ट प्रकट होता है कि वे विशेषतया ओज-पूर्ण हैं, और उनमें भावुकता का भी सुंदर सामंजस्य हुआ है। ज्यों-ज्यों आप साहित्य-क्षेत्र में अग्रगण्य हुए हैं, त्यों-त्यों भावना की प्रधानता होती गई, और कविता के विषयों में भी विभिन्नता पाई जाती है। प्रारंभिक रचनाएँ नवयुग-निर्माण का संदेश देती हैं। उनमें राष्ट्रवाद और त्याग की झलक मिलती है। किंतु इन कविताओं के अनंतर जो रचनाएँ हैं, उनमें विशेषतया भावापेक्ष हैं, और आंतरिक भावों से चित्रित हैं। भावना से उत्पन्न हुई कृतियों की संख्या अच्छी है, और उन्हीं के आधार पर आप छायावाद के प्रतिनिधि कवि भी माने जाते हैं। आपकी कविताओं से प्रेमानुभूति प्रस्फुटित होती है। मालूम होता है, कवि के जीवन में एक ऐसे प्रेम का प्रवाह बह रहा है, जो उसके

जीवन का सार है। उसी प्रेम का शुद्ध और निखरा हुआ रूप कविताओं में पाया जाता है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध काव्य-कलाकार अल्फ्रेड लॉयल ने एक स्थान पर लिखा है—"किसी काल के मुख्य-मुख्य भावों और उच्चादर्शों को प्रभावित रूप से जनता के सम्मुख रखना ही काव्य है।" इस दृष्टिकोण से आपकी राष्ट्रीय रचनाएँ काव्य के अंतर्गत आती हैं, और आपके राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण को प्रदर्शित करती हैं। प्रेमानुभूति-संबंधी और छायावादी रचनाएँ, जिन्हें हम भावात्मक कह सकते हैं, अच्छी संख्या में पाई जाती है। इस प्रकार आपकी कविताएँ तीन श्रेणी में विभाजित की जा सकती है—(१) राष्ट्रीय विचारों से युक्त, (२) प्रेमानुभूति-संबंधी और (३) रहस्यवादी (छायावादी)।

राष्ट्रीय विचारों से युक्त रचनाओं को मनन करने से पता चलता है कि आपके जीवन में देश की गरीबी और उसकी उलझनों का कितना प्रबल उद्वेग है। इन रचनाओं से मानव-जीवन के बाह्य क्रंदन की एक करुण पुकार प्रकट होती है। कवि की इच्छा जब भाव-पूर्ण विचारों की ओर उठती है, तो भी उसमें राष्ट्रीयता की पुट अन्तर्हित हो जाती है। वीरत्व, ओज इन कविताओं की विशेषता है। इस प्रकार की रचनाएँ 'प्रभा' और 'प्रताप' में अधिक प्रकाशित हुई हैं। 'बलिदान', 'उन्मूलित वृक्ष', 'सिपाही', 'मरण-त्योहार' आपकी उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचनाएँ हैं। इन रचनाओं को केवल शब्दों के आडंबर द्वारा ही ओज-पूर्ण नहीं बनाया गया, वरन् इनमें भाव भी हैं, और ये विशेष प्रभावोत्पादक हैं। कवि, कर्म में विश्वास करता है, और इसी का संदेश देता है। रचनाएँ समय की सदेश-वाहिका बन गई हैं। कर्म ही कवि का ध्येय है, और इसी के लिये 'बलिदान' कविता द्वारा लोगों को प्रोत्साहित करता है। 'कर्म पर आओ हों बलिदान!' लिखकर कवि अपनी आंतरिक प्रेरणा प्रकट

कर देता है । इस प्रकार की कविताओं मे 'पुष्प की अभिलाषा' अत्यंत प्रसिद्ध है । यद्यपि कविता में कोई ऐसा उत्कृष्ट भाव नही है, किंतु नवीनता अवश्य है, और भाव भी सामयिक । तत्कालीन (जिस समय यह कविता लिखी गई थी) कुछ नवयुवकों ने भी इसी जोड़ की कविताएँ लिखीं, इसी से इस कविता की लोक-प्रियता प्रकट हो जाती है । कविता यह है -

चाह नहीं, मै सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ ;
चाह नही, प्रेमी-माला मे बिंध प्यारी को ललचाऊँ ;
चाह नही, सम्राटों के शव पर हे हरि, डाला जाऊँ ;
चाह नहीं, देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली ! उस पथ में देना तुम फेक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक ।

इस कविता में विशेषता केवल यही है कि कवि ने एक साधारण-सी बात को सामयिकता के रंग में रँगकर अनोखा बना दिया है । इसमें नई सूझ और मौलिकता हे । 'सिपाही' कविता पढ़कर हृदय उछल पड़ता है । जिस प्रकार बंगाल में सुप्रसिद्ध कवि क़ाज़ी नज़रुल-इसलाम इसी दृष्टिकोण से अपना एक स्थान रखते हैं, उसी प्रकार 'बलिदान', 'सिपाही' और 'मरण-त्योहार' कविताओं से यह हिंदी में एक स्थान रखते हैं । 'सौदा' कविता आपकी उत्कृष्ट रचना है । राष्ट्रीय भावमय विचारों के अलंकारों की सजावट से काव्य का सौंदर्य झलक उठा है—

सोने-चाँदी के टुकड़ों पर अंतस्तल का सौदा,
हाथ-पाँव जकड़े जाने को आमिष-पूर्ण मसौदा ।

'वेदना' आपकी भावात्मक रचना है । कवि के अंतर्जगत् में जिस भाव की प्रधानता है, वह अंत में प्रकट हो जाता है, कवि उसे छिपा नहीं सका है । 'तरुण कलिका' भी भावात्मक रचना है,

किंतु अंत में उसमें राष्ट्रीय विचारों की लहर दौड़ पड़ी है। इस प्रकार अधिकांश कविताएँ ऐसी हैं, जो राष्ट्रीयता के रंग में रँगी हुई हैं—

आह! गा उठे हेमाचल पर तेरी हुई पुकार;
बनने दे तेरी कराह को सासों की हुंकार।
और जवानी को चढ़ने दे बलि के मीठे द्वार;
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इस बार—
अंतस्तल के अतल-वितल को क्यों न बेध जाते हो?
अरे वेदना-गीत, गगन को क्यो न छेद जाते हो?

(वेदना-गीत)

'जीवन-फूल' और 'बलिदान का मूल्य' भी उत्कृष्ट एवं राष्ट्रीय रचनाएँ हैं जो, बड़ी उत्कृष्ट और सजीव हैं। वेदना और दुःख का ऐसा ओज-पूर्ण सामंजस्य अन्य कवि की कविता में नहीं दिखलाई पड़ता। दुःख और वेदना का प्रभाव हृदय पर विशेष रूप से पड़ता है। देश की दुर्दशा का करुणा-पूर्ण चित्र अंकित कर कवि जन-प्रिय हो जाता है, क्योंकि उसकी रचनाओं में उस हृदय की पीड़ा का चित्रण होता है, जिस पर मानव-हृदय की आंतरिक सहानुभूति निहित है। ये रचनाएँ भाव-युक्त हैं, क्योंकि बिना भाव के कवि की रचना हृदयग्राहिणी और प्रेरणात्मक नहीं हो पाती। 'कैदी और कोकिला' कविता प्रेरणात्मक है, उसका प्रभाव हृदय पर पड़ता है, और उससे कवि की आंतरिक अभिव्यक्ति का भी दिग्दर्शन होता है। हमें जहाँ इन रचनाओं में राष्ट्रीयता का प्रबल भावावेश दिखाई देता है, वहाँ सुंदर और ओज-पूर्ण शब्दावलियों का भी आभास मिलता है। एक प्रसिद्ध समालोचक का कहना है कि कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है, यह विचार इन रचनाओं द्वारा स्पष्ट रूप से प्रमाणित होता है। इन रचनाओं में कल्पना की उड़ान कम है, और वास्तविकता की अधिक।

चतुर्वेदीजी की दूसरे प्रकार की कविताएँ प्रेमात्मक भाव-पूर्ण हैं। इन रचनाओं से ऐसा मालूम होता है कि कवि के जीवन में एक ऐसे सुंदर स्नेह का प्रवाह बह रहा है, जो चाँदनी के समान उज्ज्वल और पवित्र है। उन कविताओं का जन्म आपकी आंतरिक अनुभूति से हुआ है। कवि के हृदय में आकर्षण होता है। वह प्रत्येक वस्तु में अपने आंतरिक वैभव की झलक देखता है। साधारण-से साधारण वस्तु पर भी उसका प्रेम होता है। वह छोटी, महत्त्व-हीन वस्तुओं में भी सौंदर्य का अनुभव करता है। कवि सौंदर्य का पुजारी होता है। उसे पग-पग पर सौंदर्य दिखाई देता है। सजीव में ही नहीं, वह निर्जीव में भी सौंदर्य की खोज करता है। हमारे यहाँ ब्रजभाषा में भी प्रेम-संबंधी रचनाओं की अधिकता है, किंतु उनके प्रेम का आधार बाह्य जगत् से है। नया युग-निर्माण करनेवाले कवि का प्रेम अंतर्जगत् से संबंध रखता है, बाह्य सौंदर्य और प्रेम को वह काव्य का विषय नहीं बनाता। आपकी प्रेमात्मक कविताएँ भी इसी कोटि में आती हैं। इनका प्रेम त्याग-मूलक है। प्रेमात्मक होते हुए भी उन रचनाओं में वीरता, ओज और त्याग की भावना प्रकट होती है। कवि अपने एक प्रेमी का स्वागत करता है। प्रेमी कारागार से मुक्त हो गया है। उसने देश के लिये आत्मत्याग किया है। 'नव स्वागत' रचना में कवि कहता है—

तुम बढ़ते ही चले, मृदुलतर जीवन की घड़ियाँ भूले;
काठ खोदने चले, सहस-दल की नव पंखड़ियां भूले।
मद पवन संदेश दे रहा, हृदय-कली पथ हेर रही;
उड़ो मधुप, नंदन की दिशि में, ज्वालाएँ घर घेर रही।
'तरुण तपस्वी' आ, तेरा कुटिया में नव-स्वागत होगा;
देवी! तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होगा।

कवि का व्यक्तित्व कवि से पृथक् नहीं है। उसके अंतर की

अभिव्यक्त एक हार्दिक सहानुभूति पर स्थित है। अपनी प्रेम-संबंधी कविताओं पर एक बार बातचीत करते हुए चतुर्वेदीजी ने कहा था—"हृदय में प्रेम के प्रबल उद्वेग होने के कारण ही इन कविताओं का जन्म होता है।" यह ठीक ही है। हृदय में जब उमंग-प्रेरणा का जन्म होता है, तभी कविता का जन्म होता है। इन कविताओं में वात्सल्य और करुण-रस की अत्यत मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। 'कुंज-कुटीरे यमुना तीरे', 'लूँगी दर्पण छीन', 'माता', 'आँसू', 'खीझमई मनुहार', 'हरियाली घड़ियाँ' आपकी प्रेम-साधना की धरोहर हैं। आपकी 'माता' कविता अप्रकाशित है। वह करुण-रस से ओत-प्रोत है। 'खीझमई मनुहार' कविता में कवि ने लिखा है—

"किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका, तुझे झाँकना पाप हुआ;
आग लगे वरदान निगोडा आकर मुझ पर शाप हुआ।"

प्रेमी कवि अपने प्रेमी को हृदय-पट खोलकर झाँकता है, किंतु उसका झाँकना उसके हक में अच्छा नहीं हुआ। इन पंक्तियों में कितनी पीड़ा और वेदना है। प्रसाद और माधुर्य का भी मिश्रण है। कवि का प्रेम वासना-रहित है, माता के प्रेम के समान उज्ज्वल है। 'हरियाली घड़ियाँ' कवि की उत्कृष्ट रचना है।

कौन-सी हैं मस्त घड़ियाँ चाह की?
हृदय की पगडंडियों की राह की;
दाह की ऐसी कनक कुंदन बने,
मौन की मनुहार की है—आह की।
भिन्नता की भीत सहसा फाँदकर
नैन प्रायः जूझते लेखे गए;
बिन सुने हँसते, चले चलते हुए,
बिना बोले बूझते देखे गए।

इन पंक्तियों में प्रेमावेश का कितना खरा और वास्तविक वर्णन है। भिन्नता की भीत को एकाएक फाँदकर नेत्रों का युद्ध कराना कितना मार्मिक है।। यही नहीं, वे नेत्र बिना किसी प्रकार की बातें कहे हुए भी संपूर्ण रूप से हृदय की बात समझ लेनेवाले हैं, यह कितना वास्तविक चित्रण है। कवि ने अपने मनोभावों और अंतः-प्रेरणा को कितनी सफलता के साथ चित्रित किया है। 'लूँगी दर्पण छीन' आध्यात्मिक और प्रेमानुभूति की रचना है। शृंगार की पुट भी इसमें है, किंतु सौष्ठव और गांभीर्य से पृथक् नहीं है। 'स्मृति के मधुर वसंत' कविता सुंदर, मर्म-स्पर्शी है। 'स्मृति के मधुर वसंत' का स्वागत करते हुए कवि ने हृदयजनित मर्म का चित्रण बड़ा सुंदर किया है। इस प्रकार आपकी प्रेम-पंबधी भाव-पूर्ण कविताओं की अच्छी संख्या है। और, उनमें अलौकिक प्रेम की उस वेदना और भावावेश का चित्रण मिलता है, जो भावुक जनों का हृदय बरबस खींच लेता है।

चतुर्वेदीजी की तीसरी प्रकार की रचनाएँ रहस्यवादी, आध्यात्मिक या छायावादी हैं। किंतु ऐसी रचनाओं की संख्या कम है। इसका कारण यह है कि चतुर्वेदीजी श्रेष्ठ राष्ट्रवादी हैं, ओजस्वी वक्ता हैं, और राष्ट्रीयता उनके जीवन के प्रत्येक पल में साथ रहती है। यह स्वाभाविक बात है कि जीवन का झुकाव जिधर होता है, उधर ही भाषा-भाव का भी झुकाव होता है, किंतु हृदय के भावना-प्रधान होने के कारण आपकी रचनाओं पर रहस्यवाद की स्पष्ट और सुंदर छाप है। कबीर ने अपनी रचनाओं में रहस्यवाद का अन्यतम रूप स्थिर किया है। चतुर्वेदीजी की कविताएँ आध्यात्मिक भी हैं, किंतु उनकी संख्या थोड़ी है। जो हैं, वे उच्च कोटि की हैं। आपकी रहस्यवादी कविताओं में 'सीम', 'असीम', 'व्यक्त', 'अव्यक्त', 'शेष', 'अशेष', 'जीवात्मा', 'परमात्मा' का स्वरूप दिखाई देता है। कवि आश्चर्य से कहता है, किंतु निर्णय नहीं कर सकता—

अजब रूप धरकर आए हो, छवि कह दूँ, या नाम कहूँ;
रमण कहूँ या रमणी कह दूँ, रमा कहूँ या राम कहूँ।

* * *

अरे अशेष! शेष की गोदी तेरा बने बिछौना-सा;
आ मेरे आराध्य! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना-सा।

कवि का आध्यात्म दुरूह है। समझ में कठिनता से आता है। इसलिये, हमारी सम्मति में, आपकी रहस्यवादी कविताएँ अस्पष्ट और दुर्बोध हैं। कबीर ने भी अपने रहस्यवाद में 'जीवात्मा' और 'परमात्मा' आदि का रूप प्रकट किया है, किंतु आजकल की इस प्रकार की रहस्यवादी रचनाएँ समझ में कठिनाई से आती हैं। दुर्बोधता कविता का अवगुण है। चतुर्वेदीजी की कुछ रहस्यवादी कविताएँ सरल हैं, किंतु वह सरलता कविता के बीच-बीच में प्रकट हुई है। लेकिन जो कविता केवल 'वाद' से युक्त है, वह दुर्बोध है। जैसे—

भूली जाती हूँ अपने को प्यारे, मत कर शोर;
भाग नहीं, गह लेने दे तेरे अंबर का छोर।

यह भाव सरल है, और रहस्यवाद से परे नहीं है, किंतु—

लूँगी दर्पण छीन, देख मत ले मतवाला चल जाए;
जिन पलकों पर गिरे कई, मत उन पर चढ़े फिसल जाए।
लूँगी दर्पण छीन, द्वैत दोनो बिन एक न हो जाए;
और निगोड़ी जीभ ओंठ को कहीं न श्रीहत कर पाए।

आदि पंक्तियाँ अत्यंत दुरूह हैं। इसमें 'द्वैत', 'अद्वैत' की बातें समझ में नहीं आतीं। कविता अवश्य उच्च कोटि की है, और भाव-पूर्ण भी है, समझाने पर समझ में आ भी सकती है, किंतु दुरूहता से आध्यात्मवाद या रहस्यवाद का मज़ा नहीं मिल सकता। नायक दर्पण देख रहा है, और नायिका भी वहाँ पहुँच गई, और कह रही है। किंतु यदि इस कविता में सरलता होती, तो सोने

में सुगंध थी। इतना सब होते हुए भी हम चतुर्वेदीजी की रहस्यवादी रचनाओं की महत्ता कम नहीं समझते। समझ में न आती हो, किंतु उनमे अनुभूति है, प्रेरणा है और वे हृदय से निकली हुई हैं। 'कुटी-निवास, फकीरी बाना, नाथ-साथ-सा मोद कहाँ।' पंक्ति जो कवि लिख सकता है, वह वास्तव मे निःस्पृह और अभिव्यक्त-अनुभूतियों का केंद्रस्थल है।

आध्यात्मिक या रहस्यवादी कविताओं के सिवा चतुर्वेदीजी ने प्राकृतिक विषयों पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। 'सतपुड़ा शैल के एक झरने को देखकर', 'प्रभात' रचनाओं के द्वारा आपके प्रकृति-प्रेम का परिचय भी मिलता है। 'झरने' के वर्णन में कल्पना का सौंदर्य उद्भूत होता है —

किस निर्झरिणी के धन हो, पथ भूले हो किस घर का?
है कौन वेदना बोलो, कारण क्या करुण-स्वर का?

'प्रभात' का वर्णन भी अत्यंत सुंदर किया है। शब्दों की मधुरता और ओज से हृदय उद्वेलित हो उठता है--

चल पड़ी चुपचाप 'सन-सन-सन' हुआ,
डालियों को यों चिताने-सी लगी —
पुतलियाँ - कलियाँ अरी, सो लो ज़रा,
लिपटना छोड़ो—मनाने - सी लगीं।

अपनी स्वर्गीय पत्नी के वियोग में आपने 'आँसू' कविता लिखी है। 'आँसू' अंतस्तल की पीड़ा, कल्पना और भावना से युक्त है। अभिव्यक्ति की व्यंजना मार्मिक ढंग से हुई है।

यह तो आपके कविता-संबंधी विचारों की बातें हुईं, अब कविता की मधुरता और शब्द-विन्यास पर भी दृष्टि डालना चाहिए। हमने पहले ही कहा है कि चतुर्वेदीजी राष्ट्रीय ओजस्वी वक्ता

हैं। इसीलिये आपकी शैली और शब्द-योजना में भी वक्तृत्व-शैली की छाप है। शब्दों का प्रयोग ओजस्वी होता है, इसीलिये मधुरता की कमी है। अलंकारों की भी छटा दिखाई देती है। कहीं-कहीं शब्दों का प्रयोग इतनी विचित्रता से किया गया है कि रचनाओं का अर्थ अस्पष्ट हो गया है। आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली नहीं है। इसका कारण केवल आपके हृदय का भावना-प्रधान होना और 'कृष्ण' की अगाध भक्ति की ओर झुकाव है। उर्दू-शब्दों का प्रयोग भी आप अधिकता से करते हैं। कहीं संस्कृत के 'नयनाऽमृत'-जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है, तो कहीं-कहीं 'ग़रूर', 'क़ीमत' आदि उर्दू-फ़ारसी शब्दों का भी प्रचुरता से प्रयोग किया है। 'ही' को हृदय के स्थान में प्रयोग किया है।

इस प्रकार भाषा के दृष्टिकोण से आपकी रचना अव्यवस्थित है। कुछ लोगों का कथन है कि काव्य का वास्तविक तत्त्व भाव है, शब्द नहीं। किंतु यदि भाव के साथ-साथ शब्दों के संगठन और उचित प्रयोग की ओर भी कवि का ध्यान रहे, तो बहुत ही सुंदर है। इन्हीं कारणों से व्याकरण-दोष भी कहीं-कहीं प्रकट होता है। किंतु शब्दों में जो ओज और प्रभाव है, वह कविता की एक ख़ास शैली और विशेषता है।

अंत में चतुर्वेदीजी के काव्य-संबंधी विचार भी हमें जान लेना चाहिए। आपने एक स्थल पर कहा था—"जब हृदय में प्रेम का प्रबल उद्रेक होता है, उसी समय कविता का जन्म होता है, चाहे वह शब्दों में भले ही चित्रित न हो।" कविता के भविष्य के संबंध में आपकी धारणा है—"उसका [illegible]र वर्तमान गद्य-सा हो जायगा। कुछ हृदय के मर्म-स्थल को स्पर्श करनेवाले वाक्य ही कविता कहलाने लगेंगे।" आपने श्रीवियोगी हरि द्वारा लिखित 'ठंडे छींटे'-नामक पुस्तक की जो भूमिका लिखी हैं, उसमें आपके हृदय के भाव-पूर्ण

विचार अंकित हुए हैं। वह गद्य नहीं, गद्य-काव्य का एक अन्यतम उदाहरण है। श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर के विश्व-बंधुत्व के संबंध में आपका कहना है—"विश्व-बंधुत्व की कल्पना उस समय के पश्चात् ही की जा सकती है, और की भी जानी चाहिए, जब हम अपनों में ही पर्याप्त बंधुत्व स्थापित कर लें।" यही दृष्टिकोण आपकी रचनाओं मे भी पाया जाता है।

इस प्रकार चतुर्वेदीजी वर्तमान नवयुग-निर्माण के एक प्रतिनिधि कवि और राष्ट्रीय व्यक्ति हैं। आप अपने को छिपाते अधिक हैं, इसीलिये शायद आपके काव्य का कोई संग्रह हिंदी-संसार में नहीं आ सका। आपकी रचनाओं में जो कुछ विशेषता है, वह दूसरे किसी भी कवि में नहीं है। राष्ट्र-सेवा के गीत गाते हुए प्रेमात्मक और रहस्यवादी रचनाएँ लिखनेवाले आप हिंदी के प्रथम कवि हैं, और आपका उच्च स्थान है। रचनाओं में आधे से अधिक मानसोन्मादिनी और अंत:प्रेरणा से निकली हुई है, जो विशेष महत्त्व की है।

यहाँ कुछ कविताएँ दी जाती हैं, जो काव्य की दृष्टि से उत्तम हैं, और चतुर्वेदीजी के आदेश से हमें प्राप्त हुई हैं—

तरुण कलिका से—

री सजनि, वन-राजि की शृंगार।

समग्र के वन-मालियों की क़लम के वरदान,
डालियों, काँटों-भरी के ऐ मृदुल अहसान,
मुग्ध मस्तों के हृदय के मुँदे तत्त्व अगाध,
चपल अलि की परम संचित गूँजने की साध;
बाग़ की बाग़ी हवा की मानिनी खिलवाड़,
पहनकर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़।

खोल मत निज पंखियों का द्वार,
री सजनि, वन-राजि की शृंगार।
आ गया वह वायु-वाही, मित्र का नव राग,
बुलबुलें गाने लगी हैं—जाग प्यारी, जाग !
प्रेम-प्यासे गीत गढ़ तेरा सराहें त्याग,
रागियों का प्राण है, तेरा अतुल अनुराग,
पर न वनदेवी, न संपुट खोल, तू मत जाग,
विश्व के बाज़ार में मत बेच मधुर पराग !
खुली पंखड़ियाँ कि तू बे-मोल ;
हाट है यह ; तू हृदय मत खोल।
वृक्ष के अंतर्हृदय की री मृदुलतर शक्ति,
फलों की जननी, सुगंधों की अमर अनुरक्ति ;
छोड़ तू बड़भागिनी, ये उभय लालच छोड़ ;
आज तो सिर काटने में हो रही है होड़ ;
अरी व्यर्थ नहीं कि प्रियतम माँगता है दान ;
ले अमर तारुण्य अपने हाथ, हो क़ुरबान।
मिटेंगी ?—मिट जायँ चंचल चाह,
मुँदी रह ; तू हो न अरी, तबाह।
हँस रही है और ? हँस लें ख़ूब, तू मत बोल,
भोगियों के चरण की कुचलन बनाकर मोल—
तुच्छ से अनराग पर वे खो रही हैं त्याग ;
राग पर उनके हुआ अपमान भोगी बाग़।
चाह तेरी भी बनेगी, नाश का गोदाम ?
क्या तुझे भी चाहिए तारुण्य का नीलाम ?
सँभल, अलिगण छू न पायँ पराग,
भैरवी सोरठ समझ, मत जाग।

क्या कहा—"कैसे सहूँ इस कोकिला की हूक ?
और मैना की मधुरता कर रही दो टूक ?
मृदुल चिड़ियों की चहक पर महक है बेचैन ?
यह सवेरे की हवा, आ गई बनकर मैन ?"
ठीक है, तब भी छिड़े तेरा प्रलय से जग ;
री प्रसादिनि, हो न तेरा वह तरुण-तप भंग ।
भावुकों के ऐ अमित अभिमान,
जाग मत, अब पर न कर अवमान ।
मित्र के कर फेंकते तुझ पर सुनहली धूल ;
डालि पर तेरी रही निर्दय मुनैया झूल ।
कर रहे तुझको हवा पत्ते अपनपा भूल ;
कामिनी का दे रहा झाड़ें प्रमत्त दुकूल ।
पर न इनकी मान तू, हैं शाप ये वरदान,
हिम-किरीटिनि ने मँगाए हैं सखी तव प्राण ।
बिना बोले, मातृचरणों डोल ;
और उस दिन तक, हृदय मत खोल ।
जब सिपाही उठे, सेनानी उठे ललकार ;
मातृ-बंधन-मुक्ति का जिस दिन मने त्यौहार ।
जब कि जन-पथ लाल हों, हो किसी को तलवार ;
आयगा शिर काटने उस दिवस माला-कार ।
करेगा हुंकार कलियाँ बंद, हों तैयार ;
सूजियों से छेदने में आज उनकी बार ।
यह मधुर बलि, हो विजय का मोल ;
मानिनी, तब तक हृदय मत खोल ।
हिम-किरीटिनि की परम उपहार ;
री सजनि, वन-राजि की शृंगार ।

स्मृति के मधुर वसंत

पधारो, स्मृति के मधुर वसंत ;
शीतल - स्पर्श, मद, मदमाती,
मोद - सुगंध लिए इठलाती,
वह काश्मीर - कुंज - सकुचाती
निःश्वासों की पवन प्रचारो। स्मृति के०

तरु अनुराग, साधना डाली,
लिपटी प्रीति - लता हरियाली,
विमल अश्रु - कलिकाएँ उन पर—
तोड़ूँगी—ऋतुराज, उभारो। स्मृति के०

तोड़ूँगी ? ना, खिलने दूँगी,
दो दिन हिलने - मिलने दूँगी,
हिला - डुला दूँगी शाखाएँ—
चुने सकल संसार उचारो! स्मृति के०

आते हो ? वह छवि दरसा दो,
मेरा जीवन - धन हरषा दो,
तोड़ - तोड़ मुकता बरसा दो,
डूबूँ-तैरूँ, सुध न बिसारो। स्मृति के०

दोनो भुजा पकड़ ले पापी,
तू जलधर मैं बनी कलापी,
कर दो दसो दिशा पागलिनी,
ज्ञान जरा-जर्जरता टारो। स्मृति के०

भीजे अम्बरवाले ख्याली,
चढ़ तरुवर की डाली - डाली
उड़ें, चलो मेरे वनमाली !
पगली कह तुम वहाँ पुकारो ! स्मृति के०

नहीं, चलो हिल - मिलकर फूलें,
बने विहंग, झूलने झूलें,
भूलें आप, भुला दें जग को,
भू-मंडल पर स्वर्ग उतारो । स्मृति के०

नहीं, चलो, हम हों दो कलियाँ,
मुसक - सिसक होवें रंगरलियाँ,
राष्ट्र - देव रँग रँगी सँभालो !—
कृष्णार्पण के प्रथम पधारो । स्मृति के०

लूँगी दर्पण छीन

लूँगी दर्पण छीन, देख मत ले मतवाला चला जाए,
जिन पलकों पर मिटे कई, मत उन पर चढ़े फिसल जाए !

❀ ❀ ❀

लूँगी दर्पण छीन, द्वैत दोनों बिन एक न हो जाए,
और निगोड़ी जीभ, ओंठ को कहीं न श्री-हत कर पाए ।

❀ ❀ ❀

लूँगी दर्पण छीन, न ढुलके नयनामृत गालों पर,
मत खारा पानी पड़ जाए यौवन के छालों पर ।

❀ ❀ ❀

लूँगी दर्पण छीन, शरण आने पर ढीठ गुरूर करे,
अंतस्तल की चंगुल से फिसला दे, चकनाचूर करे।

❀ ❀ ❀

लूँगी दर्पण छीन, कुटी का एकमात्र शृंगार,
सूरत की क़ीमत ?—हँस खोले मधुर अंत का द्वार !

❀ ❀ ❀

अरे विमल जानेवाले जीवन, कैसी है मीन ?
कृष्णार्पण ! चलने से पहले लूँगी दर्पण छीन।

कुंज-कुटीरे, यमुना-तीरे !

कौन गा उठा ? अरे, करे मत ये पुतलियाँ अधीर;
इसी क़ैद के बंदी हैं वे श्यामल-गौर-शरीर।
पलकों की चिक पर हृत्तल के छूट रहे फ़व्वारे;
निःश्वासें पंखे झलती हैं, उनसे मत गुंजारे।
यही व्याधि मेरी समाधि है, यही राग है त्याग;
क्रूर तान के तीखे शर, मत छेदे मेरे भाग।
काले अंतस्तल से छूटी कालिंदी की धार;
पुतली की नौका पर लाई मैं दिलदार उतार।
बादवान तानी पलकों ने, हा ! यह क्या व्यापार;
कैसे ढूँढ़ूँ, हृदय-सिंधु में छूट पड़ी पतवार।
भूली जाती हूँ अपने को, प्यारे, मत कर शोर;
भाग नहीं, गह लेने दे तेरे अंबर का छोर।
अरे, बिकी बेदाम कहाँ मैं, हुई बड़ी तक़सीर;
धोती हूँ, जो बना चुकी हूँ पुतली पर तसवीर।

डरती हूँ, दिखलाई पड़ती तेरी उसमें वंशी,
'कुंज-कुटीरे, यमुना-तीरे' तू दिखता यदुवंशी !
अपराधी हूँ, मंजुल मूरत ताकी हा ! क्यों ताकी ?
वनमाली ! हमसे न धुलेगी ऐसी बाँकी झाँकी !
क्यारी खोदकर मत देखे, वे अभी पनप पाए हैं,
बड़े दिनों में, खारे जल से, कुछ अंकुर आए है।
पत्ती को मस्ती लाने दे, कलिका कढ़ जाने दे;
अतर तर को अंत चीरकर अपनी पर आने दे।
ही-तल बेध, समस्त खेद तज, मैं दौड़ी आऊँगी;
'नील-सिंधु-जल-धौत-चरण' पर चढ़कर खो जाऊँगी।

खीझमयी मनुहार

किन बिगड़ी घड़ियों में झाँका ?
　　तुझे झाँकना पाप हुआ;
आग लगे, वरदान निगोड़ा
　　मुझ पर आकर शाप हुआ !
जाँच हुई, नभ से भूमंडल
　　तक का व्यापक नाप हुआ;
अगणित बार समाकर भी
　　छोटा हूँ, यह संताप हुआ।
अरे अशेष ! शेष की गोदी
　　तेरा बने बिछौना-सा;
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ
　　मैं भी तुझे खिलौना-सा।

वेदना-गीत से

कंपन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
मारुत ही क्यों, तरुवर-कुंजों में न बिलम पाते हो ;
और पक्षियों की तानों से ज़रा न टकराते हो।
टेकड़ियों के द्वार कहो, कैसे चढ़कर आते हो ?
आते-जाते हो, या मुझमें आकर छिप जाते हो ?
अमित की मति सी परम गँवार
आह की मिटती-सी मनुहार
पूछती है तुमसे दिलदार—
कौन देश से चले ? कौन-सी मंज़िल पर जाते हो ?
कसक, चुटकियों पर चढ़कर क्यों मस्तक डुलवाते हो ?
कंपन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
क्या बीती है ?—आ जाने दो उसको भी इस पार ;
क्यों करते हो लहराने का भूतल में व्यापार ?
चट्टानों से बनी विंध्य की टेकड़ियों के द्वार—
वायु-विनिंदित तरुणाई पर तैर रहे बेकार।
छटपटाहट को यों मत मार,
पहन सागर लहरों का हार,
खोल दे कोटि-कोटि हृद्द्वार,
कहाँ भटकते, लेते प्राणों को बन राग बिहाग !
शीतल अंगारों से विश्व जलाने क्यों जाते हो ?
कंपन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
किसके लिये छेड़ते हो अपनी यह तरल तरंग ?
किसे डुबोने को घोला है यह लहरों पर रंग ?
कोई गाहक नहीं, अरे, फिर क्यों यह सत्यानास ?
बाँस, काँस कुस से सहते हो लहरों का उपहास ?

अरे वादक, क्यों रहा उँड़ेल,
खेलता आत्मघात का खेल,
उड़ाता व्यर्थ स्वरों का मेल,
यह सब है किसलिये बिना पंखों की मृदुल उड़ान ?
दूर नहीं होते, माना, पर पास भी न आते हो ?
कंपन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?
मानूँ कैसे ? कि यह सभी सौभाग्य सखे, मुझ पर है,
है जो मेरे लिये, पास आने में किसका डर है ?
मेरे लिये उठेगी आशाओं में ऐसी ध्वनियाँ,
करुणा की बूँदें, काली होगी उनकी जीवनियाँ !
अरे, वे होंगी क्यों उस पार,
यहीं होंगी पलकों के द्वार,
पहन मेरी श्वासों के हार,
आह, गा उठे, हेमांचल पर तेरी हुई पुकार—
बनने दे तेरी कराह को परसों की हुंकार।
और जवानी को चढ़ने दे बलि के मीठे द्वार,
सागर के धुलते चरणों से उठे प्रश्न इस बार—
अंतरतल से अनल-वितल को क्यों न वेध जाते हो ?
अजी वेदना-गीत, गगन को क्यों न छेद जाते हो ?
उस दिन ? जिस दिन महानाश की धमकी सुन पाते हो,
कंपन के तागे में गूँथे-से क्यों लहराते हो ?

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीराय कृष्णदास

२—राय कृष्णदास

[श्री राय कृष्णदास का जन्म संवत् १९४९ विक्रमीय में, काशी के प्रतिष्ठित और प्राचीन अग्रवाल-कुल में हुआ । आपके पूर्वज शाही ज़माने में 'राय' की उपाधि से युक्त हुए थे । आपके पिता का नाम राय प्रह्लाददास था । संस्कृत और काव्य-साहित्य की ओर उनकी विशेष रुचि थी । राय कृष्णदास को शिक्षा-दीक्षा पहले घर पर ही हुई, तदनंतर स्कूलों में । साहित्य, काव्य और कला के संबंध में आप पर आपके पिता का प्रभाव पड़ा । आठ वर्ष की अवस्था में आपने पहले-पहल छंदों की रचना की । बड़े होने पर आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू मैथिलीशरण गुप्त के संसर्ग से साहित्य-क्षेत्र में आए । 'सरस्वती' में आपकी कृतियाँ समय-समय पर प्रकाशित हुआ करती थीं । थोड़े ही दिनों में गद्य-काव्य के उत्कृष्ट लेखक के रूप में परिचित हो गए । आपने कविताओं की भी रचना की और भावुक कवि के रूप में काव्य-मर्मज्ञों में अपना एक स्थान बना लिया ।

आपने 'साधना', 'छायापथ', 'संलाप', 'प्रवाल' गद्य-काव्यात्मक ग्रंथों की रचना की । 'भावुक' और 'ब्रजरज' काव्य-पुस्तकों के सिवा 'अनाख्या' और 'सुधांशु' नाम की गल्प-पुस्तकें भी लिखी । ब्रजभाषा के भी आप सुंदर कवि हैं ।

आप जहाँ एक ओर कवि, कहानीकार और गद्य-काव्य-निर्माता के रूप में परिचित हैं, वहाँ कलाकार की दृष्टि से भी हिंदी-संसार में प्रिय हैं । बाल्यकाल ही से आपके हृदय में चित्रांकण की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई थी, और वयस्क होने पर वह 'भारत-कला-भवन' के

रूप में संस्थापित हुई। आपके जीवन की यही सर्वश्रेष्ठ कृति है। 'भारत-कला-भवन' में लगभग एक हज़ार चित्र—राजपूत, मुगल तथा कांगड़ा शैली के—हैं। इसके अतिरिक्त कला-भवन में प्राचीन मूर्तियाँ, सिक्के, प्राचीन साहित्यिक और ऐतिहासिक हस्त-लिखित ग्रंथ, सोने चाँदी की बनी हुई क़ीमती मीने की वस्तुएं, हाथी-दाँत, पीतल और अन्य धातुओं की बनी हुई तथा ऊनी, सूती एवं रेशमी प्राचीन वस्त्रों का संग्रह दर्शनीय है। 'द्विवेदी-अभिनंदन-ग्रंथ'-ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ, जो आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी को अर्पित किया गया था, आपकी ही सफल प्रेरणा का प्रतिफल है।

आपके साहित्यिक विचार बहुत स्वतंत्र और उच्च हैं। आप गंभीर साहित्यशिल्पियों में हैं। आपने उच्च कोटि के ग्रंथों के प्रकाशन के लिये 'भारती-भंडार'-नामक पुस्तक-प्रकाशन-संस्था स्थापित की है। इसके द्वारा हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखकों और कवियों के ग्रंथों का प्रकाशन हुआ है। आपका स्वभाव मनस्वी, भावुक, सहृदय और गंभीर है।]

राय कृष्णदास का काव्य भावानुभूति से पूर्ण है। काव्य के भावों से ज्ञात होता है कि वह हृदय की अनुभूतियों से उत्पन्न हुए हैं। भावावेश आपका प्रधान लक्ष्य है। उससे लोक-कल्याण की कल्पना होती है। कल्पना बड़ी पैनी और मधुर होती है। एक समालोचक ने लिखा है—"अनुभूति की मधुरता ही काव्य का जीवन है। काव्य अंतर्जगत् की वह अनहद ध्वनि है, जिसका प्रभाव हृदय पर ही पड़ता है, और हृदय ही हृदय की सहानुभूति ग्रहण कर सकता है।" ये वाक्य राय कृष्णदास के काव्य पर पूर्ण रूप से लागू होते हैं। आप कवि के रूप में हिंदी-जगत् में उतने प्रसिद्ध नहीं, जितने गद्य-काव्यकार के रूप में। इसलिये हम राय कृष्णदास के काव्य को दो विभागों में

विभाजितकर सकते हैं—एक तो भाव-पूर्ण छंदोबद्ध काव्य और दूसरा भावपूर्ण, मर्मस्पर्शी गद्य-काव्य।

छंदोबद्ध काव्य आपने थोडे ही लिखे हैं, किंतु जो कुछ भी हैं, वे अनुभूति और साधना के चिह्न हैं। आपकी काव्यात्मक पुस्तक 'भावुक' में प्रायः सभी कविताएँ छोटी, किंतु मर्मस्पर्शी और भाव-पूर्ण हैं। इसकी 'परिग्रह' कविता श्रीसुमित्रानदन पंत को अत्यंत प्रिय है। एक साधारण-सी बात को कवि ने कितनी रुचिरता और सुंदरता के साथ अंकित किया है—

तव निवास है सीप!
 अतल-तल में सागर के;
हैं प्रवाल के विपुल जाल
 भूषक जिस घर के।
पर है तेरा स्नेह दूर
 गगनस्थित घन से;
स्थिति के क्या वह मिला
 हुआ है तेरे मन से।

कवि ने एक साधारण पड़ी हुई 'सीप' की स्थिति की कल्पना कितनी सुंदरता से की है। सीप स्वाती के जल के लिये अपना मुँह खोले पड़ी रहती है। किंतु कवि ने 'स्नेह दूर गगनस्थित घन से' लिखकर एक चमत्कार और कल्पना में नवीनता उत्पन्न कर दी। 'संबंध' कविता छायावाद या रहस्यवाद की छोटी, किंतु उत्कृष्ट कल्पना है। कवि किसी प्रेमिका को उसके प्रेमी का गान निर्झर से सुनाता है। निर्झर की कल-कल ध्वनि उस प्रेमी की मधुर मंद तान के समान है, जिसे सुनकर प्रेमिका का प्राण पुलकित हो उठता है। कविता यह है—

मैं इस झरने के निर्झर में
 प्रियवर, सुनती हूँ वह गान।

कौन गान ? जिसकी तानो से
परिपूरित है मेरे प्राण ।
कौन प्राण ? जिसको निशि-वासर
रहता एक तुम्हारा ध्यान,
कौन ध्यान ? जीवन-सरसिज को
जो सदैव रखता अम्लान ।

'कौन गान', 'कौन प्राण' और 'कौन ध्यान' का प्रश्नोत्तर कितना मार्मिक, व्यंजना-पूर्ण है । प्रेम का रूपक मधुर और उज्ज्वल है। वही सच्चा प्रेमी है, जो अपने प्रिय की कल्पना प्रत्येक पल और प्रकृति के प्रत्येक कण में उसकी मधुर स्मृति की उपासना करता है । वह वृक्षों के पत्तों की मर्मर ध्वनि मे, सरिता के कल-कल में, फूलों की मुसकान में, सूर्य-चंद्र की रजत-किरणों में अपने प्रिय की मधुर मूर्ति की छाया देखता है । 'सबंध' कविता का भाव गंभीर मार्मिक, और वेदना-पूर्ण है । 'खुला द्वार' कविता का मर्म दार्शनिक है। मनोवेग का वह स्वरूप दृष्टि के सामने उपस्थित होता है, जो रवींद्र बाबू की कविता में पाया जाता है—

धूल-धूसरित चरणों का क्या है
विचार--तो है यह भूल ;
जगतीतल में और कहाँ मिल
सकती मुझे स्नेहमय धूल ।

कवि अपने प्रिय के उन चरणों की धूल को स्नेह से प्राप्त करना चाहता है । वह उसका केवल स्पर्श चाहता है, और शीश पर चढ़ाने का इच्छुक है—

पदस्पर्श से पुण्य धूलि वह
शीश चढ़ावेगी चेरी ;

प्रेम-योगिनी होने मे बस,
होगी वह विभूति मेरी।

यहाँ महाकवि रवीन्द्र की गीतांजलि का वह गीत स्मरण हो आता है, जिसमें कहा गया है—

"आमार माथा नत कोरे दाउ
तोमार चरन-धूलार तले।"

राय कृष्णदास अपनी भावनाओं को कोमल मनोवृत्ति से प्रकट करते हैं। रचनाओं में कोमलता और स्पष्टता की विशेषता है। रहस्यमयी भावना के समझने में आसानी होती है। 'खुला द्वार'-रचना प्रमाण है। आप रचनाओं का नामकरण भी भावुकता-पूर्ण करते हैं। 'खुला द्वार' का तात्पर्य है प्रकृति का खुला द्वार। 'रूपांतर' कविता का मर्म करुणोत्पादक और अभिव्यंजना-पूर्ण है। पुतलियों का वर्णन करके कवि अपनी मधुर कल्पना की मिठास से हृदय को परिप्लावित कर देता है। पुतलियाँ क्या हैं, पारावार हैं, अगाध हैं, थाह नहीं मिल सकती।

त्यो ही उनकी मै व्यर्थ थाह लेना चाहता,
मानो पूर्ण पारावार को हूँ अवगाहता।

आपकी प्राय: कविताएँ छोटी, किंतु सुंदर हैं। उनमें अंतर्जगत् की एक मधुर उमंग लहरियों की भाँति उठती हुई दिखाई देती है। कवि की भावनाओं से यह प्रकट होता है कि वह प्राचीन आर्य-नीति-निष्ठा को उसके सुसंस्कृत रूप में आचरित करता है, और प्रत्येक पल में, प्रत्येक कार्य कलाप में, स्वच्छता और सुंदरता का बहुत ध्यान रखता है। आत्मप्रकाशन ही कविताओं की विशेषता है। कवि का कार्य सौंदर्य की उपासना है। वह साधारण वस्तु में भी सौंदर्य की खोज करता है। राय कृष्णदास की कविताओं में सौंदर्य की झलक है, वह शांत

और गंभीरता से परिवेष्टित है। कोमल मनोभावों के अंकन में कवि को सफलता मिली है। सच पूछा जाय, तो वास्तविक कविता का आधार ही अनुभूति है। बिना अनुभूति के काव्य वास्तविक काव्य नहीं हो सकता। हृदय की अभिव्यक्तियाँ जब सामूहिक रूप से एकत्र होती हैं, तब वे बाह्य रूप से अक्षरों द्वारा प्रकट होती हैं। वही कविता है। राय कृष्णदास की रचना भी ऐसी ही है। ऐसा जान पड़ता है कि उनकी रचनाओं की संख्या थोड़ी शायद इसीलिये है कि उनका प्रणयन बड़ी गंभीरता के साथ किया गया है। कवि को अपना हृदय परिप्लावित करने के साथ-साथ दूसरे भावुकों के हृदयों को भी आप्लावित करने की इच्छा है। इसीलिये कविताएँ भावुकों की प्रीति-भाजन बन गई। मन की प्रेरणा को मन ही अनुभव कर सकता है।

राय कृष्णदास के काव्य का दूसरा रूप गद्य-काव्यात्मक है। उत्कृष्ट आलोचकों का कहना है कि काव्य गद्य और पद्य दोनो में होता है। यह बात ठीक भी है। काव्य का वास्तविक बोध अनुभूति और भाव-प्रकाशन-शैली से है। इसलिये यदि राय कृष्णदास के गद्य-काव्य को उत्कृष्ट काव्य के रूप में परिगणित किया जाय, तो उचित ही है। आप सबसे पहले व्यक्ति हैं, जो 'साधना' लेकर गद्य-काव्य के क्षेत्र में आए। 'साधना' रहस्यवादी भावों और विचारों की मधुर कल्पना है, जो द्विवेदी-काल के साहित्य के लिये एक नई वस्तु थी। डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी 'साधना' नामक ग्रंथ की रचना की है, वह भी दार्शनिक विचारों की एक मार्मिक और श्रेष्ठ कला-कृति है। यद्यपि शैली गद्य की है, किंतु पद्य की ही भाँति भावनाओं का आनंद मिलता है। 'साधना' के वाक्यों का समूह काव्य है, और उसका लक्ष्य उस अनंत की ओर है, जिसका दार्शनिक रहस्य है। प्रत्येक वाक्य अलंकार की मधुर ध्वनि से युक्त है। दुर्बोधता पर सरलता और स्पष्टता

की आवृत्ति है। 'साधना' पुस्तक का नामकरण भी खरे तराज़ू पर तौलकर किया गया है। इस ग्रंथ में रचनाकार की वैयक्तिक छाप है। 'साधना' का एक अंश नीचे दिया जाता है। यद्यपि यह गद्यात्मक है, किंतु काव्य के महत्व को परिलक्षित करके ही ऐसा किया जाता है—

"मैं अपनी मणि-मंजूषा लेकर उनके यहाँ पहुँचा, पर उन्हें देखते ही उनके सौंदर्य पर ऐसा मुग्ध हो गया कि अपनी मणियों के बदले उन्हें मोल लेना चाहा। अपनी अभिलाषा उन्हें सुनाई। उन्होंने सम्मति स्वीकार करके पूछा—'किस मणि से मेरा बदला करोगे?' मैंने अपना सर्वोत्तम लाल दिखाया। उन्होंने गर्व-पूर्वक कहा—'अजी, यह तो मेरे मूल्य का एक अंश भी नहीं।' मैंने दूसरी मणि उनके सामने रक्खी। फिर भी वही उत्तर। तब मैंने पूछा—'मूल्य पूरा कैसे होगा?' वह कहने लगे—'तुम अपने को दो, तब पूरा होगा।"

यह अंश गंभीर और विवेक-पूर्ण है। यद्यपि इसकी शब्दा-वली साधारण है, किंतु कवि अपनी 'मणि-मंजूषा' को 'उनके' पास ले जाता है, किंतु 'उनकी' छवि पर मुग्ध होकर 'अपने को' उत्सर्ग करने के लिये तत्पर हो जाता है। इसमें उत्कृष्ट काव्य का गुण वर्तमान है। इस दृष्टि से राय कृष्णदास उच्च कोटि के काव्यकार सिद्ध होते ह। कहानियाँ भी आपने जितनी लिखी हैं, प्रायः सभी में काव्य की धारा प्रवाहित हुई है। उनमें 'साधना' की काव्यात्मक शैली की पुट है। संस्कृत-साहित्यकारों के 'काव्य रसात्मक वाक्य'' के अनुसार इन वाक्यों में करुण और शांत रस की धारा बहती है। साथ ही अलंकारों की छटा दिखाई देती है। आपने साधारण बात को अलौकिक और चमत्कारी ढंग से कहने की सुंदर क्षमता प्राप्त की है। 'सूर्य निकल आया, और डूब गया' को 'दिन का आगमन जानकर तमो भुजंगम उदयाचल की कंदराओं में जा

छिपा। जल्दी में उसका मणि छूट गया' के रूप में लिखा जाना अधिक रुचिकर है। इसलिये आपका काव्य-चमत्कार गद्य और पद्य दोनों में विशेषता लिए हुए है।

भाषा-शैली की दृष्टि से राय कृष्णदास की रचना स्पष्ट और मनोहर है। आप पद्यों में मुहाविरों का भी प्रयोग कर देते हैं। कविता में शब्दों का प्रयोग शुद्ध खड़ीबोली का ही किया है, किंतु यदाकदा व्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। पदावली बड़ी सुंदर और मार्मिक है। हाँ, कहीं-कहीं प्रांतीय प्रयोग के कारण शब्द विकृत हो गए हैं। 'सो', 'लों' का भी प्रयोग देखने में आता है। कहीं-कहीं सीधे-सादे व्याकरण के नियमानुसार वाक्यों का प्रयोग न करके उलट फेर कर दिया गया है, किंतु उससे जहाँ एक ओर व्याकरण की शिथिलता दिखाई पड़ती है, वहाँ दूसरी ओर सौंदर्य के विकास की अधिकता हो गई है। आलंकारिक भाषा आपकी रचना की विशेषता है, और कल्पना से प्रतिभा विकसित हो गई है। शैली में धारा-प्रवाह है, रुकावट और क्लिष्टता का अनुभव नहीं होता। वाक्य सगठित और सुसंस्कृत हैं। यदि उन वाक्यों से कोई शब्द अलग कर दिया जाय, तो वाक्य विकृत-सा जान पड़ने लगता है। कला से प्रेम होने के कारण आपकी शैली में भावुकता का ऐसा सम्मिश्रण दिखलाई देता है कि उसका प्रभाव हृदय पर पड़ता है। कविताएँ सब छोटी हैं। उनमें वाक्यों और शब्दों का चयन ऐसा हुआ है कि उसे यदि साधारण गद्य में परिणत कर दिया जाय, तो गद्य-काव्य का-सा आनंद आने लगता है। 'पुतलियों पर लिखते हुए कवि का कहना है—

असित, हसित हैं, गभीर, स्निग्ध, शात हैं,
विमल, प्रशस्त, भव्य, कोमल हैं, कांत हैं।

यह कविता है, किंतु यदि छंद का विचार छोड़ दिया जाय, तो यह

एक प्रकार का सुंदर गद्य है। वाक्य-जालों में कवि अपनी साधारण ऊँची मनोवृत्ति को छिपाना नहीं चाहता। इस प्रकार राय कृष्णदास की पद्य-गद्य-शैली शब्दों, वाक्यों, अलंकारों की दृष्टि से उच्च और भावना-पूर्ण है। जहाँ कहीं भी विकृति दिखाई देती है, वह केवल आपके भावना-प्रधान मस्तिष्क के कारण ही हुआ है। 'व्रजरज' में आपकी व्रजभाषा की रचनाएँ संगृहीत हैं।

'भावुक' काव्य ग्रंथ सुंदर और भाव-प्रधान है। इसकी कविताएँ उच्च कोटि की हैं। इस पुस्तक से पाँच छंद हम नीचे उद्धृत करते हैं। इन छंदों का चुनाव श्रीसुमित्रानंदन पंत ने किया है। इन कविताओं से इनकी काव्य-रुचि, भावुकता भली भाँति प्रकट होती है—

परिग्रह

तव निवास है सीप! अतल-तल में सागर के;
हैं प्रवाल के विपुल जाल भूषण जिस घर के।
पर है तेरा स्नेह दूर गगनस्थित घन से;
स्थिति से क्या वह मिला हुआ है तेरे मन से।
उसके लिये निवास छोड़ देती तू अपना;
ऊपर आती मग्न-भाव-सुख को कर सपना।
अतल-निवासिनि, हृदय खोल जल पर तिरती है;
भारी - भारी तरल तरंगों में फिरती है।
प्रेम - नीर की झड़ी लगा देता नव घन है;
छक जाता पर एक बूँद से तेरा मन है।
इस सुख से हो मत्त, किंतु क्या तू गृह तजती;
नहीं, नहीं, फिर लौट उसे मोती से सजती।

संबंध

मैं इस झरने के निर्झर में
प्रियवर, सुनती हूँ वह गान ;
कौन गान ? जिसकी तानों से
परिपूरित हैं मेरे प्राण ।
कौन प्राण ? जिसको निशि-वासर
रहता एक तुम्हारा ध्यान ;
कौन ध्यान ? जीवन-सरसिज को
जो सदैव रखता अम्लान ।

रूपांतर

इंद्रनील-सा नीर जलद बनता है जैसे ;
नभ में विश्व-वितान-तुल्य तनता है जैसे ।
फिर मुक्ता-सम बिंदु-रूप में वर्षित होता ,
और सृष्टि का हृदय हरा हो हर्षित होता ।
उसी भाँति मेरा प्रणय हृदय-पटल बनकर अहा !
गल - गलकर दृग - नीर बन, अहोरात्र है झर रहा ।

खुला द्वार

नलिनी-मधुर-गंध से भीना पवन तुम्हें थपकी देकर—
पैर बढ़ाने को उत्तेजित बार-बार करता प्रियवर !
उधर पपीहा बोल बोलकर तुमसे करता है परिहास ;
पहुँच द्वार तक, अब क्यों आगे किया न जाता पद-विन्यास ?
यद्यपि चंद्र, तुम्हारा आनन देख विलज्जित हुआ नितांत ;
छिपता फिरता है, वह देखो, घने - घने वृक्षों में कांत ।

ऊपर - नीचे तम - ही - तम है, बंधन है अवलंब यहाँ;
यह भी नहीं समझ में आता, गिरकर मैं जा रहा कहाँ?
काँप रहा हूँ भय के मारे, हुआ जा रहा हूँ म्रियमाण:
ऐसे दुखमय जीवन से हा! किस प्रकार पाऊँ मैं त्राण?
सभी तरह हूँ विवश, करूँ क्या, नही दीखता एक उपाय;
यह क्या?—यह तो अगम नीर है, डूबा! अब डूबा, मैं हाय!
भगवन्, हाय! बचा लो, अब तो तुम्हें पुकारूँ मैं जब तक;
हुआ तुरंत निमग्न नीर मे आर्तनाद करके तब तक।
अरे, कहाँ वह गई रिक्तता? भय का भी अब पता नहीं;
गौरववान हुआ हूँ सहसा, बना रहूँ तो क्यों न यहीं?
पर मैं ऊपर चढ़ा जा रहा, उज्ज्वलतर जीवन लेकर;
तुमसे उऋण नहीं हो सकता, यह नव - जीवन भी देकर।

वीणा

हे वीणे! बता कहाँ पाया
इस दारु-खंड में मनभाया,
यह मंजु - मधुर - रव चित्तचोर?
मन पागल - सा होकर तत्क्षण,
सुनकर तेरा यह मृदु निक्वण
जाता है किसी अचिंत्य - ओर
है कहीं न जिसका ओर - छोर।
क्रम-क्रम से द्रुत, द्रुततर, द्रुततम
कर-कर कल-नृत्य-कलित-विभ्रम
तेरे ये लौह - कठोर तार
किस गुण-बल से, किस कौशल से
लेकर तेरे अंतस्तल से

वितरित करते हैं बार-बार—
तेरा आह्लाद, विषाद, प्यार!
जब किसी दूर - वासी वन में
सुरभित समीर के सन-सन में
न भी नव - कुसुमित लताकार,
यह कोमलता, शुचिता तब की,
कुछ ज्ञात नहीं जाने कब की,
न रही छिपाए किस प्रकार;
ज्यों पूर्व - सुकृत - सर्वस्व - सार!
कोई मुग्धा तापस - बाला,
मानो उत्फुल्ल सुमन - माला,
निज कर-कंजों से कच सँभाल—
जब देती थी तेरे तल में
प्रतिदिन प्रभात के कल-कल में,
क्या इसका वह माधुर्य-जाल
झंकार - रूप में है रसाल!
संकुचित, विलज्जित - से नव-नव
तेरी उस शाखा के पल्लव
पिक - कूजन सुनकर मोद मान,
हो लोट-पोट उस सुस्वर पर
करते थे मधुर - मधुर मर्मर।
क्या यह पंचम का हर्ष-गान
था किया कभी आकंठ पान?
मलयानिल को आगे करके,
पीकर पराग - मधु जी - भरके
जब - जब वसंत आया नवीन,

उसका विलास उच्छ्वास - भरित
चुपके - चुपके करके संचित
कर रक्खा था क्या आत्मलीन,
है वही गूँज यह बंध - हीन ?
लूहों को जीभें कर लप - लप,
फुंकारित फणिया-से आतप
झपटे तुझ पर होंगे सरोष।
पी लिया स्वयं उनका विष सब
है नहीं चिह्न तक जिनका अब,
हम सबके हित मधु - मधुर कोष
रक्षित रख छोड़ा है अदोष !
जाने क्यों आता है मन में,
देखा हो तुझे कहीं वन में,
मैंने प्रवास में मार्ग भूल,
अब किंतु किसी को ज्ञात नहीं,
हम-तुम दोनों मिल चुके कहीं ;
तेरी डाली ने झूल-झूल
डाला था तुझ पर एक फूल !
क्या वही मित्रतामयी सुकृति,
जो हुई विगत जीवन की स्मृति,
धरकर यह नूतन, रम्य रूप
बरबस मुझको है खींच रही,
यह हृदय - सुधा से सींच रही।
स्वर - सुमनों के - से स्तूप-स्तूप
वह बरसाती जाती अनूप।

हे साधन-सिद्धि ललित वीणे !
तू हे कल-कंठ-कलित वीणे !
मेरे जीवन में कर निवास।
तेरे निक्वण का-सा सुंदर
आनंद-भरित जीवन धरकर
क्षण-भर में ही करके विकास,
फैला जाऊँ आनंद-हास।

कब ?

प्रियतम कब आवेंगे,—कब ?
कुछ भी देर हुई, तो मेरे
सुमन सूख जावेंगे सब।
सखि, तब ये तूने किस बल पर
चुन रक्खे प्रसून अंचल-भर,
नहीं ठहर सकते जो पल-भर ?
शीघ्र सूख जानेवाले ये
सुमन सूख जावेंगे जब,
प्रियतम तब आवेंगे,— तब !
प्रियतम कब आवेंगे,—कब ?
कुछ भी देर हुई, तो मेरे
दीपक सो जावेंगे सब।
सखि, सब सजा स्नेह से खाली
दीपावलि किसलिये उजाली,
रहे न क्षण-भर जिसकी लाली ?

सत्वर सो जानेवाले ये
दीपक सो जावेंगे जब ,
प्रियतम तब आवेंगे,—तब !

वंचित

चढ़कर टूही पर, खड्डों में उतरके,
वक्र पथ सौ-सौ पार करके,
घूम-फिर हिंस्र जंतुओं से भरी झाड़ियाँ,
छान डालीं दुर्गम पहाड़ियाँ !
किंतु जिसकी थी चाह ,
पारस मिला न आह !

अंध कारागार में से छूटकर,
ऊपर से टूटकर,
हर-हर - नादिनी
दौड़ती हुई-सी जहाँ बहती थी ह्रादिनी ;
पत्थरों के साथ टकराती हुई,
विजन वनों में बल खाती हुई,
अपने किनारे आप ही थपेड़
भूपर गिराती हुई—
ऊँचे पेड़ ;
दूर तक घूम-घूम, खोज-खोज मैं थका,
पारस वहाँ भी हा ! न पा सका।

क्षुब्ध रुद्र
जान पड़ता था जहाँ भीषण महासमुद्र ;

अंत-हीन यात्रा में भटकके,
लहरें भुजंगिनी-सी उठ फुफकारकर,
पार पर
क्रोध-भरी फन-सा पटकके
त्रस्त करती थीं जहाँ,
रात-दिन खोजता हुआ हो वहाँ
घूमता फिरा मैं भूल भूख-प्यास,
छिन्न पद, छिन्न वास।
किंतु वह रत्नाकर
अंत में प्रतीत हुआ शंख-शुक्तियों का घर।
प्यासा ही रहा मैं वहाँ,
जान भी सका न वह पारस मिलेगा कहाँ।

करके प्रयत्न सभी हारके,
अंत में मैं लौटा, झख मारके।
इतने दिनों की तपश्चर्या कड़ी
जीवन की साधना कठोर यह ऐसी बड़ी
निष्फल हुई यों हाय!
बैठ गया मेरा मन भग्नप्राय।

एक दिन अतल तड़ाग के किनारे क्लांत
बैठा हुआ था मैं श्रांत।
आस-पास दूर तक शस्य-भरे,
शोभन, हरे-हरे
खेत लहराते थे,
डालों के हिंडोलों पर
बैठे हुए विविध विहगवर

कल-कल-कूजन सुनाते थे।
उठती तरंगें थीं सुनीर में
सन-सन शब्द था समीर में,
ऊपर सुनील महाकाश था;
भू पर तड़ाग में भी वैसा ही विभास था।
पत्थरों की सीढ़ी पर सुश्री-भरी
स्नान कर बैठी थी अपूर्व एक सुंदरी।
भीगा हुआ वस्त्र ही थी पहने;
धारण किए हुए सुवर्ण-रंग;
अंग-अंग
उसके बने थे स्वयं गहने!
कलित कपोलों पर छूटे हुए केश-दाम
हिल-डुल क्रीड़ा करते थे कांत, कांति-धाम।
उसमें से चूते हुए वारि-बिंदु झलमल
शोभा बरसाते थे,
प्रतिपल
नए-नए मोती प्रकटाते थे।
बायाँ पैर नीचे लटकाए नील नीर पर,
दायाँ पैर रक्खे हुए सीढ़ी के प्रतीर पर,
अपने नुकीले नेत्र नीचे किए,
पत्थर की बट्टी हाथ में लिए
एड़ी मलती थी वह बार-बार पानी डाल।
एकाएक हो गया विचित्रतर मेरा हाल!
काँप उठा सारा तन सहसा उसे निहार,
बार-बार
देखी वह बट्टी जब दृष्टि फेंक,

संशय रहा न नेक—
यत्न सब कर-कर
खोजता फिरा मैं जिसे जन्म-भर
पारस वही है, यह है वही।
मेरी तप-साधना का श्रेष्ठ फल है यही!

छोड़ निज ग्राम-गेह,
तप में तपा के देह,
रात-दिन तेरा ध्यान ही किए,
हे सुरत्न, तेरे लिये
घूमा-फिरा दूर-दूर कितना कहाँ-कहाँ,
तू तो अरे, था समीप ही यहाँ!

होने लगा मस्तक विघूर्णमान,
रत्न यह अतुल महा महान
हस्तगत कैसे कर पाऊँ मैं?
लक्ष्मि, क्या उठेगी न तू सांग निज स्नान कर,
कब तक बैठी ही रहेगी इसी स्थान पर?
पैर मलती तू और मैं हूँ हाथ मलता,
पल-पल का भी है विलंब मुझे खलता।
छोड़, अरी छोड़, इसे छाती से लगाऊँ मैं!

एकाएक करके समाप्त काम
अविराम
फेंक दिया उसने सुरत्न बीच जल में।
हँसता हुआ-सा, व्यंग्य नाद कर,
डाल मनो पानी उस मेरे महाह्लाद पर—
डूबा वह सत्वर अतल में!

बार-बार
छाती पर घूँसा मार ;
ज़ोर से मैं चीख़ पड़ा,—
सुंदरी, अनर्थ यह कैसा किया तूने बड़ा ?
तेरे हाथ में था रत्न जो अभी,
त्रिभुवन की श्री सभी
उसके समक्ष थी नितांत हेय ।
पारस निरुपमेय
फेंक दिया तूने अरी क्यों अथाह जल में ?
कैसा सर्वनाश किया तूने एक पल में !

क्षण-भर मौन रह,
नारी हँसी उच्च अट्टहास से,
और भी प्रदीप्त दंत-पंक्ति के प्रकाश से
बोला वह,—
"दोष किसे देता है अरे अपात्र ?
तेरे लिये तो था वह लोष्ट-मात्र ।
तू ही जान-बूझके छला गया,
तेरे हाथ से ही यह रत्न है चला गया !"

अक्षय स्वर-झंकार

जहाँ है अक्षय स्वर-झंकार,
प्रमद-चिर-चंचल-पारावार ;
हिलोरें लेकर अतुल, अपार
निरंतर करता जयजयकार ;

भारती का मंदिर सुमहान
गूँजता जहाँ गुणी-जन-गान,
लौट आ, न जा वहाँ रे दीन,
अकिंचन, ओ उपहार - विहीन !

करूँ क्या, लौट चलूँ निरुपाय,
कहाँ पाऊँ अवलंबन हाय !
रिक्त है यह पूजा का थाल;
हृदय में है भीषण भूचाल।
सूखकर मेरा सुमनोद्यान
हो रहा है निर्जन सुनसान।
जहाँ जैसे भी थे जो फूल,
हो गए आज चिता की धूल।
हुई यह तन्त्री भी बेकार,
अचानक टूट गए सब तार।
वहाँ जाता है तू रे दीन,
लौट आ, ओ सब साधन-हीन !

आँसुओं का वह प्रखर प्रवाह—,
हृदय का ऐसा दाहक दाह,
मर्म का इतना गहरा घाव,
साधनों का यह नृहत्ताभाव,
वेदना का यह चिर चीत्कार—
चेत उठता जो बारंबार,
गूँथ इन सबको एकाकार,
बनाकर इन सबका उपहार
रहूँगा क्या फिर भी मैं दीन,
अकिंचन और उपेक्षित, हीन ?

अरे, जब मा को होगी क्लांति,
निरंतर - वीणा - वादन-श्रांति,
उच्छ्रसित यह प्रमोद अभिराम
कभी जब लेगा कुछ विश्राम ;
उँगलियाँ होंगी विरतोद्योग
मिलेगा तब तो मुझे सुयोग !
द्वार-रक्षक, न रोक तू द्वार,
इसे ले जाने दे यह हार।
समझता है तू इसमे विषाद,
यही तो है इसका आह्लाद !
चला जा, रुक न अरे 'ओ दीन',
नहीं है तू उपहार-विहीन !

४—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

[पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म संवत् १९५४ विक्रमीय में, शाजापुर (ग्वालियर-राज्य) में, हुआ। आपके पिता का नाम पं० जमनादास शर्मा था। वह कट्टर वैष्णव और कृष्णोपासक थे। श्रीबालकृष्णजी की प्रारंभिक शिक्षा शाजापुर के स्कूल में हुई। फिर माधव-कॉलेज, उज्जैन से आपने इंट्रेंस पास किया। शाजापुर से श्रीदामोदरदास झालाणी खंडेलवाल वैश्य के संसर्ग से आपकी रुचि हिंदी-साहित्य और काव्य-रचना की ओर उत्पन्न हुई। झालानीजी महात्मा सूरदास के काव्य के बड़े मर्मज्ञ थे।

सन् १९१६ ई० में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। लोकमान्य तिलक उन दिनों देश के कर्णधार थे। इनके मन में भी कांग्रेस देखने की इच्छा उत्पन्न हुई, और कांग्रेस देखने के लिये यह लखनऊ गए। वहीं हिंदी के प्रसिद्ध कवि पं० माखनलाल चतुर्वेदी और 'प्रताप' के ख्यातनामा संपादक स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी से इनकी भेंट हुई। पं० माखनलाल चतुर्वेदी उन दिनों खंडवा से निकलनेवाली 'प्रभा' का संपादन करते थे। शर्माजी गणेशजी के दर्शनों से अधिक प्रभावित हुए। हिंदी के सुप्रसिद्ध कवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त के भी यहीं दर्शन हुए। उन्हीं के साथ यह ठहर गए। फिर श्रीगणेशशंकरजी की कृपा से इनको कांग्रेस देखने का अवसर मिला। पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी और श्रीशिवनारायण मिश्र से भी यहीं भेंट हुई। आपने यहीं लोकमान्य तिलक के दर्शन किए, और उनका चरण-स्पर्श किया। श्रीसुरेंद्रनाथ बैनर्जी का प्रभावशाली व्याख्यान सुनकर यह बड़े प्रभावित हुए, और श्रीमती एनी बेसेंट के भी यहीं

दर्शन किए। लखनऊ-कांग्रेस देखने के बाद बालकृष्णजी के जीवन में विशेष परिवर्तन हुआ। स्वर्गीय गणेशजी की कृपा को यह न भुला सके, और उनके सरल एवं आकर्षक व्यवहार का इनके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

इंट्रेंस पास कर लेने के बाद इन्होंने श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी के पास आने और कानपुर में पढ़ाई का प्रबंध करने के लिये एक पत्र लिखा। उन दिनों गणेशजी बीमार थे, जल्दी उत्तर न मिलने के कारण यह स्वयं कानपुर पहुँच गए। गणेशजी ने बड़े प्रेम से क्राइस्ट चर्च-कॉलेज में इन्हें भर्ती करवा दिया। वह स्वयं इनका ख़र्च देने लगे, और कुछ यह स्वयं ट्यूशन करके उपार्जित कर लेते थे। जिस साल यह बी० ए० फ़ाइनल में थे, उन्हीं दिनों असहयोग-आंदोलन प्रारंभ हुआ। इन्होंने कॉलेज की पढ़ाई समाप्त कर दी, और गणेशजी के प्रोत्साहन से सार्वजनिक क्षेत्र में सेवा-कार्य करने लगे। कॉलेज छोड़ने के बाद से ही यह 'प्रताप' के संपादकीय विभाग में काम करने लगे, और कई वर्ष तक 'प्रताप' और 'प्रभा' का संपादन किया। कई बार राष्ट्रीय आंदोलन में विशेष उग्रता के साथ भाग लेने के कारण इन्हें जेल जाना पड़ा। तब से अब तक बराबर 'प्रताप' की सेवा में संलग्न हैं। इन्होंने राष्ट्रीय क्षेत्र में जो उन्नति की, उसका श्रेय स्वर्गीय गणेशजी को है।

इन्होंने सन् १९१८ ई० से कविता करना प्रारंभ किया। इनकी पहली रचना, 'संतू' नाम की कहानी, मुरादाबाद से प्रकाशित होनेवाली 'प्रतिभा' पत्रिका में प्रकाशित हुई, जिसके संपादक प्रसिद्ध गल्प-लेखक श्रीज्वालादत्त शर्मा थे। फिर धीरे-धीरे राष्ट्रीय और भाव-पूर्ण कविता लिखकर हिंदी में अपना एक स्थान बना लिया। इनकी कविताओं का कोई संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ। 'विस्मृता उर्मिला'-नामक एक सुंदर काव्य भी इन्होंने लिखा है।

श्रीशर्माजी श्रेष्ठ कवि होने के साथ ही सुंदर कहानी तथा गद्य-काव्य-लेखक भी हैं। राजनीतिक लेख लिखकर हिंदी की आपने बड़ी सेवा की है।

पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताएँ भाव-प्रधान हैं, उनमें अपूर्व मादकता है, उन्माद है, और हृदय में उठनेवाली प्रेम की व्यथा है। राष्ट्रीयता से संसर्ग होने के कारण इनकी अनेक कविताओं पर सामयिकता का विशेष प्रभाव पड़ा है। साथ ही हृदय की सरसता, उन्माद और वेदना का अपूर्व सम्मिश्रण है। निराशा, वेदना और करुणा का सुंदर तथा वास्तविक चित्रण इनकी रचनाओं में हुआ है। यद्यपि कवि की पद-ध्वनि ऊबड़-खाबड़ है, राष्ट्रीयता के मार्ग का पथिक होने के कारण उसके विचारों में तारतम्यता नहीं है, शब्दों और वाक्यों में मधुरता की जगह कर्कशता ने अपना स्थान बना लिया है, किंतु आंतरिक वेदना, पीड़ा, मर्म उसके भीतर से स्पंदित होता है। 'नवीन'जी की रचनाओं को हम प्रधानतः हृदयवादी कह सकते हैं। उनमे हृदय की हूक और करुण वेदना की एक उज्ज्वलित आभा निकलती है। इनकी रचनाएँ हृदय को अधिक स्पर्श करनेवाली हैं। मस्ती, मादकता, उन्माद, इन कविताओं का विशेष गुण है। कवि अपनी हृदय-वेदना अटपटे तथा अल्हड़पने के रूप में उपस्थित करता है। कवि का क्या उद्देश्य है, कविता लिखने की ओर उसकी प्रवृत्ति क्यों है, यह बात कविताओं से प्रकट नहीं होती। हाँ, यह अनुभव अवश्य होता है कि वह अपने मन की बात सुंदरता के साथ बतला देना चाहता है; हृदय की आंतरिक पीड़ा वह सब पर प्रकट कर देना चाहता है। इनकी कविता अलमस्तों का मधुर संगीत है, जो अपनी धुन में मस्त होकर, बिना शब्दों और वाक्यों का संतुलन किए, अपना राग अलापा करते हैं। शृंगार, करुण और प्रेम का सुंदर, सौष्ठव-पूर्ण वर्णन करने में

जैसी सफलता इन्हें मिली है, वैसी अन्य कवियों को कम मिली है। भाव और अनुभूति का मिश्रण इनके काव्य में अधिक पाया जाता है। निराशा, दुःख, अकुलाहट और हृदय को उन्मत्त बना देनेवाली भावना का जाग्रत्-स्वरूप सामने उपस्थित हो जाता है। कहीं करुण क्रन्दन-ध्वनि है, तो कहीं विरह की विकल वेदना। कहीं आँसू की बूँदें हैं, कहीं उच्छ्वास है, कहीं हास और कहीं उपहास है। कहीं त्याग है, और कहीं विप्लव है। कहीं अतीत के आँख-मिचौनी-वाले दिन याद आते हैं, कहीं क्रीड़ा की उज्ज्वल रजनी में सुखद सवेरा लाने का संकेत है। कहीं अपनी प्रियतमा पर तन-मन और सर्वस्व सौंपकर कवि भिखारी बन जाता है, कहीं दीवानी दुनिया से वह ठुकराया जाता है। कहीं कवि उथल-पुथल मच जाने की तान सुनाता है, कहीं नियम और उपनियमों का बंधन तोड़कर तीव्र गति से सामयिकता की लहर में प्रवाहित होता है। कहीं कवि की वीणा में चिनगारियाँ आकर बैठ जाती हैं, कहीं हृत्तल में वियोगाग्नि लग जाने से व्याकुल होने लगता है।

कवि की वर्णनात्मक शैली भी बड़ी ओजस्विनी है। 'विस्मृता उर्मिला' वर्णनात्मक काव्य है। वर्णन में स्थान-स्थान पर वही ओज, वही मादकता, वही भाव-व्यंजना, वही मस्ती और अनुराग की स्पष्ट छाप है।

कवि की कविताओं पर यदि हम सम्यक् रूप से दृष्टिपात करते हैं, तो उसे हम तीन रूपों में पाते हैं—(१) ऐसी रचनाएँ, जो सामयिकता-पूर्ण और राष्ट्रीय विचार-धारा से प्रभावित हैं, (२) वे कविताएँ, जो वेदना-पूर्ण, शृंगार और करुण-रस-प्रधान हैं और (३) वर्णनात्मक रचना, जो भाव, विचार और कल्पना-प्रधान हैं।

'नवीन'जी की सामयिकता-पूर्ण रचनाओं में ओज, प्रसाद, प्रवाह-गुण की विशेषता है, भावना की भी पुट दी गई है। सामयिक

रचनाओं में 'विप्लव-गायन' सबसे प्रसिद्ध है। इसमें कवि की विचार-धारा बड़ी तीव्रता से बहती है। वह अपनी भावना में इतना मतवाला हो जाता है कि संसार में उथल-पुथल मच जाने की भीषण कल्पना करता है। नियम-बंधन तोड़-फोड़ डालना चाहता है। वह ऐसे नशे में चूर हो जाता है कि उसे दुनिया की कोई परवा नहीं है। संसार में ही नहीं, वह आकाश में भी प्रलय के दर्शन करने का इच्छुक हो उठता है। तारों के टूक-टूक हो जाने, आकाश का वक्षःस्थल फट जाने, माता के स्तन का अमृतमय पय काल-कूट हो जाने, आँखों का पानी शोणित की बूँद हो जाने, अंतरिक्ष में भाशक गर्जन-तर्जन की ध्वनि उत्पन्न होने की वह प्रलयकारी कल्पना करता है। बस, कवि में यही गुण प्रधान है—वह जिस प्रवाह में बहता है, उधर वह अपने हृदय के करुण-रस को निकाल-कर उँडेल देता है—

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए;
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए।
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए;
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए।
बरसे आग, जलद जल जाएँ, भस्मसात भूधर हो जाएँ;
पाप-पुण्य सदसद् भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ।
नभ का वक्षःस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ;
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।

इन पंक्तियों में पुरुषत्व का ज़बरदस्त प्रदर्शन है। ऐसा मालूम होता है कि कवि में भावना का स्रोत उमड़ा पड़ रहा है, और वह उसे सँभाल नहीं सकता। इसमें जीवन-जागृति का एक उत्कृष्ट संदेश है, हृदय का स्पंदन है, और अनियंत्रित स्वाधीनता का एक तूफ़ानी वेग।

'नवीन'जी की दूसरी उत्कृष्ट राष्ट्रीय रचना 'पराजय गीत' है। यह रचना बड़ी ही ओजस्विनी और भावना-पूर्ण है।

'नवीन'जी एक प्रभावशाली राष्ट्रवादी व्यक्ति है। इसलिये इनकी रचनाओं में ऐसा प्रवाह, ओज और स्पंदन है, जो अन्य कवि की रचनाओं में नहीं मिलता। छायावादी कवियों में 'नवीन'जी की इन कविताओं का दृष्टिकोण विशेषता लिए हुए है। जीवन-जागृति का सुंदर संदेश और उसकी उथल-पुथल इनके काव्य की प्रधानता है।

'नवीन'जी की तीसरे प्रकार की रचनाएँ प्रणय-संबंधी हैं। इनमें प्यार, उन्माद, हृदय की वेदना और निराशा का सम्मिलन है। इन कविताओं को पढ़ने से यह प्रकट होता है कि कवि के जीवन में निराशा की प्रधानता रही है, और इसीलिये वह 'रानी', 'सजनी', 'सुमुखि', 'प्रेयसि', 'प्रिये' और 'रूपसि' आदि विशेषणों से किसी की स्मृति में दीवाना हो जाता है। इस प्रकार की कविताएँ लंबी हो गई हैं। यद्यपि वे छोटी भी हो सकती थीं, किंतु इसका कारण यही है कि कवि भावों में जब उन्मत्त होता है, तो ऐसा दीवाना हो जाता है कि थोड़े में मन की व्यथा को प्रकट करने में असमर्थ हो जाता है। इसीलिये कभी-कभी उसकी 'प्रेम-कथा' 'प्रेम-पँवारा' का रूप ग्रहण कर लेती है। किंतु उनमें कवि की एक ऐसी हृदय-वेदना होती है, जो जन-साधारण की सहानुभूति की पात्र हो जाती है। इस ढंग की रचनाएँ 'नवीन'जी की अधिक हैं। 'उन्माद' कविता में हृदय के उन्माद को कवि ने किस मार्मिकता के साथ प्रकट किया है—

तुम चिर - कोमलता पदाक्रांत,
तुम मनः कल्पना थकित श्रांत;
तुम हिय - प्रवाह - उद्गम अशांत,
तुम वांछा, विफल, असिद्ध, भ्रांत;
तुम मगन-लगन की तृषित साध, ओ तुम मेरे हृदयोन्माद!

कुचले हिय की तुम कथा शेष,
दुर्दैव - कोप के फल विशेष;
तुम सीमोल्लंघित चरम क्लेश,
तुम पुण्य प्रेम - साधना - लेश;
तुम क्रिया-शून्य संज्ञावसाद, ओ तुम मेरे हृदयोन्माद!
प्राणों की तुम तड़पन अजान,
तुम शून्य ध्यान, तुम शून्य ज्ञान,
तुम मन विनम्र, सभ्रम महान,
तुम हो चिर-विस्मृत देह - मान;
तुम चिर - अरण्य - रोदन - निनाद, ओ तुम मेरे हृदयोन्माद!

हृदय का उन्माद क्या है? हृदय के प्रवाह का उद्गम है, कुचले हृदय की शेष कथा है, दुर्दैव-कोप का विशेष फल है, प्राणों की अजान तड़पन है। कितनी सुंदर पंक्तियाँ हैं। कवि ने अपने मन की भावना को कितनी पीड़ा तथा मर्म के साथ प्रकट की है। कवि स्वयं निराशावादी है। 'स्मरण-रोदन' कविता में उसने स्वयं अपने आपको प्रकट कर दिया है। बनावट का लेश नहीं है। इसी में वह अपनी तृप्ति समझता है—

धूप - छाँह की क्रीड़ा करती
मेरे जीवन के पथ में;
ज्यों-त्यों कर तै कर पाया हूँ
इतना पथ हिय मथ-मथ में।
क्या ही अजब तबीयत पाई
इस नवीन मस्ताने ने;
कि बस लुटाया सरबस बरबस
इस कवि सिड़ी सयाने ने।

कवि के जीवन-पथ में सुख-दुख, दोनों का निरंतर खेल होता रहता

है। वह बरबस सर्वस्व लुटाने के लिये तत्पर हो जाता है। मस्तानों की यही दशा होती है। उनकी गति तो वही है कि 'आई मौज फकीर की दिया झोपड़ा फूँक' कवि भी इसी मार्ग का पथिक है। आज वह मस्त है, दीवाना है, जो कुछ भी उसके पास है, वह उसे लुटा देता है, कल की चिंता उसके मन में होती ही नहीं। सुख-दुख के बवंडर उसे पदस्थ नहीं कर पाते। सुख की कुछ परवा नहीं, और दुख की कोई चिंता नहीं। यह है भावना, और यही कवि के हृदय के स्वतन्त्रता-पूर्ण विचारों का दिग्दर्शन है। वह कहता है—

मेरे पास बचा ही क्या है
यहाँ सिवा सस्मरणों के,
गूँज रहे हैं अब भी खन खन
स्वन कंकण - आभरणों के।
फूल रही हैं स्मरण-ग्रीव मे
अब तक वे भुज वल्लरियाँ;
महक रही हैं अये आज तक
वे अर्ध-स्फुट मल्लरियाँ।

'किरकिरी' कविता में प्राणों की एक अजीब पुलक और हृदय का स्पंदन है। कवि की प्रेयसी रूठ गई है। वह उसे अपने हृदय की व्यथा सुना रहा है। वह कहता है—

सौ सौ बार नित्य मरकर भी मैंने चिरजीवन पाया,
अति निशीथ चिता-जर्जर भी मैं नवीन ही कहलाया।
दिल को मसल मसलकर भी मैं चिर-रसज्ञ ही हूँ रानी,
मुझको जाग्रत जीवन में भी कल्पित रूप नहीं भाया।
जगत उधर है, और तुम्हारी प्यारी हठ है इधर प्रिये!
अरे जरा-सा ही तो मैंने सोचा—जाऊँ किधर प्रिये!

इतनी ही सी ज़रा हिचक से आन रूठ बैठी तुम हो,
छोड़ो मान, विहँस कुछ कह दो, प्राण रहे हैं सिहर प्रिये !

इन पंक्तियों में कवि ने अपनी अंतर्वेदना का एक सजीव चित्र खींच दिया है। यद्यपि उसका हृदय दुख से तपा हुआ है, किंतु चिर-रसज्ञ की भाँति सोने की तरह कसौटी पर खरा उतरता है। वह चिंता से जर्जर हो गया है, फिर भी सदैव नवीन कहलाता है। यह मनुष्य-स्वभाव-सुलभ है कि जब कोई किसी से काम लेना चाहता है, तो आवश्यकतानुसार भय भी दिखाता है, आत्मप्रशंसा करता है, और नत-मस्तक भी हो जाता है। कवि अपनी रूठी हुई प्रिया के साथ भी ऐसा ही करता है। वह एक ओर 'चिरजीवन', 'नवीन', 'चिररसज्ञ' और 'कल्पित सपना' शब्दों के प्रयोग से अपनी उत्कृष्टता भी प्रकट करता है, और दूसरी ओर—

मान, मान मत करो, न रूठो, हम-से दुखियों से रानी,
कहीं रोष-भाजन होती है अपनों की कुछ नादानी।

अपने को दुखिया कहकर और अपनी नादानी बतलाकर विनम्रता का भाजन बनता है। इसमें करुण हृदय का वास्तविक चित्रण है। एक साधारण-सी बात को कवि अपनी मनोवेदना के साथ प्रकट करता है। यही नहीं, कवि भावना में कभी-कभी इतना पुलकित हो जाता है कि वह 'संयम' की चिंता न कर 'असंयम' को ही प्रिय समझने लगता है। वह ज़रा-सी बात कहने को इतना उन्मत्त हो जाता है कि क्षणिक सुख को सर्वस्व समझने लगता है—

ओ मेरे प्राणों की पुतली,
आज ज़रा कुछ कह लेने दो।
सिर्फ़ आज भर ही कहने दो,
यह प्रवाह कुछ तो बहने दो,

सयम ? मेरी प्राण, ज़रा तो
आज असयम में बहने दो।
मौन-भार से दबे हृदय को कुछ मुखरित सुख सह लेने दो।
आज ज़रा कुछ कह लेने दो।

'कुछ कह लेने दो' बस, इसी से उसे तृप्ति प्राप्त होती है। इसके लिये वह अपने प्रिय के दरवाज़े पर योगी की भाँति भस्म रमाने के लिये भी तत्पर है। अपने को प्राणों की आकुलता, भावों की संकुलता और उच्छ्वासों की विपुलता द्वारा तृप्त नहीं समझता। वह उनके नयनों के दर्पण में स्नेह के प्रतिबिंब की भाँति प्रदर्शित होता है। अपने उत्सुक हाथों से उनके युग-पद छूने की इच्छा-मात्र करता है।

'तीर-कमान' कविता में संगीत की मधुर पुट और उदात्त उन्मत्त भावना का मिश्रण है। कवि अपने प्रिय के सुंदर 'तीर-कमान' को चूम लेने के लिये व्याकुल हो उठा है। इसके लिये रूपक अलंकारों की भरमार कर देता है। वह कहता है—

प्रिय, धनुर्धर तुम चतुर, तव लक्ष्य-बेधक बान;
खटकता है यह तुम्हारा मूक शर-संधान।
पलक-प्रत्यंचा, सुभृकुटी-लचक-लोल कमान;
सैन-शर हैं भाव-रस-विष बुझे, हे रसखान!
नयन - बाणों से सदा करते रहो म्रियमाण,
बस यही है साध हिय की, बस यही अरमान।

'नौका-निर्माण', 'क्या करते मोक्ष', 'निवेदन', 'छेड़ो न' और 'साक़ी' कविताएँ भी बड़ी ही सुंदर हैं। 'ढुलमुल', 'विष-पान', 'यौवन-मदिरा' और 'बिंदिया' कविताएँ आपकी रचनाओं में बड़ा श्रेष्ठ हैं। कवि को रोने से तृप्ति होती है। वह किसी की छेड़-छाड़ पसंद नहीं करता। वह कहता है कि मुझे अपनी आँखों का नशा

उतारने दो, इस झरने को झरने दो, मेरे हृदय के ये उद्भ्रांत भाव हैं, इस समय आश्वासन की ज़रा भी आवश्यकता नहीं। इससे मेरे दिल का बोझ हलका हो जायगा। उसे इसी में सुख मिलता है—

टुक रो लेने दो ज़रा देर, क्यों छेड़ रहे हो बेर-बेर।
आँखो का नशा उतरता है,
झरना अब झर-झर झरता है;
उद्भ्रात भाव यह उमड़ पड़ा, आश्वासन मुझे अखरता है;
मत समझाओ तुम बेर-बेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।
मेरी गागर में सागर है,
इन आँखो में रतनाकर है,
लहराती हैं ये वे लहरें, जिनका सब कहीं निरादर है;
इसलिये मुझे तुम ज़रा देर, टुक रो लेने दो, सुनो टेर।

'गागर में सागर' और 'आँखों में रतनाकर' की व्यंजना बहुत सुंदर है। आँसू आँखों में उठनेवाली वे लहरें हैं, जिनका सब ओर निरादर है। रोना अपशकुन-सूचक समझा जाता है। इसीलिये वह निरादर की दृष्टि से देखा जाता है। किंतु कवि के रोने में एक विशेषता है, वह रोने को दूसरे ही दृष्टिकोण से देखता है। उसे वेदना-विलोचन का सोता समझता है। 'नवीन'जी की 'साकी' कविता बड़ी प्रसिद्ध है। रस की धारा का जो प्रवाह इसमें मिलता है, वह भावना-प्रधान कवियों की रचनाओं में कम मिलता है। कवि 'साकी' से अपनी ही तृप्ति के लिये प्रार्थना नहीं करता, वरन् विश्व को यह 'एक प्याला' पिलाकर मतवाला बना देना चाहता है। 'नशे' की वास्तविकता का चित्रण और पीनेवालों की मस्ती का कवि ने यथार्थ चित्रण किया है। वह अपने एक प्याले की चाह में ज्ञान-ध्यान-पूजा-पोथी की भी परवा नहीं करता। नास्तिक हो जाने की उसे चिंता नहीं। उसे तो मस्ती से काम !

और ! और ! मत पूछ, दिए जा,
मुँह-माँगा वरदान लिए जा,
तू बस इतना ही कह साकी,
और पिए जा, और पिए जा।
हम अलमस्त देखने आए हैं तेरी यह मधुशाला ;
अब कैसा विलम्ब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला।
बड़े विकट हम पीनेवाले,
तेरे गृह आए मतवाले ;
इसमें क्या संकोच ? लाज क्या ?
भर-भर ला प्याले-पर-प्याले।
हम-से बेढब प्यासों से पड़ गया आज तेरा पाला ;
अब कैसा विलंब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला।
हो जाने दे ग़र्क़ नशे मे,
मत आने दे फ़र्क़ नशे में ;
ज्ञान - ध्यान - पूजा - पोथी के
फट जाने दे वर्क़ नशे में।
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला।

कवि की भावुकता की यह चरम सीमा है। भावना की उन्मत्तता और मतवालेपन की यहाँ इति है। इसी प्रकार की सैकड़ों कविताएँ 'नवीन'जी की हैं, जो रसों से आप्लावित है। चुंबन, आलिंगन, प्यार, विरह, वियोग, संयोग और मस्ती की इतनी प्रचुरता और किसी की कविता में नहीं मिलती। इसी कारण भावना-प्रधान कवियों में इन्होंने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। दर्द और पीड़ा की अनुभूति इतनी अन्यत्र नहीं मिलती। कुछ आदर्शवादी इस प्रकार की कविताओं को अश्लील भी कहते हैं, किंतु इन कविताओं का ताल्लुक़ आदर्श से नहीं, वरन् हृदय से है। इसमें 'नवीन'जी

की कविताएँ पढ़कर यह कहना पड़ता है कि उनके एक हाथ में तलवार है, जिससे वह विप्लव-राग अलापते हैं, और दूसरे हाथ से बग़ल में वेदना की देवी को दबाए हुए, प्रसन्न चित्त से झोंके के साथ, आगे बढ़ते चले जा रहे है। एक कोने में भैरवी हुंकार व्याप्त हैं, और दूसरे में प्रणय और प्यार की कसक। एक शब्द में यह कहा जा सकता है कि इनकी कविता पुरुषत्व की साक्षात् प्रतिमा है।

वर्णनात्मक कविताएँ इन्होंने उत्कृष्ट लिखी हैं। 'विस्मृता उर्मिला' वर्णनात्मक महाकाव्य है। इसमें कवि ने उर्मिला का चरित्र-चित्रण बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। इसकी शैली सरल, सरस और मनोरम है। एक आलोचक का कहना है कि कला की दृष्टि से 'विस्मृता उर्मिला' में कवि को उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी स्फुट कविताओं में। स्फुट कविताओं में पीड़ा, मर्म, वेदना और प्रणय का निखरा हुआ रूप दिखाई देता है। 'विस्मृता उर्मिला' में इस प्रकार की भावनाएँ यत्र-तत्र ही मिलती हैं, किंतु खड़ी बोली में यह काव्य निराशावादियों के लिये बड़ी सुंदर वस्तु है।

'नवीन'जी की कविता की भाषा-शैली बड़ी बीहड़ और अटपट है। वह शब्द-चयन की ओर विशेष दृष्टि नहीं रखते। यद्यपि इनके काव्य में यह दोष है, किंतु यह नहीं जान पड़ता कि कवि शब्दों के सौंदर्य और चयन-चक्र में पड़कर भावनाओं का निर्वाह नहीं कर सका। उर्दू का प्रभाव रचनाओं पर विशेष पड़ा है। ब्रजभाषा के शब्दों को भी जहाँ-तहाँ स्वतंत्रता पूर्वक अपनाया है। कहीं-कहीं शब्दों के वास्तविक और शुद्ध रूप भी विकृत हो गए हैं। कवि ज़रा-सी बात को अधिक-से-अधिक रूप में कहता है। इसीलिये इनकी अधिकांश कविताएँ बड़ी हो गई हैं। विचारों के अनुरूप कविता का विस्तार अधिक हो गया है।

कविता के सिवा 'नवीन'जी गद्य-काव्य और कहानी लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। राजनीतिक और सामयिक विचारों को प्रकट करने की इनकी लेखनी में अद्भुत क्षमता है। गद्य-शैली भी संस्कृत-उर्दू-मिश्रित है। किंतु भावों का प्रवाह गद्य-शैली में भी प्रवाहित होता है। कविता में इनकी तीक्ष्ण और प्रखर शैली का निर्वाह भाव-पूर्ण ढंग से होता है, किंतु गद्य में उसका रूप स्पष्ट हो जाता है। कविता और गद्य की भाषा प्रायः समानता लिए हुए होती है।

हम यहाँ आपकी पाँच सुंदर रचनाएँ देते हैं—

छेड़ो न

टुक रो लेने दो ज़रा देर, क्यों छेड़ रहे हो बेर-बेर ?
आँखों का नशा उतरता है,
झरना अब झर-झर झरता है ;
उद्भ्रांत भाव यह उमड़ पड़ा, आश्वासन मुझे अखरता है ;
मत समझाओ तुम बेर-बेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।
कर लेने दो बोझा हलका,
बहने दो जल अंतस्तल का ;
मैं डूब-डूब उतराता हूँ, खो गया ज्ञान सब जल-थल का।
टुक रो लेने दो ज़रा देर, क्यों छेड़ रहे हो बेर-बेर ?
मैं कई बार तो गिरा पड़ा,
गिर-गिरकर फिर हो गया खड़ा ;
फिर लगा हिचकियों का भटका, टूटा धीरज का बंध कड़ा।
अब तो प्रवाह ने लिया घेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।
मानस-दिग-मंडल शुभ्र निरा,
काले मेघों से आज घिरा ;

अँधियारा छाई दृग-तल पे, नाटक का परदा आन गिरा।
सब राग-रंग हो गए ढेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।

मेरी गागर में सागर है,
इन आँखों में रत्नाकर है;
लहराती हैं ये वे लहरें, जिनका सब कहीं निरादर है।
इसलिये मुझे तुम ज़रा देर, टुक रो लेने दो, सुनो टेर।

निर्झर यह आकुल-लोचन का
है सलिल मेघ मम रोचन का;
बहने दो, मत अवरुद्ध करो सोता वेदना-विमोचन का।
मत पोंछो आँसू, सुनो टेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।

आई हैं बरुनी कर सिंगार,
पहने मुक्ता का तरल हार,
फुहियाँ बरसातीं इधर-उधर, कर रहीं आर्द्रता का प्रसार।
नयनों के नूतन कण बिखेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।

भ्रू-लतिकाएँ ये गुँथी हुईं,
कुछ सिकुड़ी-सी, कुछ उठी हुईं;
झुक रहीं लोचनों पर ऐसे, जैसे वल्लरियाँ छुई-मुई।
लाईं चिंताएँ घेर-घेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।

लोचन की ये कनीनिकाएँ,
छिन सकुचाएँ, छिन मुरझाएँ;
छिन तैर रहीं ये जल-तल पे, छिन डूब रहीं दाएँ-बाएँ।
तुम क्यों छेड़ो हो बेर बेर, टुक रो लेने दो ज़रा देर।

साकी

साकी! मन-घन-गन घिर आए, उमड़ी श्याम मेघ-माला;
अब कैसा विलंब? तू भी भर-भर ला गहरी गुल्लाला।

तन के रोम-रोम पुलकित हों,
लोचन दोनों अरुण चकित हों,
नस-नस नव झंकार कर उठे,
हृदय विकंपित हो, पुलकित हों;
कब से तड़प रहे हैं, ख़ाली पड़ा हमारा यह प्याला;
अब कैसा विलंब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला।
और ? और ? मत पूछ, दिए जा,
मुँह-माँगा वरदान लिए जा,
तू बस इतना ही कह साक़ी,
और पिए जा, और पिए जा।
हम अलमस्त देखने आए हैं तेरी यह मधुशाला,
अब कैसा विलंब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला।
बड़े विकट हम पीनेवाले,
तेरे गृह आए मतवाले,
इसमें क्या संकोच ? लाज क्या ?
भर-भर ला प्याले-पर-प्याले।
हम-से बेहद प्यासों से पड़ गया आज तेरा पाला;
अब कैसा विलंब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला।
हो जाने दे ग़र्क़ नशे में,
मत आने दे फ़र्क़ नशे में;
ज्ञान - ध्यान - पूजा - पोथी के
फट जाने दे वर्क़ नशे में।
ऐसी पिला कि विश्व हो उठे एक बार तो मतवाला,
साक़ी, अब कैसा विलंब ? भर-भर ला अंगूरी हाला।
तू फैला दे मादक परिमल,
जग में उठे मदिर रस छल-छल;

अतल-वितल-चल-अचल-जगत में
मदिरा झलक उठे झल-झल-झल ।
कल-कल छल-छल करती बोतल से उमड़े मदिरा-वाला ;
अब कैसा विलंब ? साक़ी, भर-भर ला अंगूरी हाला ।

❀ ❀ ❀

कूज़े-दो कूज़े में बुझनेवाली मेरी प्यास नहीं ;
बार-बार ला-ला कहने का समय नहीं, अभ्यास नहीं ।
अरे, बहा दे अविरल धारा,
बूँद-बूँद का कौन सहारा ;
मन भर जाय, हिया उतराए,
डूबे जग सारा-का-सारा ।
ऐसी गहरी, ऐसी लहराती, ढलवा दे गुललाला ;
साक़ी, अब कैसा विलंब ? ढरका दे अंगूरी हाला ।

विप्लव-गायन

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए ;
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए ।
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि-त्राहि रव नभ में छाए ;
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए ।
बरसे आग, जलद जल जाए, भस्मसात् भूधर हो जाएँ ,
पाप, पुण्य, सदसद्भावों की धूल उड़ उठे दाएँ-बाएँ ।
नभ का वक्षःस्थल फट जाए, तारे टूक-टूक हो जाएँ ;
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए ।
माता की छाती का अमृतमय पय कालकूट हो जाए ;
आँखों का पानी सूखे, वे शोणित की घूँटें हो जाएँ ।

एक ओर कायरता काँपे, गतानुगति हो जाए;
अंधे मूढ़ विचारों की वह अचल शिला विचलित हो जाए।
और दूसरी ओर कँपा देनेवाला गर्जन उठ धाए;
अंतरिक्ष में एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मँडराए।
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।
नियम और सब उपनियमों के बंधन टूक-टूक हो जाएँ;
विश्वंभर की पोषक वीणा के सब तार मूक हो जाएँ।
शांति-दंड टूटे,—उस महारुद्र का सिंहासन थर्राए;
उसकी पोषक श्वासोच्छ्वास विश्व के प्रांगण में घहराए।
नाश! नाश!! हा, महानाश!!! की प्रलयंकरी आँख खुल जाए;
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए।

❀ ❀ ❀

"सावधान! मेरी वीणा में चिनगारियाँ आन बैठी हैं;
टूटी हैं मिज़राबें, युगलांगुलियाँ ये मेरी ऐंठी हैं।
कंठ रुका जाता है, महानाश का गीत रुद्ध होता है;
आग लगेगी क्षण में, हृत्तल में अब क्षुब्ध-युद्ध होता है।
झाड़ और झंखाड़ व्याप्त हैं इस ज्वलंत गायन के स्वर से;
रुद्ध-गीत की क्षुब्ध-तान निकली है मेरे अंतरतर से।
कण-कण में है व्याप्त वही स्वर, रोम-रोम गाता है वह ध्वनि;
वही तान गाती रहती है कालकूट फणि की चिंतामणि।
जीवन ज्योति लुप्त है—अहा! सुप्त हैं संरक्षण की घड़ियाँ;
लटक रही हैं प्रतिपल में इस नाशक संभक्षण की लड़ियाँ।
चकनाचूर करो जग को, गूँजे ब्रह्मांड नाश के स्वर से;
रुद्ध-गीत की क्रुद्ध-तान निकली है मेरे अंतरतर से।
दिल को मसल-मसल मेंहँदी रचवा आया हूँ मैं यह देखो—
एक-एक अंगुलि-परिचालन में नाशक-तांडव को पेखो!

विश्वमूर्ति ! हट जाओ, यह बीभत्स प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े-टुकड़े हो जाओगी, नाश-मात्र अवशेष रहेगा !
आज देख आया हूँ—जीवन के सब राज़ समझ पाया हूँ;
भ्रू-विलास में महानाश के पोषक सूत्र परख आया हूँ।
जीवन गीत भुला दो, कंठ मिला दो, मृत्यु-गीत के स्वर से,
रुद्र-गीत की क्रुद्ध-तान निकली है मेरे अंतरतर से।"

बिंदिया

लघु कंज-बिंदु है क्या यह मेरी वेदना-परिधि का;
लोहित मोती यह क्या है, मम अतल-वितल वारिधि का।
कितने गहरे से उसको सुकुमारि, उठा लाई हो,
कितनी हिम-निधियाँ बोलो, तुम आज लुटा लाई हो।
क्या नृत्य-चतुर नयनों की है सुघड़ ताल की ठुमकी
यह बिंदी है सिंदुर की या टिकुली है कुमकुम की।
भृकुटी-संचालन से हाँ यों उथल-पुथल होती थी;
यह लगन बिचारी यों ही अपनी सुध-बुध खोती थी।
यह भ्रू-विलास तो था ही, टिकली भी आन पधारी;
भौंहों के मृदु फंदे में पड़ गई गाँठ सुकुमारी।
क्या सुंदर साज सजा है मृदु नयनों की गाँसी का;
है खूब इकट्ठा सामाँ इन प्राणों का फाँसी का।
यौवन की सब अँगड़ाई यह बिंदुरूप बन आई;
घूँघट के झीने पट से अरुणाभा छन-छन आई।
मानस को मदिर हिलोरें भर गई बूँद में आकर;
इठलाते अवहद्वरान को क्या ही छलकाया लाकर।
लोकोक्ति सदा सुनते हैं गागर में सागर भरना;
यों एक बिंदु में सजनी, देखा है सिंधु लहरना।

सखि, गोरे भाल-क्षितिज पै यह अरुण इंदु उग आया ;
किस सुघड़ विधाता ने यह आरक्त बिंदु छिटकाया।
इस एक बूँद में बाले, कितना विष भर लाई हो ?
हिय कब से तड़प रहा है, क्या जादू कर आई हो ?
जीवन-ऊषा की प्राची हो गई आज अरुणा-सी ;
मेरी उत्कंठा सजनी, छिड़की लोहित करुणा-सी।
आकुल आँखों में छाई कुछ लाल लाल झाईं-सी ;
आकर देखो, यह क्या है टिकली की परछाईं-सी।
बिंदिया की परछाईं का नैनों में अक्स उतारे ;
कब से बैठा हूँ रानी, प्रतिबिंब हिए में धारे।
मत जाओ यों मुँह फेरे, अब यों आँखें न चुराओ ;
बिंदी-विलसित मुख प्यारा घूँघट-पट में न दुराओ।
कितने भावों को मथ के सिंदूर बनाया तुमने ;
अलि-बलि कितनी ले ली है बोलो तो इस कुंकुम ने।
संध्या की सकल अरुणिमा ऊषा की सारी लाली ;
हो सार-रूप बन आई यह एक बूँद मतवाली।
मेरी वेदना-व्यथा की रंजित आरक्त कहानी ;
आँसू में घुल-घुल रानी, बिंदिया बन गई सयानी।

रुन-झुन-झुन

रुन - झुन - झुन रुनुन - झुनुन रुनुन - झुनुन ।

मेरे लालन की पाँजनियाँ
खनक रहीं मेरी आँगनियाँ ;
औचक आकर धीरे - धीरे
सुन ले तू मेरी साजनियाँ !

ना जानूँ कैसे पाया है यह धन अरी पड़ोसिन सुन ।

रुन-झुन-झुन—

पाँजनियों की खन-खन से तन-मन में उठती झंकृतियाँ ;
ठगी ठगी-सी रह जाती हूँ लख-लख चाया-अलंकृतियाँ ।
बच्चा उठ-उठकर गिरता है,
धूल-भरा हँसता फिरता है ;
लालन की इस अस्थिरता में
थिरक रही जग की स्थिरता है ।

आज विश्व की शैशवता मम आँगन आई बन निरगुन ।

रुन-झुन-झुन—

किलका मेरा लाल कि मेरे हिय में हुआ उजेला-सा ;
रोया ज़रा, विश्व हो गया कि मेरे लिये अकेला-सा ।
आँसू - कण बरसाते आना,
लार - तार टपकाते जाना,
मेरे घर - आँगन में आओ,
रुदन-हास्य का भरा खज़ाना,

मेरे स्मरण-गगन में गूँज रही है इसकी रुन-झुन झुन ।

रुन-झुन-झुन—

बड़ी भाग्यशालिनी बनी मैं, हिय हुलसा, मन मस्त हुआ ;
मेरा अपनापन मेरे नन्हे स्वरूप में व्यस्त हुआ ।

अस्त हुआ अस्तित्व अलग-सा,
वह मिट गया स्वप्न के जग सा ;
अली, लुट गई री मैं जब से
आया है यह कोई ठग-सा।
मुझे लूट ले चला किलकता मेरा छोटा-सा चुन-मुन।
रुन-झुन-झुन—
अपना मन-खोकर पाया है मैंने अपना रूप नया ;
उसे गोद में लेकर मेरा हुआ स्वरूप अनूप नया।
एक हाथ में अभिलाषा को,
दूजे में सारी आशा को
बाँध मुट्ठियों में वह डोले
करता सफल मातृभाषा को।
मा-मा मुख से कहता है, पाँजनियों से बजता टुन-टुन।
रुन-झुन-झुन—
आज विश्व शैशव अपनी गोदी में खिला रही हूँ मैं ;
सुविगत वर्तमान मधुरस भावी को पिला रही हूँ मैं।
शत-शत संस्कारों की धारा
मेरे स्तन से बही दुधारा ;
बनकर पयस्विनी करती हूँ
मैं भविष्य-निर्माण दुलारा।
मेरे शिशु में प्रगटी मानवता की रुचिर पुरातन धुन।
रुन-झुन झुन—

५—भगवतीचरण वर्मा

[श्रीभगवतीचरण वर्मा का जन्म शफ़ीपुर (उन्नाव) में, संवत् १९६० विक्रमीय में, हुआ। इनके पिता श्रीदेवीचरण वर्मा उस समय कानपुर में वकालत करते थे। जब इनकी अवस्था पाँच वर्ष की थी, तब इनके पिता का देहांत हो गया, और भरण-पोषण एवं लालन-पालन का भार इनकी माता पर पड़ा। इनकी प्रारंभिक शिक्षा कानपुर में हुई। आर्य-समाज और थियोसोफ़िकल स्कूलों में पढ़ते समय ही इनकी अभिरुचि हिंदी की ओर हो गई थी। इनके अध्यापक श्रीजगमोहन 'विकसित' ने, जो हिंदी के अच्छे कवि और लेखक हैं, इनको सदैव प्रोत्साहित किया। यहीं से इनकी पद्य-रचना का श्रीगणेश हुआ।

उन दिनों बाबू मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' का बड़ा मान था। इन्होंने 'भारत भारती' पढ़ी, और उसका इन पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा। संगीत में इनकी रुचि विद्यार्थी-अवस्था से ही थी। इसलिये केवल संगीत के आधार पर ही इन्होंने तुकबंदियाँ लिखनी प्रारंभ कीं। कानपुर के श्रीरमाशंकर अवस्थी, पंडित विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक और पं० चंद्रिकाप्रसाद मिश्र के द्वारा इनको बराबर प्रोत्साहन मिलता रहा। विशेषतः स्वर्गीय श्रीगणेशशंकर विद्यार्थी ने अधिक प्रोत्साहित किया, और 'प्रताप' में इनकी रचनाएँ प्रकाशित कीं। कानपुर में होनेवाले हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में इन्होंने 'एकांत' कविता सुनाई, जिससे विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। इसके बाद से इनकी कविताओं का झुकाव नवीन हिंदी-काव्य की ओर हुआ।

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीबाबू भगवतीचरण वर्मा

कानपुर से एफ़० ए० और प्रयाग-विश्वविद्यालय से बी० ए०, एल्-एल्० बी० की डिग्री प्राप्त करने के अनंतर कानपुर में वकालत करने लगे। सन् १९२० ई० में इनके चचा श्रीकालीचरण वर्मा का भी देहांत हो गया। तब से गृहस्थी का भार इनके ऊपर पड़ा, और जीवन में एक अस्तव्यस्तता-सी आ गई।

श्रीभगवतीचरणजी की 'मधुकण' और 'प्रेम-संगीत' कविताओं के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'पतन', 'चित्रलेखा', 'तीन वर्ष'-नामक उपन्यास भी प्रकाशित हुए हैं। यह वर्तमान हिंदी के एक उच्च कवि और सुलेखक हैं। कहानियाँ भी इन्होंने लिखी हैं। 'इंस्टालमेंट' कहानियों का संग्रह है।]

श्रीभगवतीचरण वर्मा की कविताएँ हिंदी में अपनी विशेषता रखती हैं। आप लक्षण-ग्रंथों के अनुरूप काव्य-रचना में सफल हुए हैं। कविताएँ पढ़ने से यह पता चलता है कि इनका जीवन परि-स्थितियों का घोर युद्धस्थल रहा है। अविकल बाधाएँ आने पर भी निराश न होना चाहिए, यही कविताओं का संदेश है। इनकी कविताओं का निष्कर्ष यह निकलता है कि जीवन अविकल कर्म है, न बुझनेवाली पिपासा है। शांति में नहीं, कर्म में विश्वास करना चाहिए। गोस्वामीजी के कथनानुसार 'कर्म प्रधान बिस्व करि राखा; जो जस करै, सो तस फल चाखा।' साथ ही ऐसा प्रकट होता है कि परिस्थितियों और अशांत जीवन ने कवि को दार्शनिक बना दिया है। जीवन संघर्षमय रहने के कारण विरोध की मात्रा प्रधान हो गई है। कविताएँ करुण हैं, परंतु रुलानेवाली नहीं, हृदय को उद्वेलित कर देनेवाली। इनकी करुणा अशांत है, क्रांतिकारिणी है, और विचार नास्तिकता की ओर झुका हुआ जान पड़ता है। विचारों में चिनगारी है, संस्कृत तथा परिमार्जित विचार-धारा के साथ यौवन की उच्छृंखलता तथा उद्भ्रांत प्रेम का अनियंत्रित संदेश है। भाषा

स्पष्ट और रंग-ढंग भावुकता तथा वास्तविकता से पूर्ण है। वर्माजी की काव्य-शैली बहुत स्पष्ट और सुंदर है। आप छायावादी कवि हैं, और छायावाद की कविता के पूर्ण रूप से समर्थक, किंतु एक सीमा तक, असीमता में इनका विश्वास नहीं। इसीलिये इनकी कविता में ओज, प्रेरणा तथा उन्मत्त प्रेम का रूप दिखाई देता है। छायावाद की कविता का उद्देश्य यह 'भाव-सौंदर्य का सृजन' समझते हैं। यदि हम श्रीभगवतीचरणजी की कविताओं पर एक विहग-दृष्टि डालें, तो यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि वे प्रधानतः भावात्मक हैं। विषयों की विभिन्नता अधिक है। कविता का उद्देश्य है मानसिक—अंतर्जगत् के—विचारों को भावपूर्ण ढंग से चित्रित करना। इसीलिये भावना अधिक है, और रहस्यवाद कम। प्रतिदिन के जीवन की घटनाएँ कितने महत्त्व की होती हैं, प्रेम का मूल-तत्त्व क्या है, वास्तविक सौंदर्य का रूप क्या है, इन पर अनोखी उक्तियाँ मर्मस्पर्शी ढंग से कवि ने कही हैं, जो हृदय पर बड़ा प्रभाव डालती हैं। कवि-मन का पूर्ण चित्र कविताओं की प्रत्येक पंक्ति में अंकित है।

व्यक्तित्व की छाप श्रीभगवतीचरण की कविताओं का प्रधान गुण है। वे मधुरता, ओजस्विता से केंद्रित हैं। जान पड़ता है, कवि के हृदय में जब उन्माद उठता और भावावेश आता है, तो उसकी लेखनी रुकती नहीं, और 'अपनी बात' कहती, संसार के सुख-दुःख के सागर की हिलोरों में थपेड़े खाती हुई, विचारों का तूफ़ान उत्पन्न कर देती है। कवि भाव-प्रधान होता हुआ भी स्पष्टता की ओर अधिक झुका हुआ है, इसी से कविताओं का प्रभाव जन-साधारण पर भी अच्छा पड़ता है। लोक-प्रियता भी उसे काफ़ी मिल गई है, और मिल रही है। कवि हृदयवादी है। वह सांसारिक घटनाओं को भावना-पूर्ण दृष्टि से देखता

है। निराशा उसके जीवन के साथ है, उसी में उसे सुख मिलता है, किंतु आशा की भी कल्पना करता है। वह तन्मयता को भावनाओं का परिधान बनाता है। कवि अपना परिचय स्वयं ऐसा देता है कि उसके वास्तविक जीवन का पता चल जाता है। वह हँसता रहता है, हृदय में दुख का आवेग उठता है, परंतु वह उसके मुस्कि-राते ओठों में विलीन हो जाता है। वह मर्म और पीडा से युक्त है, किंतु उन्हें प्रसन्नता से अपनाकर जीवन-पथ का पथिक बनता है। उसकी अभिलाषाओं का आदि-अंत नहीं। न तो सफलता के वसंत से वह प्रसन्न होता है, न असफलता के पतझड़ से दुखी। कवि महत्त्वाकांक्षी है, उसकी परिधि नहीं है, थाह नहीं है। उसके उद्‌गारों के प्रबल स्रोत का प्रवाह नहीं रुकता। वह जीवन की बाधाओं से प्रतिपल लड़ता है, हार नहीं मानता, जीत का ही अनुभव करता है। उसके पास उसकी प्रिय वस्तु मादकता-मस्ती है, इसी का प्रवाह उसके जीवन में है, न वह सुख से सुखी और न दुख से दुखी है। उसके संघर्षमय जीवन में न तो शिशिर है और न वसंत। वह दीवाना है, मस्त है, उन्मत्त है, किसी की परवा नहीं है। संभव और असंभव में उसे विश्वास नहीं, न वह पुण्य का अनुभव करता है, न पाप का। हाँ, अपने ममत्व का पूर्ण रूप से ज्ञान रखता है। कवि का विश्वास निम्न-लिखित छंद से प्रकट होता है—

एक, एक के बाद दूसरी, तृप्ति प्रलय-पर्यंत नहीं;
अभिलाषा के इस जीवन का आदि नहीं है, अंत नहीं।
यहाँ सफलता-असफलता के बंधन का अभिशाप नहीं;
यहाँ निराशा औ' आशा का पतझड़ नहीं, वसंत नहीं।
जो पूरी हो सके कभी भी, ऐसी मेरी चाह नहीं;
यहाँ महत्त्वाकांक्षाओं की परिधि नहीं है, थाह नहीं।

❀ ❀ ❀

क्या भविष्य है ? नही जानता, मुझको ज्ञात अतीत नहीं ,
सुख से मुझको प्रीति नही है, दुख से मै भयभीत नहीं ।
लड़ता ही रहता हूँ प्रतिपल, बाधाओ का पार नहीं ;
काल-चक्र के महासमर मे हार नहीं है, जीत नहीं ।

कवि निर्भीक होकर अपने जीवन की वास्तविक परिस्थिति का चित्र अंकित करता है । निराशा-जीवन-प्रवृत्ति के प्रतिनिधि-स्वरूप कवि ने अपनी मार्मिक वेदना प्रकट की है । कवि को अशांत जीवन देखने में अधिक सुख मिलता है। इसी की वह कामना करता है—

यह अशात जीवन हो ,
यहाँ प्यार में कसक मिली यौवन मे पागलपन हो ।

ससार क्या है ? कवि के शब्दों में यह अंधकार है, सुख-दुख की पहचान यहाँ नहीं हो सकती । यहाँ छाया में अस्तित्व देखा जाता है, माया में ज्ञान का अनुभव किया जाता है, यहाँ भला-बुरा कुछ नही, केवल अनुमान है । यहाँ हार में विजय है, और विजय में हार । विस्मृति के चार दिन को 'संसार' कहते हैं । यही कवि के आंतरिक भावों का विश्लेषण है । संसार को कवि किस रूप में देखता है ? वह जाल है, भ्रम है, भुलावा है, चार दिन का जीवन है । यह दर्शन के उस तत्त्व का परिचायक है, जिसको दार्शनिकों ने 'निर्मोह' नाम दे रक्खा है । यहाँ कवि दार्शनिक बन गया है । एक ओर 'प्रणय' और 'प्रेम' की भिक्षा माँगता है, और दूसरी ओर वह 'आत्मसमर्पण' कर देता है । फिर कभी भावनाओं के वशीभूत होकर उसी के प्रति मिथ्या प्रचार करता है । कभी उपदेशक के रूप में अपने मनोभाव प्रकट करता है—

कुछ रोते थे—"जग सपना है, अपना मन ही छल है ;"
कुछ हँसते थे—"जीवन सुख है, दुख की भ्रांति प्रबल है ।

काल-चक्र है सबल, और यह विकल हृदय निर्बल है ;
इन दोनो में भ्रमता रहता मम ममत्व पागल है।"

ममता-मोह सांसारिकों के लिये बड़ी गूढ़ वस्तु है। उससे मनुष्य छुटकारा नहीं पाता, वह दिन-प्रति-दिन आत्मसमर्पण की ओर अग्रसर होता जाता है। हृदयवादी कविता की विशेषता यह है कि उसका हृदय पर तत्काल प्रभाव पड़ता है। दार्शनिक विचारों और भावों से ओत-प्रोत कवि का जीवन हृदय-हीनता से परे है। वह संसार के माया-मोह की परख करता है। यहाँ मनुष्य-मात्र किस प्रकार पागल और उन्मत्त है, इसका भी वह अनुभव करता है।

निराशावाद वर्माजी की कविता की विशेषता है। मन में आवेग उठता है, लिखने की रुचि दूसरे मार्ग की ओर अग्रसर होती है, किंतु वह अपने प्रधान विषय को छोड़ नहीं सकते। कवि उपदेशक, दार्शनिक, नास्तिक और पागल बनकर प्रेम में मतवाला हो जाता है। उन्मत्त की भाँति अपनी दर्द की 'कसक-कहानी' सुनाता है, किंतु सवत्र ही निराशा की प्रधान धारा अविकल रूप में प्रवाहित हो उठती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कहीं-कहीं कवि की कल्पना और भावना कमज़ोर पड़ गई है, उच्छृंखलता का रूप दिखाई देने लगा है। कोमलता और मधुरता का ह्रास हो गया है, फिर भी आत्मचिंतन और सौंदर्य के मार्मिक मनोरम चित्रण का निर्वाह हुआ है। इसका कारण उसके जीवन की अस्तव्यस्तता है। भाव तूफ़ान की तरह उठता है, किंतु वह अपनी बात कहने में इतना लीन हो जाता है कि उसे कला-पक्ष का उतना ध्यान नहीं रह जाता। वह बड़े वेग से आगे बढ़ता है, समुद्र की लहरों की भाँति एक के बाद एक पंक्ति आती-जाती है। रचना में बड़ी शक्ति और ओज है, किंतु काव्य में कला की वह अनुभूति

और अभिव्यक्ति कम दृष्टिगत हुई है, जिससे इनके रहस्यवादी होने का वास्तविक अनुमान किया जा सके। हाँ, केवल एक बात निश्चित है कि 'आवेग' (Force) जितना अधिक इनकी कविताओं में है, उतना किसी की भी कविता में नहीं पाया जाता।

प्रकृति के संबंध में भी कवि ने मार्मिक चित्र अंकित किए हैं, किंतु वहाँ भी 'आवेग' इतना बढ़ गया है कि जिस वस्तु का वर्णन कवि करने लगा है, उसे भूल गया, और दूसरे ही प्रवाह में प्रवाहित हो गया। 'बादल' कविता प्रकृति-संबंधी है। कवि 'बादल' के संबंध में अधिक न लिखकर भावनाओं की प्रबल लहरों की थपेड़ों से टकराकर संसार को नष्ट-भ्रष्ट कर देने का उपदेश देने लगा है—

> इस विनाश के महागर्त में डूब जाय संसार,
> और लोप हो जावे उसमे कलुषित हाहाकार।
> जल-ही-जल हो, उथल-पुथल हो, बनो काल साकार,
> बरसो! बरसो! अरे सघन घन, महाप्रलय की धार।

'मेरी आग', 'कसक-कहानी', 'क्रय-विक्रय', 'मेरी प्यास' कविताएँ बड़ी मार्मिक हैं, और आत्मचिंतन का ज्वलंत रूप हैं। 'मेरी आग' कविता से प्रकट है कि कवि के हृदय पर सामयिकता का अच्छा प्रभाव पड़ा है। 'कानपुर के मेमोरियल वेल' पर कवि की भावना बड़ी उत्कृष्ट है। इस प्रकार की रचना हिंदी में एक ही है, यह अतीत की स्मृति का कवित्वपूर्ण चिह्न है। 'नूरजहाँ की क़ब्र' कवि की अन्यतम वर्णनात्मक रचना है। काव्य और भाव के दृष्टिकोण से यह रचना कलात्मक है। इसके वर्णन में कवि का हृदय आर्द्र हो उठा है। वह—

पतन ही है जीवन का सार,
बहता है संसार, वासना का है तीव्र प्रवाह ;
देवि, यह जीवन ही है चाह ।
(मधुकण, पृष्ठ ७६)

इन पंक्तियों से 'नूरजहाँ' को सांत्वना देता है । कहीं-कहीं कवि जब कुछ शांति की अवस्था में रहता है, और गंभीरता से मनन तथा चिंतन की ओर बुद्धि दौड़ाता है, तो उसकी ओज-भरी रचना में सात्विक भावना और विवेचना का भी प्राधान्य दिखाई देने लगता है । उसकी दृष्टि दार्शनिक हो जाती है—

जीवन और मरण का अभिनय होता है प्रातकाल,
और यहाँ के प्रति कण में है परिवर्तन की चाल ।
फिर भी यही शून्य है, उसमें वह अस्तित्व विशाल ;
इंद्रजाल सा बिछा हुआ है किस माया का जाल ।

इस प्रकार का तात्विक दिग्दर्शन काफ़ी दिखाई पड़ता है । अन्य कविताओं में भी इसी प्रकार की दार्शनिकता दिखाई पड़ती है ।

महाराजकुमार श्रीरघुवीरसिंहजी का कहना है—"श्रीभगवतीचरण वर्मा की कविताओं में रहस्यवाद नहीं है । हाँ, यह ठीक है कि कवि में भावनाओं का प्रबल वेग है, किंतु दार्शनिक तत्वों का विवेचन ही उसकी रहस्यमय भावनाओं का द्योतक है ।"

हाँ, भाव-पूर्ण ओज की अधिकता और रहस्यवादी भावनाओं की न्यूनता है । किंतु भावों की प्रबलता ही रहस्यवाद के गूढ़ विचारों की पुष्टि करनेवाली है । यह आवश्यक नहीं कि कवि केवल आत्मा-परमात्मा के ही चिंतन में पागल बना रहे, वह सांसारिक वस्तुओं में भी रहस्य देखता, और उसकी कल्पना करता है—

अंधकारमय पागल जग है,
अंधकारमय वहीं मरण है,

उसके जीवन मे तुम भर दो
अपने जीवन का मधुकण ;
सत्य शिवं सुंदर मधुकण !

इस कविता में कवि ने 'तुम' शब्द का प्रयोग करके उस अनंत को लक्ष किया है कि 'इस अंधकारमय जग के जीवन में अपने जीवन का मधुकण भर दो' 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का मधुकण ! सत्यं, शिव, सुंदरम् 'ओंकार' है। कवि जीवन को सत्य, शिव और सुंदर रूप में चाहता है। यह दर्शन का तत्त्व है, जो रहस्यवाद से भिन्न नहीं है। कवि कहता है—

हमने पूछी जब अथाह नभ से इतनी - सी बात ,
"इस सबमे मेरी छाया है" बोल उठा अज्ञात ?

'अज्ञात' का क्या रहस्य है ? इस प्रकार कवि ने भावों की प्रधानता रक्खी है, किंतु रहस्यात्मक भावो और अनुभूतियों की पुट अनेक स्थलों पर पाई जाती है।

कुछ वर्षों से कवि की कविताओं में एक नवीनता आ गई है। वह गीति काव्य की ओर आकर्षित हुआ है। यद्यपि कवि ने जो कुछ लिखा है, वह संगीत के अनुरूप कम है, किंतु ढंग गीति-काव्य का ही है, और प्रधान विषय 'प्रेमोपासना' तथा 'प्रणयाख्यान' है। कवि ने 'देवि' और 'प्रिये' के संबोधन से अपनी प्रिय वस्तु की खोज की है। वह बार-बार अतृप्त अवस्था में पीड़ित हो उठता है, और अपनी मर्म-भरी व्यथा को बड़े वेग से प्रकट करता है। 'भाव' और 'आवेग' के सम्मिलन से इस प्रकार की रचनाएँ शृंगारिक हो गई हैं। उनमें उन्माद है, सरसता है, हृदय को आनंदित करने-वाली उन्मत्त भावना है, साथ ही कला के स्थायी स्वरूप का दर्शन भी होता है। भावुकता की जो मादकता कवि के 'मधुकण' में पाई जाती है, उससे विशेषता लिए हुए छोटी रचनाओं में पाई जाती

है । इनका प्रधान विषय 'उन्माद' और 'प्रेम' है । 'देवि'-शब्द का प्रयोग कवि ने अधिक किया है । 'देवि' रहस्यवादिनी नहीं, वरन् सांसारिक-सी जान पड़ती है । कवि वियोगी है, उसे मिलन से अतुल प्रेम है, उसका 'प्रिये' से मिलन नहीं होता, इसलिये वह 'प्रिये' या 'देवि' का अन्वेषण करता है । प्रेम की वास्तविक लहर जैसी श्रीभगवतीचरणजी की कविताओं में पाई जाती है, जो तुरंत ही उन्मत्त बना देनेवाली है, वैसी अन्य किसी भी कवि की कविता में नहीं पाई जाती । वह एकाकीपन को भार समझता है । जीवन की संगिनी की उसे इच्छा है । दुख, निराशा की अपार वेदना का वह अनुभव करता है । इसीलिये वह कहता है—

कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें !
जीवन-सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये !
संयोग क्षणिक, फिर क्या जानें
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये !
पल-भर तो साथ-साथ बह लें,
कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें ।

* * *

हम-तुम जी-भर खुलकर मिल लें !
जग के उपवन की यह मधु-श्री
सुषमा का सरस वसंत प्रिये !
दो श्वासों में मिट जाय, और
ये श्वासें बनें अनंत प्रिये !
मुरझाना है, आओ खिल लें,
हम-तुम जी-भर खुलकर मिल लें ।

कवि पागल है, वह मिलन चाहता है। इस प्रकार की कविताओं का प्रवाह बड़ा सुंदर है।

ऐसा मालूम होता है कि कवि उर्दू की नज़ाकत और चोज-भरी रचनाओं से प्रभावित हुआ है। इनमें भी मधुरता है, नज़ाकत है, चोज है। वह उर्दू के मुहावरे भी प्रयोग करने मे संकोच नहीं करता। शब्दावली भी उर्दू-मिश्रित-सी हो गई है—

पस्ती से हस्ती भरी हुई ग़ाफ़िल की,
मत बात चलाना अरे अभी मंज़िल की!
चलना है हमको, बरबस जाना होगा,
फिर क्यों रह जाने पावे दिल में दिल की;
मैं समय-सिंधु में डुबा चुका अपनापन,
कल एक कल्पना, और आज है जीवन।

कविता में भावावेश है। कवि अपने आंतरिक भावों को, जो सरसता से परिपूर्ण हैं, सुंदर ढंग से प्रकट करता है। 'मधुकण' की कविताओं में भाव-गांभीर्य है, और 'प्रेम-संगीत' के गीतों में जीवन-संबंधी सुख-दुख, मिलन-वियोग शृंगारिक और उदात्त भावों का स्पष्टीकरण।

'मधुकण' से उत्कृष्ट कृति 'प्रेम-संगीत' है। इसमें वर्माजी के हृदय की सजीवता और भी अधिक जाग्रत् रूप मे प्रकट हुई है। इसमें बीस कविताएँ संगृहीत हैं। इनमे लय, ताल, आकर्षण, मादकता और जीवन का सर्वत्र स्पष्टीकरण है। डॉक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी ने 'भूमिका' में बड़े सुंदर और मार्मिक ढंग से वर्माजी की कविताओं का दृष्टिकोण स्पष्ट किया है। आपका कहना है—"वर्माजी के प्रेम-संबंधी विचार अपना दृष्टिकोण रखते हैं। फ़ारसी और उर्दू की इश्क़-संबंधी विचार-धारा से आपकी कल्पना प्रभावित है, और उसमें सूफ़ियों और नवीन वेदांत की पुट है, जिससे उसमें

एक विशेष चमक पैदा हो गई है। यद्यपि प्रेम को आप शायद क्षण-भंगुर समझते हैं, तथापि उसे मोहक, मादक और लोकोत्तर आनंददायक अनुभव करते हैं। आपका विचार-केंद्र वैराग्य-मूलक प्रतीत होता है। आप जीवन को शून्यता और असफलतामय समझते हैं।" संक्षेप में वर्माजी ने अपनी कविताओं का दृष्टिकोण इस प्रकार बताया है—"मैं समझता हूँ कि जीवन एक गति है, और इसीलिये संसार में कोई चीज़ स्थायी नहीं है। यहाँ कुछ भी निरपेक्ष अथवा absolute नहीं है। प्रत्येक भावना—प्रेम, घृणा आदि—बनती और बिगड़ती है। फिर बनना और फिर बिगड़ना यही संसृति की गति है, उसका नियम है। गति ही जीवन है, और गति-हीनता ही मृत्यु।"

इन दोनों अवतरणों से स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि का अपना एक दृष्टिकोण अवश्य है। शायद वह निराशा और आशा के बीच में रुका हुआ है। वियोग सहन करने में भी उसे कमाल हासिल है, और मिलन में भी बड़ी आतुरता दिखलाता है। 'प्रेम-संगीत' में वियोग-मिलन, सुख-दुख, हास्य-रुदन की मिश्रित भावनाएँ बड़े आकर्षक रूप में दिखाई देती हैं। कवि का वेदांत आशा और निराशा-पूर्ण जान अवश्य पड़ता है, किंतु निराशा पर विजय पाने का वह प्रयत्न करता है। ऐसे अवसर पर उसकी भावना में ओज और पुरुषत्व की झलक स्पष्ट मालूम होने लगती है। वर्माजी कला-पक्ष की परवा नहीं करते। वह अपने हृदय की बात सुनाना पसंद करते हैं। उसे कलात्मक बनाकर गंभीर और क्लिष्ट भावों के प्रदर्शन में उनका विश्वास नहीं। जो कुछ भी हो, वर्माजी की कविताओं में एक ऐसा मादक उन्माद, प्रेम-पूर्ण संदेश है, जो प्रेम के पुजारियों के लिये बड़ा आकर्षक है। यही उनकी कविता की विशेषता है। इस प्रकार की रचनाओं में वह बड़े सफल हुए हैं। 'मधुकण' में कल्पना और

भाव की यदि अधिकता है, तो 'प्रेम-सगीत' में कोमलता, मधुरता और जीवन के सरस क्षणों का मनोमोहक चित्रण है। निम्न-लिखित छंद देखिए—

अलस नयनों मे लिए हो
किस विजय का भार रंगिनि !
झुक पड़ी मधु से निकल,
पुलकित कली ने आँख खोली।
झुक पड़ी भूली हुई-सी
आज पागल मधुप-टोली;
झुक पड़ी कोमल झुकी सी
आम्र-डाली पर कुहुककर।
और सौरभ-भार से झुक-
कर मलय-बातास डोली।
आज बंधन बन रहा है
प्यार का उपहार रगिनि !
अलस नयनो में लिए हो
किस विजय का भार रंगिनि !

कितनी मार्मिक पक्तियाँ हैं। 'रंगिनि' रसिको के हृदय को रंगीन बना देती है। शब्दावली बडी कोमल, नपी तुली और गति-शील है। इसी प्रकार की रचनाओं की विशेषता 'प्रेम-सगीत' में है। लेकिन 'मधुकण', 'नूरजहाँ', 'अरी धधक उठ' आदि में 'प्रेम-संगीत' की रचनाओं की भाँति रंगीनी नहीं है। वे चित्रण और उदात्त कल्पना की दृष्टि से अपना अलग महत्त्व रखती है।

श्रीभगवतीचरणजी ने अतुकांत छद भी लिखे हैं, जो वर्णनात्मक हैं। 'मधुकण' के अंत में 'तारा'-नामक एकांकी नाटक है। यह अतुकांत छंदों में लिखा गया है। इसमें कवि के

मनोभावों का चित्रण स्थान-स्थान पर मिलता है। पाप, पुण्य, मनो-वृत्ति, साधना आदि दार्शनिक विचारों को कवि ने व्यक्त किया है। विश्लेषण सुंदर और तर्क के साथ किया है। वर्णन में वह अपनी 'आवेग' की अर्जित प्रवृत्ति को रक्षित किए हुए है।

वर्माजी की भाषा-शैली खूब परिमार्जित है। हिंदी-शैली पर उर्दू-शैली का प्रभाव पड़ा है, इसी कारण उसमे बल आ गया है। शब्द-चयन सुंदर, वाक्य मुहावरेदार और प्रभावशाली हैं। रचना में शब्दों की विशृंखलता नहीं दिखाई पड़ती, और न उसके बिगड़े हुए रूप ही दृष्टिगोचर होते है। शुद्ध शब्दों के प्रयोग की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है। गद्य-लेखन में कवि अधिक कुशल है। 'पतन' उपन्यास गद्य की प्रारंभिक रचना है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास उत्तम है। इनका नया उपन्यास 'चित्र-लेखा' भाव-भाषा और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्युत्तम है। इसमें घटना-क्रम पर उतना ध्यान नहीं दिया गया, जितना विषय के विवेचन पर। जीवन में पाप-पुण्य क्या है? वासना किसे कहते हैं? इनका विवेचन लेखक ने अपने तर्कों से बड़ा सुंदर किया है। कवि की यह गद्य-रचना भाव, भाषा और विचारों की दृष्टि से प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। 'तीन वर्ष' आपका नया उपन्यास है। यह अपने ढग का बेजोड़ है। स्त्री-पात्रों का चित्रण इसकी विशेषता है। कहानियों के क्षेत्र में भी आप अपने 'प्रेम' के जाग्रत् रूप को लेकर आए हैं।

अंत में यह निष्कर्ष निकलता है कि श्रीभगवतीचरणजी की कविता में रस है, संगीत है, ताल है, गति और सुंदर भावों का सामंजस्य है। काव्य का बाह्य रूप सुंदर, प्रभावोत्पादक और आतंरिक रूप भावात्मक है। काव्य की परिभाषा आपके मत के अनुसार इस प्रकार है—"कविता और दर्शन से कोई संबंध नहीं। कविता कला है,

दर्शन ज्ञान। कविता का काम मस्तिष्क को सुख देना है, उसको ऊपर उठाने में सहायता देना है। यह काम दर्शन का है कि मनुष्य को जीवन का ठीक मार्ग दिखलाए—कविता का यह क्षेत्र नहीं।" आप काव्य-युग को 'मानसिक और आध्यात्मिक विकास का युग' मानते हैं। 'मधुकण' की भूमिका कवि ने बड़ी योग्यता से लिखी है। काव्य का विवेचन, छायावाद की परिभाषा तथा वर्तमान हिंदी में उसका स्थान आदि विशिष्ट विषयों पर कवि ने अपना मत स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। हम आपकी पाँच सुंदर रचनाएँ नीचे देते हैं—

कसक-कहानी

इस दुख में पाओगी सुख की धुँधली एक निशानी;
आहों के धुँधले शोलों में तुम्हें मिलेगा पानी।
रो - रो देते मूर्ख यहाँ पर, हँस - हँस देते ज्ञानी;
अरी दिवानी, सोच-समझकर सुनना कसक - कहानी।

यहाँ कल्पना का संसार—
'छाया' है जिसका आधार,
मनसिज, मलय, मधुप, मधुमास,
कमल - कुंज उल्लास विलास,
नवल उमंगों का उपहार,
जीवन की सुखमा का सार—

यह बन गया पलक में बन अपलक नयनों का पानी,
स्मृति ही शेष रह गई विस्मृति की अब एक निशानी!
आशा के फेरे में पड़कर नाच रहा था ज्ञानी,
अरी दिवानी, बस इतनी - सी मेरी कसक - कहानी!

❀ ❀ ❀

मानस की प्रमुदित लहरें थी, थी प्रातः की वेला;
खेल रहा था मचल - मचलकर पागल हृदय अकेला।
यहाँ हलाहल था, हाला थी, था प्यालों का मेला;
जीवन का मतवालापन था, जन-रव का था रेला।

मुसकाता था अरुण प्रभात,
और हँस रहा था जलजात,
किंतु लोप हो गया विलास,
रुदन बन गया सहसा हास,
घिर आई अँधियारी रात,
उमड़ पड़े वो सागर सात,

'थी प्रातः की अरुण उषा में अंधकार की रेखा!'
काल - चक्र के महा - प्रलय मे बस इतना ही देखा।
नत - मस्तक सगर्व चलते थे, झुकते थे अभिमानी;
अरी दिवानी, विश्व - व्याप्त है मेरी कसक - कहानी।

❀ ❀ ❀

कुछ रोते थे—"जग सपना है, अपना मन ही छल है;"
कुछ हँसते थे—"जीवन सुख है, दुख की भ्रांति प्रबल है।
काल-चक्र है सबल, और यह विकल हृदय निर्बल है;
इन दोनो में भ्रमता रहता मम ममत्व पागल है।"

संशय कभी, कभी विश्वास,
कभी उमंग, कभी निःश्वास,
आज पुण्य है, कल है पाप,
भ्रम ही है भ्रम का अभिशाप,
एक दूसरे का है त्रास,
उनका रुदन हमारा हास,

जो न शांत हो सके, हृदय की यह कैसी हलचल है;
कुछ थोड़े-से क्षण जीवन की अवधि आज है, कल है!
किंतु यहाँ उठता रहता है प्रतिपल आगो - पानी;
अरी दिवानी, एक पहेली है यह कसक - कहानी।

* * *

यहाँ प्रकृति है पाप, पुण्य आत्मा का पूर्ण दमन है;
स्वेच्छा है भ्रम-पाश, यहाँ पर भक्ति नियम - बंधन है।
यहाँ पूज्य अज्ञात, उपेक्षित तर्क तथा दर्शन है;
अंधकार - ही - अंधकार यह छोटा - सा जीवन है।

जो अनुकूल, वही प्रतिकूल,
उनका फूल हमारा शूल,
अरे व्यर्थ है सकल प्रयास,
जो कुछ है, वह है विश्वास,
व्यर्थ भावना यह निर्मूल,
संशय है जीवन की भूल,

यहाँ रंग है व्यंग साधना, शुष्क यहाँ पावन है;
अपने ही के लिये यहाँ पर दूषित अपना-पन है।
यहाँ अंध - विश्वास धर्म को सुंदर एक निशानी;
अरी दीवानी, एक व्यंग है मेरी कसक - कहानी।

* * *

यहाँ मिलेगी आग, यहीं पर तुम्हे मिलेगा पानी;
अरे मिलेगी स्वर्ग-नरक की तुमको यहीं निशानी।
इतना रखना याद, यदपि है बीती बात पुरानी;
बह जाते हैं मूर्ख यहाँ पर, रह जाते हैं ज्ञानी।

अरुण अधर का सुमधुर हास,
नवयौवन का विकृत विलास,

एक व्यंग या व्यंग अजान,
था पतंग का स्वप्न महान,
दुख का उजड़ा हुआ प्रवास,
इस जीवन का है उपहास,
इस ममत्व से विश्व विलिप्त है, रखना याद दिवानी,
नहीं बचा है इस प्रवाह से कोई भी अभिमानी।
अपनी - अपनी सब कहते हैं, सुनता कौन बिरानी;
अरी दिवानी, सोच - समझकर सुनना कसक - कहानी।

मेरी आग

निज उर की वेदी पर मैंने महायज्ञ का किया विधान;
समिधि बनाकर ला रक्खे हैं चुन-चुनकर अपने अरमान।
अभिलाषाओं की आहुतियाँ ले आया हूँ आज महान,
और चढ़ाने को आया हूँ अपनी आशा का बलिदान।
अभिमन्त्रित करता है उसको इन आहों का भैरव राग;
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

*　　*　　*

आमंत्रित हैं यहाँ कसक से क्रीड़ाएँ करनेवाले;
हृदय-रक्त से निज वैभव के प्यालों को भरनेवाले।
जीवन की अतृप्त तृष्णा से तड़प-तड़प मरनेवाले;
अंधकार के महा उदधि में अंधों-से तरनेवाले।
फूल चढ़ाने वे आए हैं, जिनमें मिलता नहीं पराग;
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

*　　*　　*

इस उत्सव में आज जुड़े हैं हँस-हँस बलि होनेवाले;
निज अस्तित्व मिटाकर पल में तन-मन-धन खोनेवाले।

उर की लाली से इस जग की कालिख को धोनेवाले;
हँसनेवालों के विषाद पर जी भरकर रोनेवाले।
आज आँसुओं का घृत लेकर आया है मेरा अनुराग;
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

* * *

यहाँ हृदयवालों का जमघट पीड़ाओं का मेला है;
अर्घ्यदान है अपने-पन का, यह पूजा की बेला है।
आज विस्मरण के प्रांगण में जीवन की अवहेला है;
जो आया है यहाँ, प्राण पर वह अपने ही खेला है।
फिर न मिलेंगे ये दीवाने, फिर न मिलेगा इनका त्याग;
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

* * *

लपटें हों विनाश की, जिनमें जलता हो ममत्व का ज्ञान;
अभिशापों के अंगारों में झुलस रहा हो विभव-विधान।
अरे, क्रांति की चिनगारी से तड़प उठे वासना महान;
उच्छ्वासों के धूम्र-पुंज से ढक जावे जग का अभिमान।
आज प्रलय की वह्नि जल उठे, जिसमें शोला बने विराग;
जल उठ! जल उठ! अरी धधक उठ महानाश-सी मेरी आग!

प्रेम-संगीत

तुम अपनी हो, जग अपना है,
किसका किस पर अधिकार प्रिये?
फिर दुविधा का क्या काम यहाँ,
इस पार या कि उस पार प्रिये!
देखो, वियोग की शिशिर रात
आँसू का हिमजल छोड़ चली;

ज्योत्स्ना की वह ठंडी उसाँस
दिन का रक्तांचल छोड़ चली।

चलना है सबको छोड़ यहाँ
अपने सुख-दुख का भार प्रिये!
करना है, कर लो आज उसे,
कल पर किसका अधिकार प्रिये!

हैं आज शीत से झुलस रहे
ये कोमल, अरुण कपोल प्रिये!
अभिलाषा की मादकता से
कर लो निज छवि का मोल प्रिये!

इस लेन-देन की दुनिया में
निज को देकर सुख को ले लो;
तुम एक खिलौना बनो स्वयं,
फिर जी भरकर सुख से खेलो।

पल-भर जीवन—फिर सूनापन,
पल-भर तो लो हँस-बोल प्रिये!
कर लो निज प्यासे अधरों से
प्यासे अधरों का मोल प्रिये!

सिहरा तन, सिहरा व्याकुल मन,
सिहरा मानस का गान प्रिये!
मेरे अस्थिर जग को दे दो,
तुम प्राणों का वरदान प्रिये!

भर-भरकर सूनी निःश्वासें
देखो सिहरा-सा आज पवन;
है ढूँढ़ रहा अविकल गति से
मधु से पूरित मधुमय मधुवन।

यौवन की इस मधुशाला में
है प्यासों का ही स्थान प्रिये!
फिर किसका भय? उन्मत्त बनो,
है प्यास यहाँ वरदान प्रिये!

हँसकर प्रकाश की रेखा ने
वह तम में किया प्रवेश प्रिये!
तुम एक किरण बन दे जाओ
नव-आशा का संदेश प्रिये!

अनिमेष दृगों से देख रहा
हूँ आज तुम्हारी राह प्रिये!
है विकल साधना उमड़ पड़ी
होठों पर बनकर आह प्रिये!

मिटनेवाला है सिसक रहा,
उसकी ममता है शेष प्रिये!
निज में लय कर उसको दे दो
तुम जीवन का संदेश प्रिये!

कुछ क्षण

कुछ क्षण, जीवन के कुछ छोटे-से क्षण ये,
अस्तित्व-ज्ञान के कुछ बिखरे-से कण ये,
जिनमें कुरूपता जग की · अपनेपन की
प्रतिबिंबित है वे क्षत-विक्षत दर्पण ये।

लेकर निज उर में आग, नयन में पानी
कहने बैठा हूँ इनकी आज कहानी!

यह जीवन क्या है? केवल एक पहेली,
यह यौवन क्या है? विस्मृति की रँगरेली।

यह आत्मज्ञान तो भ्रम है, भ्रम है, भ्रम है ;
ममता रहती है निशि-दिन यहाँ अकेली।
जी भरकर मिललो आज, ठिकाना कल का,
युग का वियोग, संयोग एक ही पल का।
जग क्या है, उसको जान नहीं पाता हूँ ;
मैं निज को ही पहचान नहीं पाता हूँ।
जग है,* तो मैं हूँ, मैं हूँ, तो यह जग है ;
जग मुझमें, मैं भी जग में मिल जाता हूँ।
यह एक समस्या, कठिन जिसे सुलझाना,
सुलझानेवाला हाय बना दीवाना !
दीवानापन है पाप ? नही, जीवन है ;
जीना क्या केवल ज्ञान व्यर्थ क्रंदन है।
ममता पर निशि-दिन हँस-हँसकर घुल-घुलकर;
मरनेवाले का यहाँ मृत्यु ही धन है।
कामना कसक है, और तृप्ति सूनापन ;
हँसना ही तो है मृत्यु, रुदन है जीवन !
उसने जाना है निशि-दिन सुख से सोना ;
जिसने जाना है रात - रात - भर रोना।
जो रो न सका, वह नहीं जानता हँसना ;
सुख में दुख, दुख में सुख-यह जग का रोना।
वह पा न सका है, पा न सकेगा सुख को,
जो जान सका है नही अभी तक दुख को !
वैभव - सागर का बूँद - बूँद उत्पीड़न,
आहों के जग का प्रतिकण पुलकित स्पंदन,
नादान विश्व क्या समझ सकेगा उसको ;
मर मिटने में ही अरे यहाँ है जीवन।

चातक से सीखो तड़प - तड़प मर जाना ;
सीखो पतंग से निज अस्तित्व मिटाना ।
मधुकर क्या जाने प्रेम ? प्रेम है पीड़ा ;
पीड़ा है अविकल त्याग, सौख्य की व्रीड़ा ।
कलिका का ले सर्वस्व, नष्ट कर उसको
उड़ जाने में ही है मधुकर की क्रीड़ा ।
रस में मिल जाना ही है रस का पीना ;
जो मिट न सका, वह नहीं जानता जीना ।
लेना पल-भर का, युग-युग-भर का देना ;
निज का देना ही है जीवन का लेना ।
बाज़ार उठ रही, और दूर जाना है ;
जितना बन पावे, कर लो लेना-देना ।
उर की लाली से मुख की कालिख धो लो ;
सर आज हथेली पर है, बोली बोलो !
यह खेल नहीं है, प्राणों का विक्रय है ;
जीवन पर मिट-मिट जाओ, किसका भय है ?
यदि आज नहीं, तो निश्चय जानो कल ही
ले लेगा तुमको काल, बड़ा निर्दय है ।
मिटनेवाले को मरने से क्या डरना,
जिसमें ममता है, उसको ही है मरना ।
है एक सत्य विश्वास, चलो, खुल खेलो ;
निर्भय हो जग के कठिन कष्ट को झेलो ।
है अविश्वास, भय, पाप, छोड़कर इनको
यश-अपयश जो कुछ मिले, उसी को ले लो !
हैं अमर यहाँ पर खुलकर करनेवाले ;
पग-पग पर मरते रहते डरनेवाले !

मस्ती से हस्ती भरी हुई ग़ाफ़िल की ;
मत बात चलाना अरे अभी मंज़िल की।
चलना है हमको, बरबस जाना होगा ;
फिर क्यों रह जाने पावे दिल में दिल की।
मैं समय-सिंधु में डुबा चुका अपनापन ;
कल एक कल्पना, और आज है जीवन !

मिलन

कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें !
जीवन - सरिता की लहर - लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये !
संयोग क्षणिक, फिर क्या जानें
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये !
पल-भर तो साथ-साथ बह लें !
कुछ सुन लें, कुछ अपनी कह लें !
आओ, कुछ ले लें औ' दे लें !
हम हैं अजान पथ के राही,
चलना जीवन का सार प्रिये !
पर दुःसह है, अति दुःसह है
एकाकीपन का भार प्रिये !
पल-भर हम-तुम मिल हँस खेलें,
आओ, कुछ ले लें औ' दे लें !
हम - तुम अपने में लय कर लें
उल्लास और सुख की निधियाँ,
बस, इतना इनका मोल प्रिये !

करुणा की कुछ नन्हीं बूँदें,
कुछ मृदुल प्यार के बोल प्रिये !
सौरभ से अपना उर भर लें !
हम-तुम अपने में लय कर लें !
हम-तुम जी-भर खुलकर मिल लें !
जग के उपवन की यह मधु-श्री,
सुषमा का सरस वसंत प्रिये !
दो श्वासों में मिट जाय, और
ये श्वासें बने अनंत प्रिये !
मुरझाना है, आओ, खिल लें !
हम-तुम जी-भर खुलकर मिल लें !

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीजगन्नाथप्रसाद खत्री 'मिलिंद'

६—जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'

[श्रीजगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' का जन्म संवत् १६६४ विक्रमीय में, मुरार (ग्वालियर) में, खत्री-वंश में, हुआ । प्रारंभिक शिक्षा मुरार-हाईस्कूल तथा माध्यमिक महाराष्ट्र के अकोला-नगर के तिलक-राष्ट्रीय स्कूल में मिली । तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ, पूना से मैट्रिक पास किया । फिर काशी विद्यापीठ में तृतीय वर्ष के अंतिम समय तक अध्ययन किया । आपको हिंदी, उर्दू, अँगरेज़ी, संस्कृत आदि के अतिरिक्त मराठी, बँगला, गुजराती आदि भारत की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं का भी ज्ञान है । आप शांति-निकेतन में साल-भर तक अध्यापन कार्य करके, कौटुंबिक आपत्तियों से विवश होकर घर लौट आए ।

किशोरावस्था में आप पर अकोला के विदर्भ गुरुकुल के अध्यापक श्रीरघुनाथगणेश पंडित का विलक्षण प्रभाव पड़ा । उसी समय से आपकी जीवन-धारा बदल गई । यौवन में काशी-विद्यापीठ के अध्यापकों का, विशेषतः आचार्य नरेंद्रदेवजी का, अच्छा प्रभाव पड़ा । शांति-निकेतन के विद्या-भवन के अध्यक्ष पं० विधुशेखरजी शास्त्री भट्टाचार्य तथा कलाभवन के अधिष्ठाता श्रीनंदलाल बोस के सत्संग से भी आप काफ़ी प्रभावित हुए ।

कविता आपने सर्वप्रथम १४ वर्ष की आयु में ही लिखी । सन् १६२२ की होली का दिन था । आपने महात्माजी की गिरफ्तारी का समाचार पढ़ा । उस समय आप सामयिक लहर में बहकर राष्ट्रीय विद्यालय के छात्र बन चुके थे । उस संवाद से आपके मन में एक अबोध वेदना हुई । सारे राग-रंग छोड़कर प्रथम बार आपने

कविता लिखकर 'राजस्थान-केसरी' पत्र को भेजी। वह उनकी उस प्रसंग की कविताओं में सर्व-प्रथम रक्खी गई। उसी समय से आपने पत्रिकाओं में कविता लिखना प्रारंभ कर दिया। 'माधुरी' के प्रादुर्भाव से आपकी रुचि कविता की ओर अधिक हुई, और धीरे-धीरे उसमें प्रौढ़ता आनी प्रारंभ हुई। सन् १९२५ से उस प्रकार की कविताएँ लिखनी प्रारंभ कर दीं, जिसे 'हृदयवाद', 'छायावाद' या 'रहस्यवाद' कहते हैं। सन् १९२९ ई० तक आपने बहुत-सी कविताएँ लिख डालीं, और पत्रों में भी प्रकाशित कराईं। आपकी 'त्रिलोचन', 'निवारण', 'विश्वसुंदरी' आदि सर्वोत्तम कविताएँ उसी काल की हैं। उसके बाद सन् १९२९ में आप शांति-निकेतन चले गए। तब से आपकी कविता-धारा की गंभीरता और विस्तार तो बढ़ा, पर गति कुछ रुक गई। बाद को फिर लिखने लगे, और अब तक बराबर लिखते जा रहे हैं।

'मिलिंद'जी न केवल पद्य ही, वरंच गद्य लिखने में भी सिद्धहस्त हैं। श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी की' 'आँखों में' पुस्तक की भूमिका तथा 'प्रताप-प्रतिज्ञा'-नाटक इसके उदाहरण हे। आपका 'पखुरियाँ' (कविता-संग्रह) शीघ्र ही प्रकाशित हो रही हैं। चित्तवृत्ति भावुक एवं विनोद-प्रिय होते हुए भी गंभोर चिंतन में आपको बहुत आनंद आता है। आप अपने जीवन और साधन से सदा असंतुष्ट रहते हैं। अक्षय प्यास, ज्ञान और कला के क्षेत्र में अतृप्त भ्रमरी-वृत्ति को देखकर आपके गुरुजनों ने विद्यार्थी-अवस्था में ही आपका प्यार का नाम 'मिलिंद' रख दिया था।]

श्रीजगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' छायावाद के प्रसिद्ध कवियों में से हैं। आपकी कविताओं में एक ऐसी विशेषता है, जिसने थोड़े ही समय में कविता-क्षेत्र में अपना एक स्थान बना लिया है। गंभीर भावों की कविताओं में प्रधानता है। 'मिलिंद'जी

विद्यार्थी-अवस्था से ही ऐसे वातावरण में रहे हैं, जिसका प्रभाव जीवन तथा आपकी कविताओं पर विशेष रूप से पड़ा। कविताओं में ओज, माधुर्य तथा गंभीरता का अच्छा सम्मिलन है। गंभीर चिंतन, भावुकता-पूर्ण विचार-धारा का प्रवाह प्रवाहित है। कवि कई वर्ष से कविता लिख रहा है। ऐसी दशा में यदि हम उसके काव्य पर दृष्टिपात करते हैं, तो उसे कई रूपों में पाते हैं। प्रारंभिक काल की कविताओं से प्रकृति-निरीक्षण और प्रकृति-प्रेम का परिचय मिलता है। उस समय फूल, कली, उपवन, भ्रमर आदि विषयों पर अधिक कविताएँ लिखी गईं। उनमें सरसता और मधुरता अधिक है। कवि के जीवन की दूसरी लहर आवेग पूर्ण है। इस समय की कविताओं पर सामयिकता का अधिक प्रभाव है। उसी समय 'अग्निगान'-नामक रचना आवेग-पूर्ण भाषा में लिखी। उस समय कवि की भाव-धारा किधर बह रही थी, यह उसकी 'उगता राष्ट्र' कविता से प्रकट हो जाता है। तीसरा परिवर्तन कवि की रचनाओं में उस समय पाया जाता है, जिस समय प्रेम और करुणा से युक्त सरस वेदना पूर्ण कविताएँ लिखी गईं। चौथा परिवर्तन आजकल की छायावादी रचनाएँ हैं।

'मिलिंद'जी की रचनाएँ उत्कृष्ट काव्य के दृष्टिकोण से उत्तम होती हैं। इन कविताओं की यह विशेषता है कि कवि ने इनमें मृत्यु की फ़िलासफ़ी मधुर भाषा में व्यक्त की है। रहस्यमय के रहस्य के पर्दे को खोलकर उसके दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। कवि अनंत को सीमा के घूँघट के भीतर मुस्किराते हुए देखता है, और सुख-दुःख के पार बसनेवाले आनंद की उसमें आकांक्षा करता है। कविताओं में असीम आध्यात्मिक आनंद है। इनमें दर्शन और वेदांत का सुंदर, मधुर और मादक रूप दिखाई देता है। भावों की ऊँची उड़ान है। आनंद की झलक और विचारों

की गहराई है। कवि को विद्यापीठ और शांति-निकेतन-ऐसी संस्थाओं का सहयोग मिला था। इसी के परिणाम-स्वरूप ऐसा ज्ञात पड़ता है कि हार्दिक स्नेह और सहानुभूति के आधार पर स्थापित भारत की अंतरप्रांतीय सांस्कृतिक एकता कवि का स्वप्न है।

आपने कविता के संबंध में एक स्थान पर बड़ी गंभीरता के साथ लिखा है—"कवि का मन स्वभावतः ही इतना सुसंस्कृत होना चाहिए कि उसमें उठनेवाला प्रत्येक विचार भविष्य में संसार के लिये हितकर प्रमाणित हो। जिसका मन असंस्कृत है, वह कवि नहीं। रचना करते वक़्त कवि को अपने मन पर उद्देश्य का भार कदापि न लादना चाहिए। उसे हर हालत में आत्मपरितोष ही के लिये कविता करनी चाहिए। यदि उसकी आत्मा निष्कलुष हुई, तो उसे केवल उन्हीं भावों से परितोष होगा, जो विश्व-कल्याण के कारण होंगे। कविता को परिभाषा की दीवारों में क़ैद कर देना अच्छा नहीं। जिस प्रकार पहले भाषा का निर्माण होता है, फिर व्याकरण का, उसी प्रकार पहले कविता की सृष्टि होती है, फिर परिभाषा की। कवि का काम केवल सृष्टि करना है, और समीक्षक का काम परिभाषा निश्चित करना। कोयल संगीत-शास्त्र का अध्ययन नहीं किए रहती, किंतु वह बेसुरा नहीं गाती। उसका स्वर 'पंचम' कहकर पुकारा जाय या 'सप्तम', यह संगीत-मर्मीक्षक निश्चित करें। उसे इससे कोई मतलब नहीं। कवि भी इसी प्रकार कविता का एक केंद्र-बिंदु हृदय में अनुभव करता है। जब तक उसकी अनुभूति उसे स्पष्ट नहीं करती, तब तक वह उसे अभिव्यक्त नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि वह कविता नहीं होगी। निरक्षर होते हुए भी कुशल गायक जिस प्रकार मधुर संगीत के बीच में विवादी स्वर आते ही विकल हो जाता है, उसी प्रकार साहित्य-

समीक्षा-शास्त्र का पारंगत न होते हुए भी कवि कुकविता और सुकविता को झट पहचान लेता है, चाहे वह दूसरों की रचना हो या उसकी अपनी हो।" इस अवतरण से 'मिलिंदजी' को काव्य-प्रगति के संबंध में कुछ परिचय मिल जाता है। कवि कितने स्वतंत्र विचारों का है, यह उक्त पंक्तियों से प्रकट हो जाता है। महाकवि रवींद्र से भी एक बार किसी ने उनकी किसी कविता का अर्थ पूछा। कवि ने यही उत्तर दिया कि मैं कवि हूँ, समीक्षक नहीं। इसी विचार की पुष्टि 'मिलिंद'जी की उक्त पंक्तियों से होती है।

'मिलिंद'जी का काव्य-साहित्य प्रारंभ ही से एक ऐसी दिशा की ओर झुका हुआ है, जिसमें आंतरिक सौंदर्य प्रकट होता है। कवि पहले प्रकृति का पुजारी बना। प्राकृतिक वस्तुओं का निरीक्षण बड़ी गहराई के साथ किया। ऐसी कविताओं में कल्पना की प्रधानता है, अनुभूति की नहीं। छंद प्रायः लक्षण-ग्रंथों के अनुरूप हैं, किंतु दूसरी लहर जब कवि के जीवन में आई, तो कविता कुछ प्रौढ़-सी हो गई। भावनाओं की तार-तम्यता का एक परिष्कृत रूप दिखाई पड़ा है। 'जगता राष्ट्र' कविता भावना-प्रधान है, और उसमें सामयिकता की लहर लहराती है। ओज का एक व्यापक स्वरूप दिखलाई देता है। प्रधानतः कल्पना के मधुर और सुंदर चित्रण से युक्त है। यद्यपि कविता सामयिक है, किंतु स्थान-स्थान पर भावनाओं की सुंदर प्रतिध्वनि कर्ण-गोचर होती है—

तुम यौवन फल के पुष्प और
शैशव - कलिका के हो विकास ;
तुम दो विश्वों के संधिस्थल
पर आशा के उज्ज्वल प्रकाश।

तुम जीर्ण जगत के नवचेतन,
वसुधा के उर की अमर श्वास;
तुम उजडे उपवन की बहार,
मेरे किशोर! मेरे कुमार!

देश के नवयुवकों के प्रति कवि का कितनी भावना-पूर्ण और सुंदर युक्ति है। तुम यौवन के फल लानेवाले पुष्प हो, शैशव-कलिका के विकास हो, जर्जरित संसार को नवचेतना देनेवाले हो, संसार के हृदय की अमर श्वास हो, तुम उजड़े उपवन की बहार हो। यह भावना कवित्व-पूर्ण है। कवि भारतीय संस्कृति का पुजारी है। भारतीय संस्कृति द्वारा ही वह संसार को नवचेतना प्रदान करनेवाला है। किसी देश के युवक ही उसके प्राण हैं। कवि साधारण उक्ति भी चमत्कार के साथ कहता है। यही विशेषता है—

तुम एक-एक वे जल-कण, जो
मिलकर बनते अगणित सागर;
वे एक-एक तारक, जिनसे
जगमग करता विस्तृत अंबर।
तुम वे छोटे-छोटे रज-कण,
जिन पर असीम वसुधा निर्भर;
तुम लघुता की प्रतिमा अपार
मेरे किशोर! मेरे कुमार!

कवि लघुता की महिमा को महत्त्व देता है। वह युवक का जीवन उस जल-कण के समान समझता है, जिससे मिलकर समुद्र बनता है। सीमता में असीमता का अनुभव करना कवि का हृदय-धर्म सिद्ध होता है। इस प्रकार की कविताओं के लिखने के पहले ही कवि ने गंभीर चिंतन और अध्ययन-पूर्ण कविताएँ लिखी थीं। 'विश्वसुंदरी',

'त्रिलोचन' और 'निवारण' कविता में भाव, कल्पना का इतना सुंदर समावेश है कि कवि का अंतर्जगत् प्रतिध्वनित होकर सामने प्रकट हो जाता है। विश्व को कवि ने एक सुंदरी के समान अनुमान किया है। वह विश्व में सुंदरी की रूप-रेखा का अनुमान करता है—

सर के लहराते जीवन - सा,
जब स्वर - लहरी के कंपन - सा
लहराता है मलयानिल में
इस अंचल का छोर,
पाते ही असीम आह्वान
लहरा देता है अनजान—
प्राची और प्रतीची के
प्राणों में एक हिलोर।
लहराता जब मलयानिल में
इस अंचल का छोर।

कल्पना, मादकता और दार्शनिक विचारों का इसमें समावेश है। कवि की इस प्रकार की कृतियों में भावना और कल्पना की प्रधानता है, इसलिये कुछ दुरूह और अस्पष्ट अवश्य हो गई हैं। इसी प्रकार की 'त्रिलोचन' कविता भी है। यह रचना भावना और कल्पना की प्रतिमूर्ति है। त्रिलोचन (शिव) के नेत्रों का भावना-पूर्ण चित्र देखिए—

एक पलक में मुँदती रजनी,
एक पलक में खुलता दिन,
क्रीड़ा का क्रम सृजन विसर्जन
प्रचलित है प्रतिदिन, प्रतिक्षण।
कितना अस्थिर है लीलामय
पलकों का उत्थान-पतन।

कवि के मनोभाव आंतरिक जागृति के संदेश हैं। 'पलकों का उत्थान-पतन' कितना अस्थिर है, इसमें स्वाभाविक बात को कवि ने मार्मिक ढग से कहा है। यह एक प्रकार का खेल है, क्षण मे सृजन और क्षण में विसर्जन! क्षण के परिवर्तन में प्रकाश-अँधेरा, राग-विराग, जरा-यौवन, तृप्ति-अतृप्ति, निराशा-आशा, रुदन-हँसी, विस्मरण-स्मरण, सुख-दुख, हानि-लाभ, यश अपयश, विजय-पराजय और अंत में जन्म-मरण का रूप दृष्टिगोचर होता है। इसमें कवि का कितना गंभीर चिंतन प्रकट होता है। कवि की आंतरिक प्रेरणा का साकार रूप इस चित्र में चित्रित हो जाता है। जब 'वह' 'अभेद' के प्याले में मद की चितवन ढालता है, तब द्वेप, निराशा, संशय, प्रतीति, अनय और जन्म-मरण की भीति नहीं रह जाती। साधना की ही बहुरूपता कवि ने भावनाओं में अंकित की है। इसीलिये वह सम्मोहित होकर स्मित में, आँसू में, सुख में, दुख में, मादकता में उसकी छवि पर प्राणों के छंद भर-भरकर निछावर करने को अत्यंत उत्सुक हो उठता है। इन कविताओं में कवि की कल्पना की उड़ान इतनी ऊँची है कि हृदय भटकने लगता है। उसके सामने भावनाओं के ऐसे सामूहिक रूप उपस्थित हो जाते हैं कि उस तत्त्व को वह समझने में अपने को असमर्थ पाता है। 'निवारण' कविता इसी प्रकार के मर्मों से पूर्ण है।

कवि की अनुभूति और काव्य के अनुरूप ही उसकी आध्यात्मिक और रहस्यवादी या छायावादी रचनाएँ हैं। इनमें कवि की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। कविताएँ प्रेरणात्मक हैं। उनमें आंतरिक प्रेरणा है, उन्माद है, और आध्यात्मिक चिंतन की झलक है। श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर का कहना है—"सौंदर्य से, प्रेम से, मंगल से, पाप को एकदम समूल नष्ट कर देना ही हमारी आध्यात्मिक प्रकृति की एकमात्र आकांक्षा है।" 'मिलिंद'जी की रचना भी कुछ

इसी प्रकार की भावना के अनुरूप है। वह भी सौंदर्य से, प्रेम से पाप को नष्ट करने की प्रवृत्ति के इच्छुक हैं। प्रार्थना है—

प्राणों की वीणा पर छेड़ो
　　ऐसा एक महा संगीत ;
लीन तुच्छ तानें जीवन की
　　हो जिसके व्यापक स्वर में।
एक अमर सौंदर्य बसा दो
　　मेरे नयनों में, उर में।
क्षणिक रूप के कण खो जावें
　　जिसकी छवि के सागर में।
क्षुद्र कामनाएँ मैं अपनी
　　जिसमें लय कर दूँ सारी ;
ऐसा महानुराग जगा दो
　　मंगलमय ! इस अंतर में।

कवि उस महासंगीत का आह्वान करता है, जिसके व्यापक स्वर में जीवन की तुच्छ तानें लीन हो जायँ। वह अपने नेत्रों और हृदय में उस अमर सौंदर्य के बसाने की प्रार्थना करता है, जिसकी छवि के समुद्र में क्षणिक रूप विलीन हो जाय। साथ ही वह उस महानुराग की जागृति का स्वप्न देखता है, जिसमें वह अपनी क्षुद्र कामनाओं का लय कर दे। कितनी मंगलमय प्रार्थना है। वह अनुराग और सौंदर्य से अपने मन को तुच्छ कामनाओं और क्षणिक सुख को जीतना चाहता है। यही भारत की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक रुचि है। 'विश्व-रूप' कविता में कवि ने जिस असीमता का आह्वान किया है, वह आंतरिक अनुभूति की अभिव्यक्ति है। वह अपने प्रियतम के नवीन रूपों का दर्शन प्राप्त करना चाहता है—

वह वि॑वरूप बन आओ मेरे सुदर,
जो रेखाओ का बदी बने न पट पर।
जिसको भर रखने को तपकर जीवन-भर
उर बने एक दिन अत-हीन नीलांबर।
अनुभव को दृग तक ही सीमित न बनाओ,
छवि से जीवन के अणु-अणु को भर जाओ।
हर झाँकी मे विस्तृततर बनकर आओ;
जग के प्राणो की प्रतिक्षण परिधि बनाओ।

'बिखरे भाव' कविता अधिकतर छायावादी भावनाओं और अनुभूतियों से पूर्ण है। कवि कहता है कि उस अनत की सौंदर्य-किरण को छूकर अपना जीवन सुनहला बनाओ—

जिसमे 'रस' मानस मे खिलते,
अमित 'रूप' शतदल प्रतिक्षण,
उस सौंदर्य - किरण से छूकर
करो सुनहला यह जीवन।

इसमें 'उसको' शब्द का प्रयोग रहस्यवादी अर्थ का द्योतक है। उस असीम शक्तिवाले के सौंदर्य से ही वह जीवन को सुनहला बनाना चाहता है। 'सुनहला'-शब्द कितना व्यंजना-पूर्ण है, मुहावरेदार है।

निर्मल स्नेह प्रभात - सुमन का
सांध्य उषा की करुणा मौन,
सखि, इन अधरों की प्याली मे
मिला गया चुपके - से कौन?
जिसकी छवि मे अखिल विश्व का
अनुभव मिलन कराता है;
अखिल विश्व मे विरह उसी की
क्षण-क्षण छवि दिखलाता है।

इन दोनो रचनाओं में रहस्य की सुंदर अभिव्यक्ति है। अखिल विश्व मे उसी की विरह विद्यमान है, और वही क्षण-क्षण में अपनी छवि दिखलाता है, आदि विचारों में कवि की प्रेरणा का रूप प्रदर्शित है। यह स्पष्ट भाव-व्यजना है। इसमें छायावाद की गूढ़ता भी अंतर्हित नही है, जो किसी की बुद्धि के परे हो। 'बिखरे भाव' की पचीस कविताएँ बड़ी मार्मिक और अनुभव-पूर्ण हैं। कवि ने बड़ी सुंदर उक्तियों से अपनी प्रेरणा का स्वप्न देखा है। 'महामृत्यु', 'स्नेहमयि', 'मोहावृता', 'जीवन-दीप' आदि कवि की अन्यान्य कविताएँ भी अनुभूति-पूर्ण है। 'अनुरोध' कविता में कवि ने 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' की प्रेरणा का सुंदर चित्र खींचा है। वह संसार को आध्यात्मिक चितन करनेवाले की दृष्टि से देखता है—

जीवन-पथ की अमिट अमावस
बने निमिष मे स्वर्ण - समान ;
बिखरा दो उदार अधरो से
किरणो की उज्ज्वल मुसकान।

एक अनिंद्य रूप की ज्वाला
देवि ! जला दो त्रिभुवन में,
जिसमे अशिव, असत्य, असुंदर
हो सब भस्म एक क्षण मे।

रँग दो मेरे स्वप्न सजनि, सब,
जीवन-मरण अरुण कर दो ;
जन्म-जन्म का शून्य पात्र यह
आज बूँद-भर मे भर दो।

आत्मा को उज्ज्वल और पवित्र बनाने में कवि को उन किरणों के प्रकाश की आवश्यकता है, जिससे जीवन-पथ की अमिट अमावस

स्वर्ग के समान बन जाय। वह संसार से 'अशिव, असत्य और असुंदर' वस्तुओं को एक क्षण में भस्म होना देखना चाहता है। तनिक भी वह अपने आदर्शवाद के सम्मुख झुकना नहीं चाहता। उसकी आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति तभी हो सकती है, जब 'वह' जन्म-जन्म से जीवन का शून्य पात्र अपनी कृपा की एक बूँद से भर देगा। इस विचार में कितनी गूढ़ भावना का प्रदर्शन किया गया है।

इसी प्रकार से कितनी ही कविताओं में कवि के रहस्यवादी विचारों और आध्यात्मिक चिंतन का अनुभव होता है। भावों, विचारों और अनुभूति की अभिव्यक्तियों का उज्ज्वल रूप 'मिलिंद'जी की कविताओं में दृष्टिगोचर होता है। यों तो अधिकांश कविताएँ बोधगम्य हैं, किंतु कहीं-कहीं अस्पष्टता अवश्य आ गई है। भाषा के दृष्टिकोण से कवि की रचनाएँ स्पष्ट और स्वच्छ हैं। खड़ी बोली के शब्दों और वाक्यों के शुद्ध प्रयोग की ओर कवि ने विशेष ध्यान दिया है।

कवि ने गद्य-रचना की ओर भी ध्यान दिया है। 'प्रताप-प्रतिज्ञा'-नाटक उसकी सुंदर कृति है। छोटा, किंतु सुंदर नाटक लिखकर कवि के सुंदर गद्यकार होने का अनुभव होता है। श्रीहरिकृष्ण 'प्रेमी' की 'आँखों में' पुस्तक की भूमिका लिखते हुए 'मिलिंद'जी ने काव्य के संबंध में जो विवेचना की है, वह उनके अनुभूति-पूर्ण चिंतन और 'सत्यं शिवं सुंदरम्' की उपासना का प्रतिबिंब है। काव्य, विशेषतः आध्यात्मिक या रहस्यवादी काव्य, का क्या तात्पर्य है, कवि का अंतर्जगत् कितना द्वंद्व-पूर्ण है, आंतरिक प्रेरणा के काव्यों को क्या स्थान मिलना चाहिए, इस संबंध में 'मिलिंद'जी के विचार गहन और मार्मिक हैं।

कवि ने अभी तक अनेक कविताओं की रचना की है, किंतु उनका एकत्र रूप न होने से उनकी भावना और अनुभूति के मर्मों

को खोजना पड़ता है। इसीलिये इनकी कविताओं की सम्यक् आलोचना अभी तक नहीं हो सकी, किंतु यह निर्विवाद है कि 'मिलिंद'-जी नवीन कवियों में विचार के दृष्टिकोण से उच्च रहस्यवादी कवि हैं। उनकी कविताएँ आंतरिक अनुभूति की अभिव्यक्तियों का प्रतिबिंब हैं। आपकी भेजी हुई पाँच सुंदर कविताएँ यहाँ दी जाती हैं—

निवारण

सजनि, लौटा लो यह आह्वान !

तुम्हारा लोक,
न तम है जहाँ, न है आलोक,
न सुख है और न शोक,
बहुत ऊँचा है, ध्रुव है, देवि,
न अस्थिर मर्त्य पहुँचता वहाँ,
झूमती रहती हो तुम जहाँ
अपनी ही मादकता में,
अपने ही 'अपनेपन' में,

बुलाती हो क्यों फिर तुम मुझे
अचानक इंगित कर हर बार,
रवि - शशि - तारक आदि
खोलकर अगणित द्वार ?

भूल जाती हो क्या, यह विश्व
बहुत नीचे है, मैं हूँ दीन,
दूर हो तुम, मेरी गति क्षीण।

मलिनता की कंथा कर दूर
यत्न करता हूँ ज्यों ही, चलूँ
एक ही दो पग मैं उस ओर,

विश्व कहता है—"ठहरो !
चले कहाँ ? दे दूँगा मैं अभिशाप !
चरण-रज पर मेरी विश्राम
करो ! बस यही तुम्हारा काम।"

हाय, इस दुविधा में पड़ मुझे
'न मिलती माया और न राम'।

पतन से जब मेरा उत्थान
देखता है होते लचार,
न-जाने क्यों, इसमें नादान
समझता है अपना अपमान !

सजनि, लौटा लो यह आह्वान !

* * *

सजनि, मानो न, करो न प्यार !

मेरे उर की मृदुल कल्पना की
अंगुलि लेकर कर में,
बना लहरों का यान,
अरी छविमान,

जब तुम लाँघ पूर्णता-सागर,
ले चलती हो मुझे भुलाकर,

देवि, उस पार ;

इधर हँसता है सब संसार,
उधर तुम्हारी सम्मोहन-सी

तानों पर मैं बाल,
दे उठता हूँ ज्यों ही ताल
साध-साध ये चरण
बिना अभ्यास
चपल, भोले, अनजान !
न-जाने क्यों हँसता संसार।
सजनि, मानो न, करो न प्यार।

❀ ❀ ❀

सजनि, मानो मत दो वरदान !
जब तुम अपनी हठी अँगुलियों से
ये रूखे केश
समुद सँवार,
वन-कुसुमों का मुकुट उदार
मेरे इस अवनत मस्तक पर
रख देती हो खेल-खेल में
चुपके-से सुंदर सुकुमार,
कर देती हो स्नेह-कणों से
मनमाना अभिषेक,
लुभा लेती हो भोले प्राण,
पुलक—मादक सुख का रोमांच
लुटा देता है मेरा ज्ञान।
सहज तुम चिबुक पकड़कर उठा
निरखती हो जब मेरा भाल,
एक चितवन में हृदय निहाल !
उठ जाते हैं नयन तुम्हारे मुख की ओर,
निरखते शशि को अलुब्ध चकोर।

तनिक उन्नत होता अज्ञात,
युगों के बाद
एक बार मेरा भी यह
भोला-भाला-सा भाव
छोड़कर अनायास अवसाद।
तृप्ति का गौरव ! आह !
न रहती जग की चाह !
क्योंकि 'ऊँची है इसकी हाट
और फीका पकवान'।
तुम्हारे आराधन में इसे
भूल जाता हूँ मैं अनजान,
न कर पाता वांछित सम्मान।
रूठकर मुझ पागल से, विश्व
उसी को कह उठता 'अभिमान'।
हाय, क्या वह भी है 'अभिमान' ?
सजनि, मानो, मत दो वरदान !

विश्व-सुंदरी

खिल उठता है हृदय-गगन का,
जल, थल, अनिल, अनल, कण-कण का,
खिलती है जब इन अधरों पर
ऊषा-सी मुसकान,
जग के श्रांत पथिक, बन मधुकर,
ले जाते मधु, रुककर पल-भर,
दशो दिशाएँ शतदल-सी खिल
करने लगतीं दान,

खिलती है जब इन अधरों पर
ऊषा-सी मुसकान।

सकल कामना जय होती है,
चतुर चेतना भी सोती है,
इन नयनों में भर ढलकाती
हो जब मद की धार।

अँगड़ाई लेता है यौवन,
मुँद जाते सुख-दुख के लोचन,
आह, झूम उठता है प्रतिक्षण
पागल-सा संसार।

इन नयनों में भर ढलकाती
हो जब मद की धार।

सर के लहराते जीवन-सा,
जब स्वर - लहरी के कंपन - सा,
लहराता है मलयानिल में
इस अंचल का छोर।

पाते ही असीम आह्वान,
लहरा देता है अनजान
प्राची और प्रतीची के
प्राणों में एक हिलोर,

लहराता जब मलयानिल में
इस अंचल का छोर।

खग करते कल-रव अंबर में,
लहरें उठती है सागर में,
भर देती हो अखिल शून्य को
जब गाकर यह गान,

वेदना बनती विकल बिहाग,
मौन संध्या का धीमा राग,
जड़ जग के होते हैं चेतन
तान-तान पर प्राण।

भर देती हो अखिल शून्य को
जब गाकर यह गान।

पुलकित होता है नंदन-वन,
थिरक-थिरक उठते हैं उडुगण,
अपनी ही तानों की गति पर
जब तुम करने लगतीं नर्तन,

सुनकर नूपुर की झनकार
खुलते हैं रवि-शशि के द्वार,
इन चरणों के ताल-ताल पर
त्रिभुवन में होता है कंपन,

अपनी ही तानों की गति पर
जब तुम करने लगतीं नर्तन।

विश्वरूप !

मत मर्म-व्यथा छूने, विद्युत् बन, आओ;
बन निविड़ श्याम घन प्राणों में छा जाओ!
किरणों की झलमल क्षणिक न बनो सवेरा;
बन निशा डुबा दो छवि में जीवन मेरा।
अस्थिर जीवन-कण बन न नयन ललचाओ;
बन शांत मरण-सागर असीम लहराओ!
जो टूट पड़े क्षण में विनाश-इंगित पर,
वह तारक बन मत ध्यान भंग कर जाओ;

जिसकी अंचल-छाया में सोवे त्रिभुवन,
वह अंत-हीन आकाश नील बन आओ।
फिर उसी रूप से नयनों को न भुलाओ;
अभिनव अपूर्व छवि जीवन को दिखलाओ!
दर्शन-सुख की परिभाषा नई बनाओ;
लघु दृग-तारों में नहीं, हृदय में आओ।
वह विश्व रूप बन आओ, मेरे सुंदर!
जो रेखाओं का बंदी बने न पट पर;
जिसको भर रखने को तपकर जीवन-भर
उर बने एक दिन अंत-हीन नीलांबर!
अनुभव को दृग तक ही सीमित न बनाओ;
छवि से जीवन के अणु-अणु को भर जाओ!
हर झाँकी में विस्तृततर बनकर आओ;
जग के प्राणों को प्रतिक्षण परिधि बढ़ाओ।

मोहावृता

मिलन-मोह का मंदिर आवरण बन जिसने था इसे छिपाया,
विरह-वह्नि बन प्रेम-हेम को यदि अब वह चमकाने आया,
क्यों न 'साधना' के मंदिर में सखि, तूने त्यौहार मनाया?
सुख का अस्थिर कोलाहल बन जिसने अब तक तुझे जगाया,
दुख की करुणांचल-छाया बन यदि अब वही सुलाने आया,
क्यों न गाढ़ निद्रा ली तूने, क्यों न सजनि, श्रम-क्लेश मिटाया?
वैभव बनकर जिसने तेरे दोषों को सखि, स्वैर बनाया,
निर्धनता बन वही गुणों की अगर परीक्षा लेने आया,
क्यों तूने संकोच लाज के अवगुंठन में उन्हें छिपाया?
क्षुद्र स्नेह बन अब तक जिसने तेरा 'जीवन'-दीप जलाया,

वही असीम 'मरण'-तम बन यदि निविड़ालिंगन देने आया,
क्यों, सखि, सिहर उठी तू भय से, क्यों न मिलन-शृंगार सजाया ?

जीवन-दीप

जिसकी एक झलक पातीं, तो रवि-शशि की पलकें झुक जातीं,
पूर्ण पयोनिधि की मादकता मधु की दो लघु बूँदें पातीं,
बिखरी वीणाएँ अंबर में महामिलन का स्वर भर आतीं,
एक-एक शतदल के उर में लाख-लाख आँखें खुल जातीं,
वही प्रकाश, इसी में छिपकर, चुपके से तब देते हो भर,
मेरा लघुतम जीवन-दीपक कह उठता है विस्मित होकर—
क्या इसलिये कि फैला दूँ मैं कण-कण में प्रकाश की प्यास,
लघुतम स्नेह-पात्र में प्रियतम, भर देते हो परम प्रकाश।

द्वितीय खंड

(कल्पना-प्रधान कवि)

नवयुग-काव्य-विमर्श

स्व० बाबू जयशंकर 'प्रसाद'

१—जयशंकर 'प्रसाद'

[बाबू जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म संवत् १९४६ विक्रमीय में, काशी में, हुआ। इनके पिता, बाबू देवीप्रसाद सुँघनी साहु, काशी के प्रतिष्ठित दानवीर रईस तथा संस्कृत-शिक्षा के बड़े प्रेमी थे। इनकी सहायता से कितने ही विद्यार्थियों को संस्कृत-शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर मिला। श्रीजयशंकर 'प्रसाद' की शिक्षा का प्रारंभ घर पर ही हुआ। संस्कृत और हिंदी की शिक्षा प्राप्त करके क्वीस कालेजिएट स्कूल, काशी में अँगरेज़ी पढ़ने के लिये भर्ती किए गए। बारह वर्ष की अवस्था में इन्होंने मिडिल पास किया, किंतु पिता के एकाएक स्वर्गवास हो जाने से इन्हें पढ़ना छोड़ देना पड़ा, और इनके बड़े भाई श्रीशंभुरत्नजी ने घर पर ही पंडित और मौलवी रखकर संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू और अँगरेज़ी पढ़ने की व्यवस्था कर दी। थोड़े ही दिनों में इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। सत्रह वर्ष की आयु में इनके बड़े भाई का स्वर्गवास हो गया, और इनके ऊपर गृहस्थी का भार आया। इनका कारबार इनके पिता के ही समय से बहुत बढ़ा-चढ़ा था। श्रीजयशंकर 'प्रसाद' ने उसे ख़ूब सँभाला, और बड़ी योग्यता-पूर्वक दूकान तथा ज़मींदारी की देख-भाल की। जैसा इनके पिता के समय से लोकोपकार और सहायता का कार्य होता आया था, वैसा ही इन्होंने भी क़ायम रक्खा।

'प्रसाद'जी की रुचि साहित्य की ओर बाल्यकाल से ही थी। यह बाल्यकाल से ही कविताएँ लिखने लगे। यद्यपि पिता और बड़े भाई के स्वर्गवास से गृहस्थी का भार इनके ऊपर आ गया था, किंतु साहित्य-सेवा की रुचि में कमी नहीं हुई, और दिन-प्रति-दिन इनका झुकाव इस ओर अधिक होता गया। इनकी रुचि आरंभ ही

से भावना-प्रधान रही। छायावादी रचनाएँ इन्होंने ऐसे समय में हिंदी में लिखनी प्रारंभ कीं, जिस समय इस ओर हिंदी-प्रेमियों का ध्यान भी नहीं था। काशी से प्रकाशित होनेवाले 'इंदु' मासिक पत्र में इनकी इस प्रकार की रचनाएँ छपती थी। भिन्न-तुकांत रचनाएँ भी इन्होने उसी समय से लिखनी प्रारंभ कर दी थीं। यद्यपि, समय के फेर से, इनकी रचनाओं का उस समय स्वागत नहीं हुआ, किंतु 'प्रसाद'जी अपने सिद्धांत पर दृढ़ रहे, और समय पाकर इस प्रकार की रचनाओं का विशेष आदर हुआ, तथा हिंदी में छायावादी रचनाओं के श्रीगणेश करनेवाले माने गए। कविताओं के सिवा आप ऊँचे दर्जे के कलाकार, कहानी-लेखक और नाटककार भी थे। गृहस्थी में फँसे रहने पर भी इन्होंने हिंदी में कविता तथा गद्य की अनेकों उच्च कोटि की पुस्तकों की रचना की। इनके लिखे हुए दर्जनों ग्रंथ आज हिंदी-साहित्य की कीर्ति-रक्षा कर रहे हैं। इनकी लिखी हुई पुस्तकों में कानन-कुसुम, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य, छाया, उर्वशी, राज्यश्री, करुणालय, प्रायश्चित्त, कल्याणी-परिणय, विशाख, झरना, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, आँसू, प्रतिध्वनि, कंकाल, नवपल्लव, कामना, स्कंदगुप्त, तितली, एक घूँट, इंद्रजाल, आकाश दीप और लहर प्रसिद्ध हैं। 'कामायिनी'-नामक महाकाव्य महत्त्व-पूर्ण है।

'प्रसाद'जी वर्तमान काव्य-जगत् के प्रसिद्ध छायावादी कवि थे, भाषा, भाव, कल्पना और मौलिकता की दृष्टि से इनकी रचनाओं का बड़ा महत्त्व है। सन् १९३७ ई० में, चालीस वर्ष की अवस्था में, इनका स्वर्गवास हुआ !]

बाबू जयशंकर'प्रसाद' प्रथम श्रेणी के छायावादी कवि थे। इन्होंने छायावाद की मधुर रागिनी उस समय छेड़ी थी, जिस समय हिंदी-साहित्य में सामयिकता की लहर बह रही थी। किंतु इनके हृदय

में भावना की ही प्रधान धारा कल-कल ध्वनि से प्रवाहित हो रही थी। 'प्रसाद'जी भारतीय संस्कृति के पुजारी थे, उनका ऐसा विचार था कि बुद्ध भगवान् भारतीय संस्कृति के महान् गौरव थे। बुद्धकालीन संस्कृति ही वास्तविक संस्कृति थी, उसी के पुनरुद्धार की कल्पना यह करते थे, और इनकी रचनाओं का सृजन भी इसी आधार पर हुआ है। रचनाओं में प्राचीन संस्कृति की रूप रेखा का पूर्ण रूप से विकसित रूप पाया जाता है। कल्पना और भाव इनकी कविता का प्रधान गुण है। प्रतिभा चतुर्मुखी है। कहीं कल्पना की अनुपम उड़ान है, तो कहीं अनुभूतियों का घनीभूत एकीकरण, कहीं पीड़ा और वेदना का करुण क्रंदन है, तो कहीं आशा और उल्लास की मार्मिक झलक; कहीं प्रकृति की मनोहर झाँकी है, तो कहीं प्रणय और प्रेम का स्वाभाविक चित्रण, कहीं उपास्य देव के प्रति कमनीय, कामना-भरी वाणी है, तो कहीं वीरों की कीर्ति-गाथा के उद्गार; कहीं ऐतिहासिक भावना का चमत्कार है, तो कहीं संसार की भावनाओं का स्पष्टीकरण और कहीं विश्व-प्रेम का करुण गान है, तो कहीं भारत की सांस्कृतिक गौरव की प्रतिध्वनि। इस प्रकार इनकी रचनाओं में हमें विस्तृत प्रतिभा और अलौकिक चमत्कार का दर्शन होता है। 'प्रसाद'जी की समता का लिखनेवाला शायद ही हिंदी का कोई छायावादी लेखक हो, इसी से इनकी प्रतिभा की क़ीमत आँकी जा सकती है। बाबू जयशंकर-'प्रसाद' ने प्रारंभ में कुछ व्रजभाषा की भी रचनाएँ की हैं, किंतु उनमें भावना है, जिसका विकास आगे चलकर विशेष रूप से हुआ—

पुलक उठे हैं रोम-रोम खड़े स्वागत को,
जागत हैं नैन बरुनी पै छबि छाओ तो;
मूरति तिहारी उर-अंतर खड़ी है, तुम्हें
देखिबे के हेतु, ताहि मुख दरसाओ तो।

भरिकै उछाह सो उठे हैं भुज भेंटिबे को,
भेंटिबे को ताप क्यों 'प्रसाद' तरसाओ तो;
हिय हरखाओ, प्रेम रस बरसाओ, आओ
बेगि प्रानप्यारे! नेक कंठ सो लगाओ तो।

यद्यपि इस रचना का शब्द-विन्यास व्रजभाषा का सा है, किंतु भावना में नवीनता की झलक है। इसी नवीनता के अनुसार 'प्रसाद'जी का काव्य-जीवन प्रारंभ होता है, और तदनंतर इन्होंने नवीन भावनाओं के साथ-साथ नवीन छंदों का भी निर्माण किया। कवि का संकेत उपास्य देव की ओर है। वह उसके स्वागत की कामना करता है, किंतु नवीनता, मधुरता और नई कल्पनाओं के साथ। इस प्रकार की भावना आपके भावुक हृदय में संचित रही। चूँकि उस समय नवीन छंदों की कोई पूछ नहीं थी, इसलिये कवि ने नवीन भावना के प्रसार और प्रचार के लिये प्राचीन छंद का आश्रय लिया है। 'प्रसाद'जी की ऐसी प्रवृत्ति उस समय उचित ही थी। 'आँसू' नाम का काव्य अनुभूति और कल्पना की प्रधानता के कारण काव्य-जगत् की एक अपूर्व वस्तु है, किंतु इस प्रकार की मौलिकता और भावना को समझनेवाले उस समय नहीं थे। इसीलिये 'प्रसाद'जी ने उस समय 'आँसू' की कल्पना नई भावना से युक्त पुराने छंद में इस प्रकार अंकित की थी—

आवे इठलात जलजात-पात के-से बिंदु,
कैधो खुली सीपी माहिं मुकता दरस है;
कढ़ी कंज-कोष तें कलोलिनि के सीकर ते,
प्रात हिम-कन से न सीतल परस है।
देखे दुख दूनों उमगत अति आनँद सों,
जान्यों नहीं जाय याहि कौन सो हरस है;

तातो तातो कढ़ि रूखे मन को हरित करै,
एरे मेरे आँसू, ये पियूष ते सरस हैं।

कल्पना की उड़ान कविता का चमत्कार है। 'मेरे आँसू पीयूष से भी सरस हैं' की भावना बड़ी कोमल और मार्मिक है। यह छंद कवित्त है, और कहीं-कहीं व्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, किंतु जिस समय नवीन काव्य का आदर होने लगा, और 'प्रसाद'जी ने देखा कि अब छायावादी रचनाओं का युग आ गया, तब उन्होंने उसी भावना को मौलिक स्वरूप दिया, और—

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।

लिखकर अपनी वास्तविक प्रतिभा का परिचय दिया। 'प्रसाद'जी के काव्य के विकास का यही रहस्य है। पहले इनकी प्रारंभिक रचनाओं का बाह्य रूप प्राचीनतावादी था, किंतु आंतरिक नवीनता-मय। धीरे-धीरे क्रमशः उन्होंने रचनाओं का बाह्य रूप भी परिवर्तित कर दिया, और नवीनता के साँचे में वे पूर्ण रूप से ढल गईं। इस प्रकार की रचनाएँ बहुत थोड़ी हैं, अधिकांश नवीन छंदों से युक्त भाव-कल्पना की विभूति हैं। 'प्रसाद'जी का काव्य प्रायः अस्पष्ट है। वह समझ में जल्दी नहीं आता। उसका कारण यही है कि भावना दुरूह है, और उनमें कुछ दर्शन और वेदांत की पुट है। साथ ही कुछ रचनाएँ स्पष्ट भी हैं, जो कोमल भावनाओं और मधुरता से ओत-प्रोत हैं। सांस्कृतिक प्रौढ़त्व तथा विवेक और अनुभूति की गहराई का रचनाओं से पूर्ण परिचय मिलता है।

'प्रसाद'जी की आरंभिक रचनाओं में 'प्रेम-पथिक' सबसे सुंदर

है। इसमें अतुकांत छंदों का प्रयोग किया गया है। इसकी रचना की भावना स्पष्ट है, और प्रेम की अलौकिक लहरें अपनी शीतलता से हृदय को ओत-प्रोत कर देती हैं। 'महाराणा का महत्त्व' भिन्न-तुकांत काव्य है। 'कानन-कुसुम' में एक सौ ग्यारह कविताएँ संगृहीत हैं। इसमें कुछ कविताएँ पुराने ढंग की हैं, और ज्यादातर नवीनता लिए हुए। 'झरना' काव्य का महत्त्व उक्त काव्यों से अधिक है। प्रकृति की अलौकिक छटा और कण-कण के निरीक्षण का अद्भुत चमत्कार इस ग्रंथ में पाया जाता है। कल्पना, भावना, मार्मिकता और प्रौढ़त्व की आभा इसमें स्थान स्थान पर चमत्कृत हुई है। इसके सिवा इन्होंने अपने नाटकों में यथास्थान जिन गीतों का सृजन किया है, उनकी महत्ता, मेरी समझ में, अन्य कविताओं से किसी प्रकार कम नहीं। 'प्रसाद'जी छोटे गीत लिखने में अत्यंत सफल हुए हैं। उन गीतों में उनकी प्रतिभा का विशेष चमत्कार दिखाई देता है। पीड़ा, उन्माद, आशा, निराशा और प्रेम का अद्भुत प्रदर्शन हुआ है। 'आँसू' काव्य कवि की मार्मिक अनुभूतियों का एकीकरण है। आँसू के प्रति की गई कल्पना की सुंदर व्यंजना बड़ी सफल हुई है।

जब हम श्रीजयशंकर'प्रसाद' की रचनाओं पर सूक्ष्म रूप से विचार करते हैं, तो उन्हें कई रूपों में पाते हैं—(१) अनुभूति और कल्पना-प्रधान कविताएँ, (२) प्रकृति-सौंदर्य से पूर्ण और गंभीर, (३) सांस्कृतिक भावना-पूर्ण रचनाएँ, (४) भिन्न-तुकांत रचनाएँ और (५) गीति-काव्य।

उनका अनुभूति-पूर्ण और कल्पना-प्रधान काव्य 'आँसू' है। 'आँसू' से बढ़कर सुंदर कल्पना और अनुभूति 'प्रसाद'जी के किसी अन्य काव्य में नहीं पाई जाती। वेदना, पीड़ा, मधुर भावना इस काव्य की प्रधान वस्तुएँ हैं। इसमें १२१ छंद हैं। केवल कल्पना-

हो-कल्पना है। 'आँसू' के संबंध में सुंदर कल्पना का इसमें सामूहिक एकीकरण है।

इस करुणा-कलित हृदय मे क्यो विकल रागिनी बजती;
क्यो हाहाकार स्वरो मे वेदना असीम गरजती।
क्यो छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलको में;
हॉ, उलझ रहा सुख मेरा सन्ध्या की घन अलको मे।
बस गई एक बसती है स्मृतियो की इसी हृदय मे;
नक्षत्र-लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।

कवि कल्पना करता है—इस करुणा से पूर्ण हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती है, क्यों हाहाकार के स्वरों में असीम वेदना उत्पन्न हो रही है। हृदय में स्मृतियों की एक बस्ती बस गई है, जैसे इस नील निलय में नक्षत्र-लोक फैला हुआ है। कितनी मार्मिक भावना है। हृदय को स्मृतियों की बस्ती कहना व्यंजना-पूर्ण है। अनुभूति की आभा अपनी उज्ज्वलता प्रकट करती है। पीड़ा और वेदना की यहाँ कल्पना बड़ी सुंदर है। कवि आँसुओं के संबंध में कहता है—

चातक की करुण पुकारें श्यामा-ध्वनि सरल-रसीली;
मेरी करुणार्द्र कथा की टुकड़ी आँसू से गीली।
वाडव-ज्वाला सोती थी इस प्रेम-सिंधु के तल मे;
प्यासी मछली-सी आँखें थी विकल रूप के जल में।
नीरव मुरली, कलरव चुप, अलि-कुल थे बंद नलिन में;
कालिंदी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन मे।
छिल-छिलकर छाले फोड़े मलमलकर मृदुल चरण से;
धुल-धुलकर बह रह जाते आँसू करुणा के कण-से।
बुलबुले सिंधु से फूटे, नक्षत्र-मालिका टूटी;

❀ ❀ ❀

चेतना बही जाती थी हो मंत्र-मुग्ध माया में ;

❀ ❀ ❀

काली आँखों मे कैसी यौवन के मद की लाली ;
मानिक-मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।

('आँसू' से)

'प्यासी मछली-सी आँखें', 'कालिंदी बही प्रणय की इस तम-मय हृदय-पुलिन में', 'घुल-घुलकर बह रह जाते आँसू करुणा के कण-से', 'बुलबुले सिंधु से फूटे', 'नक्षत्र-मालिका टूटी', 'माया में चेतना बही जाती थी', 'नीलम की प्याली मानिक-मदिरा से भर दी', आदि पंक्तियों में कितनी मधुर और कोमल भावना है। इसमें छायावाद ही नहीं, हृदयवाद का सुंदर चित्रण है। कहना तो यह चाहिए कि 'प्रसाद'जी का 'आँसू' हृदयवाद की धरोहर है। इसी प्रकार की अन्य अनेक सुंदर कल्पनाएँ और भावनाएँ हैं, जो 'आँसू' में अपनी उज्ज्वलता प्रदर्शित कर रही हैं। यों तो आपकी कविताओं के कुछ संग्रह और प्रकाशित हो चुके हैं, उनमें भी आपकी प्रतिभा का चमत्कार पाया जाता है, किंतु 'लहर'-नामक पुस्तक में जो रचनाएँ संगृहीत हैं, वे छायावादी रचनाओं की सुंदर, नवीन वस्तु हैं। छायावादी प्रतिभा का इन रचनाओं से विशेष परिचय मिलता है।

कवि अपने नाविक से कहता है कि मुझे भुलावा देकर वहाँ ले चल, जिस निर्जन में सागर की लहरें, अंबर के कानों में, निश्छल प्रेम की कथा कहती हैं। वहाँ संसार का कोलाहल नहीं है। जहाँ अमर जागरण अपनी घनी ज्योति बिखराता है—

ले चल वहाँ भुलावा देकर
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।

जिस निर्जन में सागर-लहरी
अंबर के कानों में गहरी,

निश्छल प्रेम कथा कहती हो
तज कोलाहल की अवनी रे।
उस—विश्राम क्षितिज—बेलासे
जहाँ सृजन करते मेला से
अमर जागरण उषा नयन से
बिखराती हो ज्योति घनी रे।

कवि की आकांक्षा भावुकता-पूर्ण है। 'नाविक' कौन है? यही रहस्य है। कवि संसार से परे उस लोक की कल्पना करता है, जो हृदय की अनुभूति से संबंधित है। एक स्थान पर कवि की वेदना उस असीम को अपनी आँखों की पुतली में बिठालना चाहती है, और वह एकाएक अभिव्यक्ति के रूप में उत्पन्न होती है—

मेरी आँखों की पुतली में तू बनकर प्राण समा जा रे।
जिससे कण-कण में स्पंदन हो,
मन में मलयानिल चदन हो,
करुणा का नव अभिनदन हो।
वह जीवन-गीत सुना जा रे।
खिंच जाय अधर पर वह रेखा,
जिसमें अंकित हो मधु-लेखा,
जिसको वह विश्व करे देखा,
वह स्मित का चित्र बना जा रे!

मनोवेदना का यह मनोवैज्ञानिक चित्रण सुंदर है। कवि अपने जीवन को करुण और स्पदन-युक्त रखना चाहता है, और उसका मधुर संगीत सुनना चाहता है। वह उसके प्राण बनकर समा जाने की कामना करता है।

स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो;
जीवन-धन! इस जले जगत को वृंदावन बन जाने दो।

कवि सरसता की ओर आकर्षित है। वह अपने जगत् को वृंदावन बन जाने का इच्छुक है। 'प्रसाद'जी की रचनाओं में सरसता-पूर्ण विकास है। वह दुख के वशीभूत भी हैं। क्योंकि उनका जीवन दुःखमय नहीं है, इसीलिये उनकी कविताओं में सुंदर जीवन और मधुर सुख का ही संदेश व्याप्त है। सरस, सरल, सुंदर और मधुर जीवन की करुण चेतना उनकी रचनाओं में विशेषतया अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए है। कविताओं में कसक है, पीड़ा है, आत्मानंद है, उन्माद है, किंतु सुख की अनुभूति का, दुख की अनुभूति का नहीं। इसी कारण 'प्रसाद'जी की रचनाओं में, महादेवीजी की-सी कविताओं की तरह मधुर वेदना, पीड़ा और 'दुख' पूर्ण जीवनानंद के अभाव का कभी-कभी भान होने लगता है, जो छायावादी काव्य का प्राण है, और जिसके कारण काव्य की अंतरात्मा व्याकुल होकर रो उठती है। तो भी 'प्रसाद'जी की रचनाओं में, 'सुख' की पैत्रिक धरोहर का प्रसाद बड़ा आकर्षक और मधुर है, जो छायावादी कवियों की कविताओं में कम पाया जाता है।

प्राकृतिक दृश्यों का स्वाभाविक और सूक्ष्म चित्रण करने में 'प्रसाद'जी की लेखनी बड़ी प्रतिभाशालिनी है। रूपक, उपमा का साक्षात्कार इतनी सुंदरता से हुआ है कि काव्य का सौंदर्य और भी प्रखर हो गया है। किंतु चित्रण में भावों की प्रधानता वैसी ही है, जैसी छायावादी रचनाओं में पाई जानी चाहिए—

हे सागर-संगम अरुण-नील!
अतलांत महा गंभीर जलधि,
तजकर अपनी यह नियति अवधि,
लहरों के भीषण हासों में,
आकर खारे उच्छ्वासों से,

युग-युग की मधुर कामना के
बंधन को देता जहाँ ढील,
हे सागर-सगम अरुण-नील!

पिंगल किरणों-सी मधु-लेखा
हिम-शैल-बालिका कब देखा
कलरव संगीत सुनाती
किस अतीत युग की गाथा गाती आती।

आगमन अनंत मिलन बनकर
बिखराता फेनिल तरल खील
हे सागर-सगम अरुण-नील!

इस रचना में कवि की प्रतिभा प्रखरता को पहुँच गई है। लहरों का हास, खारे उच्छ्वास, पिंगल किरणों, फेनिल तरल खील प्रकृति की मधुर कल्पना का द्योतक है। प्रकृति के कण-कण में कवि अपनी मनोवेदना मधुरता के साथ अंकित करता है। प्रकृति-सौंदर्य का वर्णन करने में भी कवि की मौलिक प्रतिभा और भावोन्मेष का उज्ज्वल रूप दृष्टिगोचर हुआ है। उन्माद और मधुर सुख की भावना का यहाँ सुंदर स्वरूप दिखाई देता है।

बीती विभावरी, जाग री!
अंबर-पनघट में डुबो रही
तारा-घट ऊषा नागरी।

खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लाई
मधु-मुकुल-नवल-रस-गागरी।

अधरों मे राग मरद प्रिये!
अलकों में मलयज बद किए

तू अब तक सोई है आली,
आँखो मे भरे विहाग री।

'ऊषा नागरी तारा-घट को अंबर-पनघट में डुबा रही है' में रूपक की एकरूपता का सौंदर्य प्रतिबिंबित है। खग-कुल का कुल-कुल-सा बोलना, किसलय का अंचल डोलना, लतिका का मधु-मुकुल के रस की गागर भर लाना, अलकों में मलयज बंद करना, प्रकृति-सौंदर्य की प्रतिभा की झलक है। स्वाभाविक चित्रण का इतना सुंदर और भाव-पूर्ण ढंग 'प्रसाद'जी की कला की विशेषता है। सौंदर्य का इतना सत्यं सुंदरम् चित्र अंकित करना, और थोड़ी भावना के अंतर्गत, जो मधुरता और मोहकता से पूर्ण है, प्रखर प्रतिभा का सुंदर चमत्कार है। संगीत की मधुरता से यह गीत और भी प्रभावशाली हो गया है। 'अधीर यौवन', 'तुम्हारी आँखों का बचपन' कविता में भी कवि की प्रतिभा का वास्तविक दर्शन होता है। 'जीवन के प्रभात' में सूक्ष्म चित्रण और 'कोमल कुसुमों की मधुर रात' में वेदना-पूर्ण उन्मन भावना व्याप्त है। 'ओ री मानस की गहराई' में मार्मिकता का दिग्दर्शन है—

ओ री मानस की गहराई !
हँस, झिलमिल हो लें तारागन,
हँस, खिलें कुंज मे सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु मरंद के कन
बनकर संसृति के नव श्रम-कन।
सब कह दे 'वह राका आई।'

प्रकृति-निरीक्षण के तत्त्व के अनुरूप ही जागरण-गान का भी इस कविता में समावेश है। जागरण-गान 'प्रसाद'जी की कविता की विशेषता है। प्रकृति-चित्रण के साथ-साथ जागृति का संदेश मिश्रित

रहता है। वह कण-कण की जागृति के इच्छुक हैं, अतीत काल की जागृति की प्रतिभा का चमत्कार उनकी प्रकृति-रचना में मिश्रित है। यह संदेश उनकी वाणी के साथ मिला हुआ है और यही उनकी कला की विशेषता है।

सांस्कृतिक भावना 'प्रसाद'जी की रचना की मौलिकता है। बौद्ध-कालीन संस्कृति के पुजारी हैं, और काव्य के अंतर्गत भी उन्होंने इस संस्कृति का संदेश दिया है। 'मूलगंध-कुटी-विहार' के उपलक्ष में लिखी गई उनकी रचना 'अरी वरुणा की शांत कछार' अत्यंत लोक-प्रिय और प्रसिद्ध है—

मुक्ति-जल की वह शीतल बाढ जगत की ज्वाला करती शांत;
तिमिर का हरने को दुख-भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत।
देव कर से पीड़ित विक्षुब्ध, प्राणियों से कह उठा पुकार;
तोड़ सकते हो तुम भवबंध, तुम्हे है यह पूरा अधिकार।
अरी वरुणा की शांत कछार,
तपस्वी के विराग का प्यार।

'तपस्वी के विराग का प्यार' की स्वाभाविक मौलिकता चिरंतन है। 'मूलगंध-कुटी-विहार' के समारोहोत्सव में, मंगलाचरण के रूप में, गाई हुई कविता—

जगती की मंगलमयी उषा बन
करुणा उस दिन आई थी,
जिसके नव गैरिक अंचल को प्राची मे भरी ललाई थी।
भय - संकुल रजनी बीत गई,
भव की व्याकुलता दूर गई,
घन तिमिर भार के लिये तड़ित स्वर्गीय किरण बन आई थी।

में बौद्धकालीन प्राचीन संस्कृति की वास्तविक झलक है। 'अशोक की चिंता'-नामक कविता में 'प्रसाद'जी ने अशोक की विरक्ति का

सुंदर चित्रण किया है। चिंता की करुणा का दिग्दर्शन अपनी कल्पना-प्रधान भाषा में इतनी सुंदरता से किया है कि किसी चिंताग्रस्त व्यक्ति का स्वाभाविक चित्र सम्मुख उपस्थित हो जाता है। इसी प्रकार की भावना 'प्रसाद'जी की अन्य रचनाओं में भी है।

'प्रसाद'जी ने भिन्न-तुकांत रचनाएँ—चंपू, रूपक आदि—लिखकर अपनी विशेष प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। 'प्रेमाथिक' और 'महाराणा का महत्त्व' भिन्न-तुकांत काव्य है, और 'उर्वशी' चंपू है। इनमें कवि मुक्त रूप से एक नई प्रणाली का प्रारंभ करता है। 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'प्रलय की छाया' इनके भिन्न-तुकांत काव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। 'प्रलय की छाया' की समता को भिन्न-तुकांत रचना हिंदी में नहीं के बराबर है। भाव, भाषा और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इसमें अपूर्व आभा चमत्कृत हुई है। इसमें हिंदू-संस्कृति की मिठास का स्वाद मिलता है। भिन्न-तुकांत रचनाओं के अतिरिक्त हमें सबसे अधिक प्रिय 'प्रसाद'जी के गीत हैं। वे उनके नाटकों में स्थान-स्थान पर पाए जाते हैं। उन गीतों में मानव-जगत् की अनुभूतियों का अभिनव चित्रण और संगीत है। हिंदी-साहित्य में यदि उन गीतों का एक अलग संग्रह उपस्थित हो जाय, तो उसकी एक विशेषता रहेगी। हिंदी में गेय गीतों की बड़ी कमी है। गीत ऐसे हैं, जो अल्प काल में समाप्त किए जा सकें, और उनका मानव-हृदय पर कुछ प्रभाव पड़े। 'प्रसाद'जी के गीतों में जो उन्माद और वेदना है, वह अन्य के गीतों में कम मिलती है। उन गीतों में समयानुसार सभी भाव-अनुभाव का चित्रण है। 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु' और 'राज्य-श्री' के गीतों में जो मार्मिकता दृष्टिगोचर होती है, कला का जो सौंदर्य उनमें निखर पड़ा है, मानव-जीवन की सामयिक मधुर तरंगों से जो

भावना तरंगित होती है, वही उन गीतों में अपनी विशेषता रखती है।

'प्रसाद'जी महाकवि थे। उनका ध्यान महाकाव्य और खंड-काव्य लिखने की ओर भी रहा। उन्होंने एक महाकाव्य लिखा है, जिसका नाम 'कामायनी' है। यह हिंदी-साहित्य में अभूतपूर्व महाकाव्य है। इस काव्य में कल्पना, भावना और चरित्र-चित्रण की विशेषता है। प्राचीन संस्कृति की उपासना का प्रतिफल इस काव्य की मौलिकता कवि ने इसमें है। वैदिक कालीन कथानक को चित्रित करने में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित की है। इसमें कई सर्ग हैं। इसके दसवें सर्ग में कवि ने 'कामायनी' का विरह वर्णन किया है, जिसमें बड़ी मार्मिक कल्पना की व्यंजना हुई है—

एक मौन वेदना विजन की झिल्ली की झनकार नहीं;
जगती की अस्पष्ट उपेक्षा, एक कसक, साकार नहीं।
हरित कुंज की छाया-भर थी वसुधा आलिंगन करती;
वह छोटी-सी विरह-नदी थी, जिसका है अब पार नहीं।

इस प्रकार 'प्रसाद'जी को काव्य-प्रतिभा चतुर्मुखी है। उन्होंने प्रत्येक दिशा में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। वह शांत और एकांत-सेवी व्यक्ति थे। सुख का उन्हें अनुभव था। यही कारण है कि उनकी रचना शांत, स्निग्ध, सुख और शीतलता की भावना से पूर्ण है। उनकी अनुभूति में सुख-शीतल किरणें बिखरी हुई दिखाई देती है। वह प्रकृति में, संसार में सुख की ही कल्पना करते हैं। प्रेम के अस्तित्व की वह कण-कण में व्याप्ति के इच्छुक है। यही कारण थे कि काव्य में भावावेश और अनुभूति है। हिंदी-साहित्य मे, विशेषकर नवीन काव्यकारों में, इतनी प्रतिभा-वाले कलाकार, जिसने अपने जीवन में दर्जनों उत्कृष्ट रचनाएँ लिखी हों, इने-ही-गिने है।

'प्रसाद'जी काव्य-रचना में जितने प्रखर प्रतिभावान् थे, उतने ही गद्य-रचना में भी। हिंदी में साहित्यिक दृष्टिकोण से नाटक लिखनेवाले उँगलियों पर गिने जाते हैं। 'प्रसाद'जी वर्तमान गद्य-शैली के सांस्कृतिक निर्माता थे। उनकी शैली में संस्कृत और शुद्ध भाषा—विशेषकर भावुकता—की एक अमिट छाप है। उनके कवि-जीवन का प्रभाव उनके नाटकों में पूर्ण रूप से आभासित हुआ है। 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'जनमेजय का नाग-यज्ञ' नाटक उच्च कोटि के हैं। प्राचीन संस्कृति के प्रसार और प्रचार की भावना से ही इन नाटकों का सृजन हुआ है। ये नाटक मर्मज्ञता की दृष्टि से अधिक महत्त्व रखते हैं, अभिनय की दृष्टि से कम। भावना जैसी सांस्कृतिक है, उसी के अनुरूप भाषा-शैली भी संस्कृत-गर्भित है। चरित्र-चित्रण और मनोभावों का अंकन इन नाटकों की विशेषता है।

'कामना' दार्शनिक तत्त्वों से पूर्ण नाटक है। इसके सिवा 'राज्यश्री' में बौद्धकालीन कथानक का चित्रण है। 'विशाख' भी प्राचीन दृष्टिकोण से लिखा गया है। ये नाटक आदर्शवादी सिद्धांत पर रचे गए है। इनका उद्देश्य हिंदी-साहित्य में प्राचीन संस्कृति की पुनर्जागृति उत्पन्न करना है। इन्होंने काव्य में जिस सिद्धांत को स्थिर किया, वही सिद्धांत अपने नाटकों में भी रक्खा है। यहाँ हम कवि की चुनी हुई पाँच सुंदर और श्रेष्ठ कविताएँ देते हैं—

आँसू

इस करुणा-कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती ?
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती ?
मानस-सागर के तट पर क्यों लोल लहर की घातें,
कल-कल ध्वनि से हैं कहती कुछ विस्मृत बीती बातें ?

प्रतिफल खड़ी बोली के तत्कालीन काव्य-साहित्य के लिये उपयोगी सिद्ध हुआ।

खड़ी बोली के कवि

इन कवियों के खड़ी बोली के काव्य-क्षेत्र में आ जाने से उस समय के नवीन कवियों का विकास बड़ी तेजी से प्रारंभ हुआ। इस दल का संचालन आचार्य द्विवेदीजी ने किया। बाबू मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'रंग में भंग', 'वैतालिक', 'शकुंतला' आदि काव्यों के प्रकाशन से खड़ी बोली की नींव अत्यधिक बलवती हो गई। पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के शुद्ध खड़ी बोली के आख्यान, कवित्त, सवैए और राष्ट्रीय रंग मे रँगे छंद नवीन काव्य-निर्माण में बड़े सहायक हुए। पं० रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित-चितामणि' महाकाव्य भी तत्कालीन काव्य-साहित्य के लिये मनोरंजक सिद्ध हुआ। पं० रूपनारायण पांडेय, पं० मन्नन द्विवेदी गजपुरी, पं० कामताप्रसाद गुरु और पं० लोचनप्रसाद पांडेय की स्फुट रचनाएँ भी खड़ी बोली के काव्य-प्रचार और प्रसार मे सहायक हुईं। ठाकुर गोपालशरणसिंह ने खड़ी बोली की रचना प्रारंभ की, जो भाषा की शुद्धता की दृष्टि से प्रभावशालिनी सिद्ध हुई। उर्दू - काव्य के समान माधुर्य भी इन कवियों की रचनाओं मे अधिक है। संस्कृत के तत्सम शब्दों की अपेक्षा बोल-चाल के शब्दों के प्रयोग की ओर इनका ध्यान अधिक रहा। इस प्रकार संस्कृत के स्थान पर बोल-चाल के उर्दू-शब्दों का प्रयोग अधिकता से किया गया। काव्य के इस रूप ने अधिक महत्त्व प्राप्त किया, और खड़ी बोली का यह जीता-

जागता तथा सजीव रूप हिंदी के काव्य-साहित्य मे प्रचलित होने लगा।

भारतेंदु हरिश्चंद्र के बाद जिस नए युग का संचालन आचार्य द्विवेदीजी ने किया, उसके काव्य-साहित्य को व्यापक बनाने मे इन कवियों का ही हाथ रहा। इस समय भाषा की शुद्धता की ओर अधिक ध्यान दिया गया। नए नए छंदों के प्रयोग भी हुए, और विचारों मे राष्ट्रीयता आई। विषयों के चुनाव मे भी सामयिकता का ध्यान अधिक रक्खा गया। व्रजभाषा - काव्य के नख-शिख, नायिका-भेद और शृंगारिक रचनाओं का दिवाला निकल गया। इन विषयों को खड़ी बोली के किसी कवि ने महत्त्व नहीं दिया। भाषा का सरल-शुद्ध व्यवहार, विचारों को स्पष्टता से प्रकट करना और आकर्षक ढंग से अपनी, देश की और समाज की दशा का वर्णन करना ही इस समय के कवियों का प्रधान उद्देश्य रहा, और वे अपने कार्य में पूर्णतया सफलीभूत हुए। यह समय शुद्ध भाषा और सुंदर विचारों का समय कहा जा सकता है।

इस समय के बाद ही हिंदी के काव्य-क्षेत्र में दूसरा समय आता है। इसे नवयुग के काव्य का समय कहना चाहिए। इसमें नवयवकों में शिक्षा का अधिकाधिक प्रचार होने लगा, और अन्य भाषाओं के कवियों के काव्यों का अध्ययन भी प्रारंभ हुआ। देशी भाषाओं मे बँगला और विदेशी भाषाओं मे अँगरेज़ी का अध्ययन हिंदी-भाषी युवकों को अधिक आकर्षक जान पड़ा। अँगरेज़ी के शेक्सपियर, वर्ड्सवर्थ, कीट्स, शेली, बायरन आदि कवियों के काव्यों के अध्ययन ने हिंदी के युवक साहित्यिकों की साहित्यिक प्रगति में अधिक रोचकता, आकर्षण और भावुकता उत्पन्न

कर दी, विशेषकर बँगला-भाषा के महाकवि श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर को जब उनकी 'गीतांजलि' पर 'नोबुल-पुरस्कार' मिला, तब इनके काव्यों की ओर भारत के अन्य भाषा-भाषियों का ध्यान आकर्षित हुआ। हिंदी के युवक साहित्यिकों मे भी इस नोबुल-पुरस्कार-प्राप्त कवि के काव्यों को पढ़ने और समझने की ओर रुचि उत्पन्न हुई। दूसरी बात यह कि खड़ी बोली का काव्य केवल भाषा और सुंदर विचारों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् भावुक युवकों को उससे कुछ परिणति की आवश्यकता प्रतीत हुई। तीसरी बात यह कि क्रांति और परिवर्तन देश, समाज और साहित्य में विचारों की पुष्टि के साथ साथ अवश्य होते हैं। इसलिये युवक साहित्यिकों ने खड़ी बोली की कविता मे भावना, अनुभूति और हृदयस्पर्शी कोमलता की पुट देना प्रारंभ किया, और इस कार्य में कवींद्र रवींद्र और अँगरेजी के काव्यों ने अधिक आकर्षण उत्पन्न किया। इस प्रकार नए ढंग की कविता का प्रारंभ हुआ। इसे कुछ सज्जनों ने 'छायावाद' का नाम दिया, और कुछ ने 'रहस्यवाद' का। खड़ी बोली के काव्य का यह दूसरा समय है।

छायावाद के दो स्कूल

'छायावाद' क्या है, यह स्पष्ट ही है; किंतु सच पूछा जाय, तो 'छायावाद' नामकरण व्यर्थ है। हिंदी के नवीन काव्य को 'छायावाद' नाम देना व्यापक नहीं। इस शब्द का प्रचलन प्रायः ऐसे लेखकों और कवियों द्वारा हुआ, जो नवीन कविता के या तो विरोधी हैं, या इस प्रकार की कविता को हास्यास्पद समझते है। उन लोगों की समझ मे नवीन कवियों

की कविता बँगला और अँगरेज़ी-कवियों की कविताओं की छाया पर आधारित है। आजकल यह शब्द व्यंग्यात्मक रूप मे भी प्रयुक्त किया जाता है। किंतु हमारी समझ मे 'छायावाद' या 'छायावादी' कहलाना हानिकारक नहीं, क्योंकि कम-से-कम यह शब्द इस बात का द्योतक तो अवश्य ही है कि जो काव्य या कवि इस नाम से पुकारे जाते है, वे नवीन पथ के पथिक हैं, और उनकी रचना खड़ी बोली के शब्द-जाल से छुटकारा पाकर भावना और अनुभूति-प्रधान विचारों की ओर अग्रसर हुई है। हाँ, 'रहस्यवाद'-शब्द का प्रयोग नवीन काव्य के लिये अधिक उपयक्त है। हिंदी के पुराने भक्तों—कबीर, रैदास आदि—ने ईश्वर ज्ञान-संबंधी ऐसी रचनाएँ की है, जो रहस्य-पूर्ण हैं। यह हिंदी-काव्य-साहित्य की पुरानी परिपाटी है। किंतु इनके लिखने और आंतरिक विचार प्रकट करने की एक भिन्न रीति है। कवींद्र रवींद्र की 'गीतांजलि' रहस्य-पूर्ण है। उस अदृश्य शक्ति के प्रति कवि ने निजी भावना को कोमल और अनुभूति-पूर्ण ढंग से व्यक्त किया है। उपनिषदों और दर्शन के दार्शनिक विचारों को बड़ी भावुकता के साथ प्रकट किया है। रवींद्रनाथ ने काव्य-साहित्य मे जो उलट-फेर किया, उसका भारतीय भाषाओं पर गहरा प्रभाव पड़ा, और हिंदी के भावुक कवियों को उनकी रचनाओं से प्रेरणा-शक्ति अधिक प्राप्त हुई, इसमे तनिक भी संदेह नहीं।

हिंदी मे नवयुग की इस काव्य-प्रगति का सूत्रपात बाबू जयशंकर'प्रसाद' ने किया। बाबू जयशंकर'प्रसाद' की खड़ी बोली के पुराने कवियों मे गणना होती है। वह उस समय से छायावादी कविताएँ लिखते है, जिस समय द्विवेदी-काल

के कवियों का प्रचुर प्रभाव था, और शुद्ध भाषा में विचार व्यक्त करने को अधिक महत्त्व दिया जाता था। ऐसे समय में बाबू जयशंकर'प्रसाद' ने नए ढंग की रचना प्रारंभ की। किंतु वह समय छायावाद-कविताओं के लिये उपयुक्त न था। राष्ट्रीयता की लहर ने देश में व्यापकता प्राप्त कर ली थी, और कवि लोग भारत को जाग्रत् करने की ओर अधिक झुके हुए थे। कुछ दिन बाद वह आँधी समाप्त हुई। 'प्रसाद'जी वेग से काव्य-क्षेत्र मे आए, और उनकी रचनाओं की लोकप्रियता बढ चली। श्रीयुत मुकुटधर पांडेय भी द्विवेदी-काल के ही कवियों मे हैं। उन्होंने भी नवीन काव्य के अनुकूल रचनाएँ लिखीं, किंतु कारण-वश वह आगे न बढ़ सके। खड़ी बोली के कवियों में भी कुछ ऐसे कवि उस समय दिखलाई पड़े, जो कविता में शब्द-सौंदर्य के साथ ही हृदय की अनुभूतियों को भी सुंदरता के साथ प्रकट करने लगे। ऐसे कवियों में श्रीमैथिलीशरण गुप्त का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। द्विवेदी-युग में जितने भी कवि खड़ी बोली के हुए, उनमे श्रीमैथिलीशरण गुप्त ही एक ऐसे कवि हैं, जो सदैव समय के साथ रहे, और जिनके काव्य की प्रगति बल-वती और नवीन वातावरण के अनुकूल रही। द्विवेदी-काल के कवियों मे गुप्तजी अग्रगण्य तो हैं ही, साथ ही इस नवीन काव्य के युग में भी—छायावादी न होते हुए भी—उनकी नवीन कवि-ताओं का महत्त्व-पूर्ण स्थान है। 'साकेत' के गीत और 'यशो-धरा' की अनेक करुण कविताएँ पूर्णतया अनुभूति और भावना-प्रधान हैं। गुप्तजी की स्फुट रचनाओं का संग्रह 'झंकार' इसी कोटि का काव्य-ग्रंथ है, जो नवीन काव्य की भाँति अनुभूति-रहस्य-पूर्ण और हृदयस्पर्शी उद्गारों से युक्त है। देखिए—

निकल रही है उर से आह,
ताक रहे सब तेरी राह।
चातक खड़ा चोंच खोले है, संपुट खोले सीप खड़ी;
मैं अपना घट लिए खड़ा हूँ, अपनी-अपनी हमें पड़ी।
सबको है जीवन की चाह,
ताक रहे सब तेरी राह।
मैं अपनी इच्छा कहता हूँ, पर वह तुझे बुलाता है;
तुझसे अधिक उदार वही है, पर भ्रम यहाँ भुलाता है।
किसको है किसकी परवाह,
ताक रहे सब तेरी राह।

* * *

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं?
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है, कैसे भीतर जाऊँ मैं?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं,
कुछ ही जन जाने पाते हैं।
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊँ मैं।
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं?

इस प्रकार गुप्तजी नवीन भावों के अनुरूप काव्य-रचना में भली भाँति सफल हुए हैं। वह स्वयं वैष्णव हैं, उनकी भावना भक्तों की-सी है, इसलिये शायद वह अपनी अंतर-प्रेरणा को रोक नहीं सके, और रहस्य-पूर्ण रचनाओं में उन्हें अच्छी सफलता प्राप्त हुई।

राष्ट्रीय जागरण का उत्थान प्रतिदिन होता गया, राष्ट्रीय रचनाओं की भी अधिकता होती गई, किंतु अनुभूति-पूर्ण

काव्यों के सृजन का कार्य कवियों ने बंद नहीं किया, और न यह बंद हो ही सकता था। भाव-विचारों में प्रौढ़ता के साथ छंद-रचना मे आमूल परिवर्तन प्रारंभ हुआ। नवीन हिंदी-कवियों के दो स्कूल निर्मित हुए। पहला स्कूल 'प्रताप-स्कूल' के नाम से पुकारा जा सकता है। कानपुर के राष्ट्रीय पत्र 'प्रताप' ने नवीन कवियों को विशेष प्रोत्साहित किया, और राष्ट्रीय रंग मे रँगी हुई अनुभूति और भाव-पूर्ण रचनाओं को उसने प्रकाशित किया। इसी स्कूल के अंतर्गत पं० बालकृष्ण शर्मा, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी, बाबू सियारामशरण गुप्त आदि कवि आते हैं। इन लोगों के काव्य की परिणति नवीन ढंग की हुई, किंतु उसमे राष्ट्रीय विचारों की प्रधानता अवश्य रही। इसी स्कूल में द्विवेदी-युग के महाकवि श्रीमैथिलीशरण गुप्त भी शामिल किए जा सकते हैं। दूसरा स्कूल शुद्ध छायावादी कवियों का है, जिसका केंद्र काशी हुआ। बाबू जयशंकर 'प्रसाद' इस स्कूल के अग्रवर्ता हुए। इस स्कूल मे पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं० सुमित्रानंदन पंत, श्रीरामकुमार वर्मा, श्रीमती महादेवी वर्मा आदि का नाम लिया जा सकता है। इन कवियों ने अपनी कविताओं में अधिकांश रूप से हृदय की अभिव्यक्ति को प्रधानता दी। नवीन छंदों और गीतों का प्रचलन इसी स्कूल द्वारा हुआ।

इन दोनो स्कूलों के कवियों ने अपने-अपने ढंग से कविताओं का सृजन किया। प्रताप-स्कूल के पंडित माखनलाल चतुर्वेदी ने अंत-अनुभूति से युक्त, राष्ट्रीयता-पूर्ण रचनाएँ लिखी। उन्होने भावों को प्रधानता दी। इस प्रकार के काव्य-सृजन में उनकी एक अलग ही शैली है—

सोने-चाँदी के टुकड़ों पर अंतस्तल का सौदा ;
हाथ-पाँव जकड़े जाने को आमिष-पूर्ण मसौदा ।
टुकड़ो पर जीवन की साँसे कितना सुंदर दर है ;
मैं उन्मत्त तलाश रहा हूँ, कहाँ बधिक का घर है ।

पं० बालकृष्ण शर्मा ने राष्ट्रीयता के साथ प्रेमानुभूति और हृदयस्पर्शी भावना को अपनी कविताओं में अंतर्हित किया। इनकी शैली भी अलग है। यह जो कुछ भी लिखते हैं, एक साँस में और झोंक में। भावों के प्रवाह में इन्होंने शब्द-चयन और छंदों तक की परवा नहीं की। राय कृष्णदास ने छोटे, सरस और कोमल भाव को स्वच्छता से व्यक्त किया। बाबू सियारामशरण गुप्त की कविताओं का महत्त्व नवयुग-काव्य में अधिक है। वह द्विवेदी-युग के कवि होते हुए भी नवीनता के पूर्ण पक्षपाती है। छंदों की दृष्टि से भी उनकी रचना निराली है। भाव और अनुभूति की अभिव्यक्ति सरस, मार्मिक और व्यंजना-पूर्ण है। श्रीभगवतीचरण वर्मा की भाषा में बड़ी स्पष्टता है। उन्होंने ओज को प्रधानता दी है। हृदय की बात या आंतरिक उद्गार को ओज-सहित व्यक्त करना इनके काव्य की विशेषता है। प्रेम की भाव-पूर्ण, मार्मिक व्यंजना इनके काव्य में प्राप्त होती है। श्रीजगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद' की प्रारंभिक रचना राष्ट्रीयता-पूर्ण है; किंतु क्रमशः उनका झुकाव अंतःअनुभूति-पूर्ण विचारों की ओर अधिक होता गया। इसी स्कूल में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का भी नाम लिया जा सकता है। उनके काव्य में भावना और सामयिकता का जो सम्मिलित रूप पाया जाता है, और वास्तविकता का जो निदर्शन होता है, उसका काव्य-साहित्य में

स्थान है। किंतु छायावाद-काव्य के अनुरूप उनकी कविता में हृदय की अनुभूति की अभिव्यक्ति कम है। श्रीमती सुभद्राजी के काव्य का दृष्टिकोण अपनी विशेषता रखता है।

काशी-स्कूल के कवियों में श्रीजयशंकर'प्रसाद' वर्तमान काव्य के प्रवर्तक ही थे। काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी-साहित्य का सृजन करके, अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय देकर अंत मे वह 'कामायनी'-नामक युग-प्रवर्तक महाकाव्य का सृजन कर गए। वह प्राचीन संस्कृति के पुजारी थे। वैदिक और बौद्धकालीन सांस्कृतिक विचार-धारा उनके साहित्य में पूर्ण रूप से व्याप्त है। पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' इस स्कूल के प्रधान कवि हैं। वह 'युग-प्रवर्तक' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मुक्तक छंदों के प्रचलन में इन्होंने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। 'जुही की कली' की समता की मुक्तक-रचनाएँ हिंदी क्या, अन्य भाषाओं में भी इनी-गिनी ही होंगी। 'निराला'जी वर्तमान काव्य के केशवदास हैं। वह संस्कृत और सांस्कृतिक पद्धति को विकृत नहीं होने देना चाहते। भाव, अनुभूति और कल्पना के साथ कविता मे वह भाषा का भी महत्त्व रखना चाहते हैं। 'तुलसीदास' 'निराला'जी का श्रेष्ठ काव्य है। हमारी समझ में अभी उनके काव्यों के समझने और मनन करने का युग नहीं आया। किंतु वह समय आवेगा, जब इनकी रचनाओं की वास्तविकता, मौलिकता की परख होगी। पंडित सुमित्रानंदन पंत काव्य-क्षेत्र मे बड़े वेग से आए। इनकी कविताओं में आकर्षण और कोमलता प्रारंभ ही से है। इस कल्पना-प्रधान कवि ने अपनी रचनाओं के द्वारा नए युग में अपनी एक अलग साख स्थापित कर ली। 'पल्लव' की कल्पना, 'गुंजन' की अनुभूति और 'युगांत' की

जाग्रत् भावना इनके काव्य की व्यापकता की परिचायक है। पंतजी के काव्यों की व्यापकता, कोमलता, माधुर्य और आकर्षण अपनी समता नहीं रखते*। श्रीमती महादेवी वर्मा ने तो अपनी रचनाओं से गीत-काव्य का नवीन युग प्रारंभ कर दिया। हृदय के उद्गार और अनुभूति की इतनी मार्मिक व्यंजना इनके गीतों में हुई है कि उसका एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है। 'सांध्य गीत' इनकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। श्रीरामकुमार वर्मा ने 'चंद्र-किरण' और 'चित्ररेखा' के द्वारा नवीन कवियों में एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। हृदय की अनुभूति की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में पूर्णतया है। श्रीमोहनलाल महतो भी इसी स्कूल के श्रेष्ठ कवि हैं।

आजकल के कवियों में श्रीजनार्दनप्रसाद द्विज, श्रीबच्चन, श्रीदिनकर, श्रीअंचल, श्रीबालकृष्णराव, श्रीनरेंद्र शर्मा, श्रीआरसीप्रसादसिंह, श्रीनैपाली, श्रीउदयशंकर भट्ट और श्रीगंगाप्रसाद पांडेय का उदय बड़ी उत्तम गति से हो रहा है। पं० इलाचंद जोशी बड़े गंभीर और श्रेष्ठ कवि के रूप में एकाएक प्रकट हुए हैं। जोशीजी इन नवयुवक कवियों में विशेष प्रौढ़ और श्रेष्ठ हैं।

छायावाद की कविता का भविष्य

नवयुग की काव्य-रचना का प्रवाह पिछले कुछ वर्षों से हिंदी में बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। इस क्षेत्र के कवियों ने काव्य-साहित्य को प्रचुर सामग्री प्रदान की, और कितने ही सुंदर काव्यों का सृजन इनके द्वारा हुआ। अब प्रश्न यह है कि क्या छायावाद का यह युग ऐसा ही बना रहेगा? या

* छायावादी कविता में कोमलकांत पदावली की दृष्टि से पंत जी ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं।—संपादक

इसमे जो कमी है, वह दूर होगी? एक पक्ष यह कहता है कि अभी छायावाद के काव्यों मे काव्य की वह एकरूपता नहीं पाई जाती, जो सार्वभौमिक काव्यों मे होनी चाहिए। फिर भी भाव और विचार की दृष्टि से छायावादी रचनाएँ बहुत आगे बढ़ी हुई हैं। कवि का काम केवल शब्द-संग्रह द्वारा जन-साधारण का मनोरंजन करना नहीं। मनोरंजन की वस्तुएँ स्थायी नहीं होतीं। इनका प्रधान कर्म है हृदय और अंतर्जगत की अभिव्यक्तियों को व्यक्त करना। छायावाद के जितने प्रधान कवि हैं, हमारी समझ में वे अपना कार्य लगभग समाप्त कर चुके हैं, और संभवतः अभी कुछ अधिक प्रौढ़ होने पर और अच्छी चीजे लिखें। संभावना है, अभी दो-चार कवि अपनी सुंदर कृतियाँ हिंदी के इस युग में लेकर आवेंगे।

हमे यहाँ हिंदी के नवीन कवियों से भी कुछ कहना है। वे भाव, अनुभूति, कल्पना की प्रधानता तो अवश्य ही अपने काव्य मे रक्खें, किंतु भाषा की ओर अधिक ध्यान दे। भाषा वे कम-से-कम इतनी शुद्ध और स्पष्ट अवश्य लिखे कि उनकी आंतरिक अनुभूति का अनुभव काव्य-प्रेमी सरलता से कर सके। इससे भाव-प्रधान काव्य की ओर लोक-रुचि अधिक बढ़ेगी। कहा जाता है, कवि अपने समय का गायक है, किंतु गायन ऐसा न होना चाहिए, जिसका ओर-ही-छोर न हो, या उस पर 'ख़ुद ही समझें या ख़ुदा ही समझे'वाली कहावत चरितार्थ हो। भाषा की स्वच्छता अत्यंत आवश्यक है। समय अब अधिक उन्नत हो गया है। इस बात का ध्यान कवियों को अवश्य रखना चाहिए। देश, समाज, राष्ट्र का कल्याण यदि कवियों की रचनाओं से हो सके, तो अधिक उपयुक्त है। कवि

भी देश और समाज का प्रतिनिधि है। मनुष्य-मात्र का हृदय भाव-प्रधान है, किंतु भावना को समझने के लिये उसका बाह्य रूप से अधिक स्पष्ट होना ज़रूरी है। बहुत-से कवि आज भी छाया-वाद के नाम पर ऐसी कविताएँ लिख रहे हैं, जो नवीन काव्य के लिये हानिकारक है। अब वह समय दूर नहीं, और छायावाद के युग के बाद ऐसा युग आ रहा है, जब कवि अपने आप हृदयस्थ भावनाओं को बडी स्पष्टता, अधिक आकर्षकता और व्यापकता के साथ व्यक्त करेंगे। जो कूड़ा-करकट आज छाया-वाद की कविताओं में दिखाई दे रहा है, वह स्वयं साफ़ हो जायगा, और वास्तविक काव्य का आदर्श सम्मुख दिखाई पडेगा। यह युग महाकाव्यों या प्रबंध-काव्यों का नहीं, लोगों को कविता में कथा-कहानी पढने की रुचि नहीं। वे सुंदर और स्पर्श करनेवाली बात को छोटे रूप में ग्रहण करना चाहते हैं, जिसका प्रभाव हृदय पर पूर्ण रूप से वर्तमान रहे। जीवन के प्रत्येक क्षण के द्वंद्वों, सुख-दुःख की कोमल कल्पनाओं को लोग अपने में अनुभव करना चाहते हैं। अब लोक रुचि अपने कल्याण के साथ लोक या विश्व-कल्याण की ओर है। मानव-हृदय विशाल होता जा रहा है। इसलिये काव्य में भी इस विशालता को स्थान मिलना चाहिए। जिस काव्य मे मानव-समाज का हित नहीं, विश्व-प्रेम की अनुभूति नहीं, जीवन के चित्रों का स्पष्टीकरण नहीं, वह वास्त-विक काव्य नहीं। ऐसी दशा मे वर्तमान काव्य की प्रगति को और भी अधिक व्यापक बनाने के लिये असीम भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक है। इससे छायावाद की कविता का और भी अधिक महत्त्व प्रदर्शित होगा, और उसका सुंदर स्वरूप प्रकट होगा।

नवयुग काव्य-विमर्ष

यह पुस्तक नवीन कवियों की कविता का महत्त्व प्रदर्शित करने के लिये लिखी गई है। पुस्तक कई वर्ष पहले लिखी जा चुकी थी। उस समय इसमें केवल कवियों की जीवनी और कविताओं का संग्रह था। किंतु कारण-वश कई वर्ष बीत गए, तो यह निश्चय किया गया कि कवियों की जीवनी के साथ उनकी कविताओं की आलोचना भी दी जाय, तब पुस्तक की उपयोगिता अधिक बढ़ जायगी। इसी निश्चय के अनुसार पुस्तक तैयार की गई, और छपते-छपते दो वर्ष लग गए। अंत में गंगा-पुस्तकमाला के अध्यक्ष श्रीदुलारेलाल भार्गव ने इसे छापना स्वीकार किया, और इस काम को अंजाम दिया। इसमें जितनी कविताएँ दी गई हैं, वे कवियों की स्वीकृति से रक्खी गई हैं; इसलिये उनके सुंदर और श्रेष्ठ होने में किसी को संदेह न करना चाहिए।

पुस्तक तीन खंडों में विभाजित की गई है। प्रथम खंड में भाव-प्रधान, द्वितीय में कल्पना-प्रधान और तृतीय में नवोदित कवियों की रचनाओं का आलोचना के साथ-साथ संग्रह किया गया है। इस क्रम के निर्धारित करने का उद्देश्य यह है कि कवियों के काव्यों के आलोचनात्मक रसास्वादन के साथ ही उनके काव्य-विकास-क्रम का भी अध्ययन किया जा सके। हम जानते हैं, इस संस्करण में अनेक त्रुटियाँ हैं, संभवतः आलोचना में भी कुछ विशृंखलता दिखाई पड़े, किंतु इन सबका सुधार द्वितीय संस्करण में पूर्ण रूप से करने का प्रयत्न किया जायगा। हमारी समझ में इस प्रकार की पुस्तक हिंदी-साहित्य में यह अकेली है, और ऐसी पुस्तक की आवश्यकता भी थी, इसलिये, आशा है, त्रुटियों के लिये मुझे क्षमा किया जायगा।

जो सज्जन या मित्र पुस्तक की त्रुटियों के संबंध मे मेरा ध्यान आकर्षित करेंगे, उनका मै कृतज्ञ होऊँगा।

कटरा
इलाहाबाद
वसत पचमी, १९६४

विनीत
ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

विषय-सूची

पृष्ठ

आती है शून्य क्षितिज से क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी ?
टकराती बिलखाती-सी पगली-सी देती फेरी ?
क्यों व्यथित व्योम गंगा-सी छिटकाकर दोनों छोरें
चेतना-तरंगिनि मेरी लेती है मृदुल हिलोरें ?
क्यों छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलकों में ?
हाँ, उलझ रहा सुख मेरा संध्या की घन अलकों में !
जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।
शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग-जल का,
यह व्यर्थ साँस चल-चलकर करती है काम अनिल का।
सुख आहत शांत उमंगें बेगार साँस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है, रोती करुणा कोने में।
बस गई एक बसती है स्मृतियों की इसी हृदय में ;
नक्षत्र-लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।
ये सब स्फुलिंग हैं मेरी उस ज्वालामयी जलन के,
कुछ शेष चिह्न हैं केवल मेरे उस महा मिलन के।
चातक की चकित पुकारें, श्यामा-ध्वनि सरल, रसीली ;
मेरी करुणार्द्र कथा की टुकड़ी आँसू से गीली।
अवकाश भला है किसको सुनने को करुण कथाएँ ;
बेसुध जो अपने सुख से, जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ।
खाली न सुनहली संध्या मानिक मदिरा से जिनकी,
वे कब सुननेवाले हैं दुख की घड़ियाँ भी दिन की।
अलियों से आँख बचाकर जब कंज संकुचित होते,
धुँधली संध्या, प्रत्याशा हम एक-एक को रोते।
झंझा झकोर गर्जन है, बिजली है नीरद-माला ;
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला।

अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना, भीगी पलकों का लगना।
इस हृदय-कमल का घिरना अलि-अलकों की उलझन में,
आँसू-मरन्द का गिरना, मिलना निःश्वास पवन में।
मादक थी, मोहमयी थी मन बहलाने की क्रीड़ा,
हाँ, हृदय हिला देती थी वह मधुर प्रेम की पीड़ा।
जीवन की जटिल समस्या है जटा-सी बढ़ी कैसी,
उड़ती है धूल हृदय में, किसकी विभूति है ऐसी !
जल उठा स्नेह दीपक सा नवनीत हृदय था मेरा;
अब शेष धूम-रेखा से चित्रित कर रहा अँधेरा।
किंजल्क-जाल है बिखरे, उड़ता पराग है रूखा;
क्यों स्नेह-सरोज हमारा विकसा मानस में सूखा ?
छिप गईं कहाँ छूकर वे मलयज की मृदुल हिलोरें !
क्यों घूम गई हैं आकर करुणा-कटाक्ष की कोरें ?
वाडव-ज्वाला सोती थी इस प्रेम-सिंधु के तल में;
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में।
नीरव मुरली, कलरव चुप, अलि-कुल थे बंद नलिन में;
कालिंदी बही प्रणय की इस तन्मय हृदय-पुलिन में।
कुसुमाकर रजनी के जो पिछले पहरों में खिलता,
सुकुमार शिरीष-कुसुम-सा मैं प्रात धूल में मिलता।
व्याकुल उस विपुल सुरभि से मलयानिल धीरे-धीरे
निःश्वास छोड़ जाता है फिर विरह-तरंगिनि तीरे।
छिल-छिलकर छाले फोड़े मल-मलकर मृदुल चरण-से,
धुल-धुलकर बह रह जाते आँसू करुणा के कण-से।
बुलबुले सिंधु के फूटे, नक्षत्र-मालिका टूटी;
नभ मुक्त कुंतला जगती दिखलाई देती लूटी।

इस विकल वेदना को ले किसने सुख को ललकारा ;
वह एक अबोध अकिंचन बेसुध चैतन्य हमारा !
लिपटे सोते थे मन में सुख-दुख दोनों ही ऐसे—
चंद्रिका अँधेरी मिलती मालती-कुंज में जैसे।

रहस्य

मेरी आँखों की पुतली में
तू बनकर प्रान समा जा रे !
जिससे कन-कन में स्पंदन हो,
मन में मलयानिल चंदन हो,
करुणा का नव अभिनंदन हो,
वह जीवन-गीत सुना जा रे !
खिंच जाय अधर पर वह रेखा,
जिसमें अंकित हो मधु-लेखा,
जिसको वह विश्व करे देखा,
वह स्मित का चित्र बना जा रे !

अरी वरुणा की शांत कछार

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग का प्यार !
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन-कुंज !
जगत नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप चल रहा था उज्ज्वल व्यापार ;
स्वर्ग का वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार।

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
तुम्हारे कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद;
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद।
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
छोड़कर पार्थिव भोग विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार;
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव-सुलभ दुलार।
दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार;
सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार।
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
मुक्ति-जल की वह शीतल बाढ़ जगत की ज्वाला करती शांत;
तिमिर का हरने को दुख-भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत।
देव-कर से पीड़ित विक्षुब्ध प्राणियों से कह उठा पुकार—
तोड़ सकते हो तुम भव-बंध, तुम्हें है यह पूरा अधिकार।
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !
छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुगति सुधार;
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार।
विश्व-मानवता का जय-घोष यहीं पर हुआ जलद-स्वर-मंद्र;
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चंद्र।
अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारा वह अभिनंदन दिव्य, और उस यश का विमल प्रचार ;
सकल वसुधा को दे संदेश धन्य होता है बारंबार।
आज कितनी शताब्दियों बाद उठी ध्वंसों में वह झंकार,
प्रतिध्वनि जिसकी सुने दिगंत, विश्व वाणी का बने विहार।

गीत

जीवन-निशीथ के अंधकार !

तू नील तुहिन जल-निधि बनकर फैला है कितना वार-पार ;
कितनी चेतनता की किरनें हैं डूब रही ये निर्विकार।
कितना मादक तम, निखिल भुवन पर रहा भूमिका में अभंग ;
तू मूर्तिमान हो छिप जाता प्रतिपल के परिवर्तन अनंग।
ममता की क्षीण अरुण रेखा खिलती है तुझमें ज्योति कला,
जैसे सुहागिनी की उर्मिल अलकों में कुंकुम चूर्ण भला।
रे चिर-निवास विश्राम प्राण के मोह जलद छाया उदार,
माया रानी के केश-भार।

*　　*　　*

जीवन-निशीथ के अंधकार !

तू घूम रहा अभिलाषा के नव ज्वलन धूम-सा दुर्निवार ;
जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक, चिनगारी-सा उठती पुकार।
यौवन मधुवन की कालिंदी वह रही चूमकर सब दिगंत ;
मन शिशु की क्रीड़ा नौकाएँ बस दौड़ लगाती हैं अनंत।
कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन ! हँसती तुझमें सुंदर छलना ;
धूमिल रेखाओं से सजीव चंचल चित्रों की नव-कलना।
इस चिर-प्रवास श्यामल पथ में छाई पिक प्राणों की पुकार ;
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार।

कामायनी का विरह

संध्या अरुण-जलज-केसर ले अब तक मन थी बहलाती ;
मुरझाकर कब गिरा तामरस, उसको खोज कहाँ पाती !
क्षितिज भाल का कुंकुम मिटता मलिन कालिमा के कर से ;
कोकिल की काकली वृथा ही अब कलियों पर मँडराती ।

कामायनी कुसुम वसुधा पर पड़ी, न वह मकरंद रहा ;
एक चित्र बस रेखाओं का, अब उसमें है रंग कहाँ ।
वह प्रभात का हीनकला शशि, किरण कहाँ चाँदनी रही,
वह संध्या थी, रवि शशि तारा, ये सब कोई नहीं जहाँ ।

जहाँ तामरस इंदीवर या सित शतदल हैं मुरझाए
अपने नालों पर, वह सरसी श्रद्धा थी, न मधुप आए ;
वह जलधर, जिसमें चपला या श्यामलता का नाम नहीं,
शिशिर-काल का क्षीण स्रोत वह, जो हिमतल में जम जाए ।

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं,
जगती की स्पष्ट उपेक्षा, एक कसक, साकार नहीं,
हरित कुंज की छाया-भर थी वसुधा आलिंगन करती,
वह छोटी-सी विरह-नदी थी, जिसका है अब पार नहीं !

नील गगन में उड़ती-उड़ती विहग-बालिका-सी किरनें
स्वप्न-लोक को चलीं थकी सी नींद सेज पर जा गिरने ;
किंतु विरहिणी के जीवन में एक घड़ी विश्राम नहीं,
बिजली-सी स्मृति चमक उठी तब, लगे जभी तम घन घिरने ।

संध्या नील सरोरुह से जो श्याम पराग बिखरते थे,
शैल-घाटियों के अंचल को वे धीरे से भरते थे ।
तृण-गुल्मों से रोमांचित नग सुनते उस दुख की गाथा,
श्रद्धा की सूनी साँसों से मिलकर जो स्वर भरते थे ।

* * *

"जीवन में सुख अधिक या कि दुख, मंदाकिनि, कुछ बोलोगी ?
नभ में नखत अधिक, सागर में या बुद्बुद हैं गिन दोगी ?
प्रतिबिंबित है तारा तुममें, सिंधु-मिलन को जाती हो,
या दोनो प्रतिबिंब एक के इस रहस्य को खोलोगी !

इस अवकाश-पटी पर जितने चित्र बिगड़ते-बनते हैं,
उनमें कितने रंग भरे, जो सुर-धनु-पट से छनते हैं ;
किंतु सकल अणु पल में घुलकर व्यापक नील शून्यता-सा,
जगती का आवरण वेदना का धूमिल पट बुनते हैं ।

दग्ध श्वास से आह न निकले सजल कुहू में आज यहाँ !
कितना स्नेह जलाकर जलता, ऐसा है लघु दीप कहाँ ?
बुझ न जाय वह साँझ-किरण सी दीप-शिखा इस कुटिया की,
शलभ समीप नहीं तो अच्छा, सुखी अकेले जले यहाँ !

आज सुनो केवल चुप होकर, कोकिल जो चाहे कह ले,
पर न परागों की वैसी है चहल-पहल, जो थी पहले ;
इस पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या,
कामायनि, तू हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सह ले !

विरल डालियों के निकुंज सब ले दुख के निःश्वास रहे,
उस स्मृति का समीर चलता है, मिलन-कथा फिर कौन कहे ?
आज विश्व अभिमानी जैसे रूठ रहा अपराध बिना,
किन चरणों को धोएँगे जो अश्रु पलक के पार बहे !

अरे मधुर हैं कष्ट-पूर्ण भी जीवन की बीती घड़ियाँ !
जब निःसंबल होकर कोई जोड़ रहा बिखरी कड़ियाँ ;
वही एक, जो सत्य बना था चिर सुंदरता में अपनी,
छिपा कहीं तब कैसे सुलझे उलझी सुख-दुख की लड़ियाँ !

विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं,
वह जलती छाती न रही अब वैसा शीतल प्यार नहीं ;

सब अतीत में लीन हो चलीं, आशा, मधु अभिलाषाएँ,
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नहीं!
वे आलिंगन एक पाश थे, स्मिति चपला थी, आज कहाँ?
और मधुर विश्वास! अरे वह पागल मन का मोह रहा;
वंचित जीवन बना समर्पण यह अभिमान अकिंचन का,
कभी दे दिया था कुछ मैंने ऐसा अब अनुमान रहा।
विनिमय प्राणों का यह कितना भय-संकुल व्यापार अरे;
देना हो कितना दे-दे तू, लेना! कोई यह न करे!
परिवर्तन की तुच्छ प्रतीक्षा पूरी कभी न हो सकती;
संध्या रवि देकर पाती है इधर-उधर उडुगन बिखरे!
वे कुछ दिन जो हँसते आए अंतरिक्ष अरुणाचल से,
फूलों की भरमार स्वरों का कूजन लिए कुहक बल से;
फैल गई जब स्मिति की माया किरन कली की क्रीड़ा से,
चिर-प्रवास में चले गए वे आने को कहकर छल से!
जब शिरीष की मधुर गंध से मान-भरी मधु-ऋतु रातें
रूठ चली जातीं रक्तिम-मुख, न सह जागरण की घातें;
दिवस मधुर आलाप कथा सा कहता छा जाता नभ में,
वे जगते सपने अपने फिर तारा बनकर मुसक्याते।"
वन-बालाओं के निकुंज सब भरे वेणु के मधु स्वर से,
लौट चुके थे आनेवाले सुन पुकार अपने घर से;
किंतु न आया वह परदेशी, युग छिप गया प्रतीक्षा में,
रजनी की भीगी पलकों से तुहिन-बिंदु कण-कण बरसे!
मानस का स्मृति-शतदल खिलता, झरने बिंदु मरंद घने,
मोती कठिन पारदर्शी ये, इनमें कितने चित्र बने!
आँसू सरल तरल विद्युत्कण नयनालोक विरह-तम से
प्राण पथिक यह संबल लेकर लगा कल्पना-जग रचने।

अरुण जलज के शोण कोण थे नव तुषार के बिंदु भरे,
मुकुट चूर्ण बन रहे प्रतिच्छवि कितनी साथ लिए बिखरे !
वह अनुराग हँसी दुलार की पंक्ति चली सोने·तम में,
वर्षा विरह कुहू में जलते स्मृति के जुगनू डरे-डरे ।
सूने गिरि-पथ में गुंजारित शृंगनाद की ध्वनि चलती,
आकांक्षा-लहरी दुख-तटिनी-पुलिन-अंक में थी ढलती ।
जले दीप नभ के, अभिलाषा शलभ उड़े, उस ओर चले,
भरा रह गया आँखों में जल, बुझी न वह ज्वाला जलती ।
"मा"—फिर एक किलक दूरागत गूँज उठी कुटिया सूनी,
मा उठ दौड़ी भरे हृदय में लेकर उत्कंठा दूनी;
लुटरी खुली अलक, रज-धूसर बाहें आकर लिपट गईं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी !
"कहाँ रहा नटखट ! तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना !
अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी सुख-दुख तो दिया घना ।
चंचल तू, वनचर मृग बनकर भरता है चौकड़ी कहीं,
मैं डरती तू रूठ न जाए, करती कैसे तुझे मना !"
"मैं रूठूँ मा और मना तू, कितनी अच्छी बात कही,
ले मैं सोता हूँ अब जाकर, बोलूँगा मैं आज नहीं;
पके फलों से पेट भरा है, नींद नहीं खुलनेवाली,"
श्रद्धा चुंबन ले प्रसन्न कुछ, कुछ विषाद में भरी रही ।
जल उठते हैं लघु जीवन के मधुर-मधुर वे पल हलके,
मुक्त उदास गगन के उर में छाले बनकर जा झलके;
दिवा-श्रांत आलोक-रश्मियाँ नील निलय में छिपीं कहीं,
करुण वही स्वर फिर उस संसृति में बह जाता है गल के ।
प्रणय किरण का कोमल बंधन मुक्ति बना बढ़ता जाता
दूर, किंतु कितना प्रतिपल वह हृदय समीप हुआ जाता ।

मधुर चाँदनी-सी तंद्रा जब फैली मूर्च्छित मानस पर,
तब अभिन्न प्रेमास्पद उसमें अपना चित्र बना जाता!
कामायनी सकल अपना सुख स्वप्न बना सा देख रही,
युग-युग की वह विकल प्रतारित मिटी हुई बन लेख रही;
जो कुसुमों के कोमल दल से कभी पवन पर अंकित था,
आज पपीहा के पुकार-सी नभ में खिचती रेख रही।

२—सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

[पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म संवत् १९५३ वि० में, महिषादल-राज्य, मेदनीपुर (बंगाल) में, हुआ। आपके पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। आपका असली घर उन्नाव-ज़िला के गढ़ाकोला-नामक गाँव में था। यह महिषादल-राज्य में नौकरी करते थे, और वहीं अपने परिवार के साथ रहते थे। पं० रामसहायजी पर महिषादल के राजा साहब की विशेष कृपा थी, इसलिये सूर्यकांत त्रिपाठी की शिक्षा-दीक्षा राज्य की ओर से हुई। स्कूल-शिक्षा के समय से ही इनकी रुचि काव्य-रचना की ओर हो गई थी। जिस समय यह मैट्रिक्युलेशन में पढ़ते थे, उसी समय से अच्छी कविता करने लगे थे। बँगला के प्रसिद्ध लेखक श्रीहरिपद घोषाल ने इन्हें अँगरेज़ी की शिक्षा दी थी। बँगला इनकी मातृभाषा बन गई थी, और प्रारंभ में यह बँगला में ही कविता लिखते थे। इसी समय इनकी बुद्धि दर्शन-विषय की ओर झुकी जिससे यह संस्कृत पढ़ने लगे। शीघ्र ही इन्होंने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। बड़े होने पर इनका झुकाव हिंदी की ओर हुआ, और हिंदी में कविता लिखने लगे।

कलकत्ते में रहकर इन्होंने स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के दार्शनिक सिद्धांतों का अध्ययन किया, जिससे इनके विचारों में गंभीरता और प्रौढ़ता आ गई। श्रीरामकृष्ण-मिशन की ओर से निकलनेवाले 'समन्वय' पत्र का संपादन भी, सन् १९७८ में, किया, और कलकत्ते से निकलनेवाले 'मतवाला' के संपादकीय विभाग में भी कुछ दिन काम किया। आपने 'अनामिका', 'परिमल',

'गीतिका' और 'तुलसीदास'-नामक काव्य-ग्रंथों की रचना की। 'गीतिका' में सुंदर गीतों का संग्रह है। 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' और 'प्रभावती'-नामक उपन्यास और 'उषा'-नामक नाटिका भी लिखी है। इनके सिवा 'रवींद्र-कविता-कानन', 'हिंदी-बँगला-शिक्षक', 'ध्रुव', 'प्रह्लाद', 'राणा प्रताप' तथा 'भीष्म'-नामक पुस्तकें भी लिखी हैं। 'शकुंतला' नाम की पुस्तक अभी अप्रकाशित है। गोस्वामी तुलसीदास की रामायण की एक टीका भी लिखी है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद के साहित्य के विषय में आपने एक बड़ा ग्रंथ लिखा है। 'उच्छृंखल' उपन्यास लिख रहे हैं। 'सखी' कहानियों का संग्रह है। आपने 'सुधा' के संपादकीय विभाग में भी बहुत दिन तक कार्य किया। आप बड़े मिलनसार तथा सरल हैं।]

प० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' वर्तमान काव्य-जगत् में युग प्रवर्तक कवि कहे जाते हैं। आपने हिंदी-क्षेत्र में निराले ढंग की रचना प्रचलित की। इसलिये आपका 'निराला' नाम युक्ति-संगत है। 'निराला'जी हिंदी-काव्य-क्षेत्र में आँधी की भाँति आए, और अपने नवीन काव्य के संदेश से एक क्रांति उत्पन्न कर दी। इसीलिये इन्हें 'युग-प्रवर्तक' कवि के रूप से साहित्य-सेवी संबोधित करने लगे। 'निराला'जी के काव्य-काल का प्रारंभ संवत् १९७२ विक्रमीय से होता है। विशेषत: जब से 'मतवाला' का प्रकाशन शुरू हुआ, तभी से यह हिंदी-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए, और थोड़े ही समय में अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली। उन्हीं दिनों आपकी अतुकांत काव्य-रचना 'अनामिका' प्रकाशित हुई। यह मुक्तक छंद का स्वच्छंद ग्रंथ है। इनके पहले भी बाबू मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, बाबू जयशंकर'प्रसाद' और रूपनारायण पांडेय ने अतुकांत छंदों की रचना की थी, किंतु इन्होंने जिस प्रकार के मुक्तक छंद लिखने प्रारंभ किए, उनका दृष्टिकोण केवल पठन-कला (Art of reading) ही नहीं

रहा। यह हिंदी के लिये बिलकुल नवीन वस्तु सिद्ध हुई। 'निराला'जी पर बँगला-भाषा का अधिक प्रभाव पड़ा, इसलिये इन्होंने इस प्रकार की रचनाएँ लिखकर अच्छी सफलता तथा ख्याति, दोनो प्राप्त कीं। बँगाली कवि भावुक होते हैं, विशेषतः उनकी रचनाओं में संगीत, ताल, लय का सुंदर समावेश होता है। 'निराला'जी की रचनाओं में भी संगीत-लहरी का अपूर्व आनंद आता है। ताल और गति का सुंदर सामंजस्य मिलता है। कल्पना, भाव, अनुभूति और हृदय की अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं की विशेषता है। वेदांत तथा दर्शन के विचारों से इनकी रचना परिप्लावित है। 'निराला'जी ने छोटे बड़े तुकांत तथा अतुकांत, दोनो प्रकार के छंदों को बहुलता के साथ लिखा है। विषयों का चुनाव गंभीरता से किया है। कविताओं के शीर्षक तक छायावादी तथा रहस्यवादी हैं। शीर्षक तथा कविता पढ़कर दोनो का अर्थ समझना कठिन हो जाता है। छायावादी कविता को 'निराला'जी की कविता से अधिक बल प्राप्त हुआ, उसमें नया जीवन उत्पन्न हुआ। लोगों का झुकाव नवीन काव्य की ओर आकर्षित हुआ। इनकी कविताएँ इनके संघर्षमय जीवन के चित्र हैं। उनमें गंभीरता प्रचुर मात्रा में है। संगीतमय सांगोपांग रूपक बाँधने में यह सिद्ध-हस्त हैं। इनके काव्य में हृदय की सूक्ष्म और वेदना की भावनाओं की वास्तविक रूप-रेखा की अनुभूति होती है। प्रकृति-निरीक्षण का चित्रण भी मनोरम हुआ है। आपकी कविताओं का संग्रह 'परिमल' प्रकाशित हो चुका है। इसमें ७८ कविताएँ संगृहीत हैं। कविताएँ काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं। स्थान स्थान पर सुंदर अलंकारों की सृष्टि हुई है। हिंदी में संगीतमय गीतों की भी सृष्टि 'निराला'जी ने की। बंगाली सत्संग से इन्होंने संगीत-विद्या की अच्छी कुशलता प्राप्त कर ली। इसका प्रभाव इनकी रचनाओं में पूर्ण रूप से

विद्यमान है। अतुकांत और नवीन छंदों के पढने में यह अभिज्ञ हैं। अधिकांश साहित्यिक जो पठन-कला से अभिज्ञ नहीं हैं, वे इनके काव्य का आनंद नहीं प्राप्त कर सकते। प्रकृति-निरीक्षण के चित्रों को प्रकट करने में 'निराला'जी पूर्ण सफल हुए हैं।

'निराला'जी के काव्य पर दृष्टिपात करने से उसे हम कई रूपों में पाते हैं। उनमें से काल्पनिक रहस्यवादी रचनाएँ प्रधान हैं। मुक्तक काव्य तो आपकी नई सृष्टि है ही। भावात्मक और रहस्यवादी कविताएँ गंभीर प्रवाह में बही हैं। रहस्यात्मक कविताओं में एक उन्माद है, तत्त्व है, और हृदय की अपूर्व भावनाओं का चमत्कार है। 'परिमल' की प्रार्थना है—

जग को ज्योतिर्मय कर दो ;
प्रिय को मलयद गामिनि ! मद उतर
जीवन मृत तरु तृण गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस हँस नित पथ आलोकित कर
नूतन जीवन भर दो,
जग को आलोकित कर दो।

कवि उसी अदृश्य शक्ति से प्रार्थना करता है कि संसार अंधकार-पूर्ण है, इसमें नवजीवन भर दो, और अपनी ज्योति से प्रकाशित कर दो। कवि विश्व बंधुत्व के आदर्श प्रेमी के रूप में प्रकट हुआ है। वह आदर्शवादी की दृष्टि से अपनी स्वार्थ-सिद्धि नहीं चाहता, वरन् सार्वभौमिकता का उपासक है। इसीलिये वह अखिल विश्व को ज्योतिर्मय करने की प्रार्थना करता है। रवि बाबू का विश्व-बंधुत्व भी इसी प्रकार का है। वह भी इसी प्रकार के विश्व बंधुत्व के संदेश-वाहक हैं। कवि के लिये हृदय की यह विशालता बड़ी ज्वलंत है। परिमल का पहला छंद 'मौन' सुंदर है। संगीत की मधुर धारा से यह प्रवाहित है। 'आत के लघु पात' रचना कोमल, स्वच्छंद, सरल

जीवन, उत्थान और पतन के आघात से चुप और निर्द्वंद्व रह जाय। इसमें सौंदर्य है। उत्थान और पतन प्रकृति का नियम है। दर्शन और वेदांत भी यही उपदेश देते हैं। फिर जीवन में विकलता कैसी? उत्थान में प्रसन्नता और पतन में निर्द्वंद्वता ही अनिवार्य है। विश्व-जीवन का ही नहीं, कवि-जीवन का भी इसमें चित्रण है। इसमें अनुभूति की अभिव्यक्ति है। 'खेवा' कविता रहस्यवादी है। रहस्यवादियों का सिद्धांत आत्मा और परमात्मा से एकीकरण है। कबीर के रहस्यवादी होने का यही प्रमाण है—

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन - खेवनहार!
तिर - तिर फिर - फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है;
डोले पग जल पर
डगमग - डगमग
फिरती है।
टूट गई पतवार, जीवन-खेवनहार!

इस कविता में जीवन, संसार और परमात्मा को लक्ष्य करके कवि अपनी मनोभावना प्रकट करता है। भाव और कल्पना के मिश्रण ने विषय को गूढ़ बना दिया है।

काव्य का वास्तविक सौंदर्य भाव और अनुभूति से प्रकट होता है। कवि के कवित्व का लक्ष्य इसी ओर है। और, वह भाव-पथ का पथिक बनकर अपने 'मिशन' (संदेश) में सफल होता है। 'गीत' कविता में निराशावाद का सुंदर सामंजस्य है। संसार असार है, यहाँ भला-बुरा कोई नहीं रहता। सबको अनंत पथ का पथिक बनना पड़ता है। बड़ी-बड़ी अभिलाषाएँ काल-चक्र से अपूर्ण रह जाती हैं। इस

कविता में संसार की असारता का कवि ने वर्णन किया है। इसमें गूढ़ संदेश का समावेश है—

देख चुका जो-जो आए थे,
चले गए;
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए।

* * *

चिंताएँ, बाधाएँ
आती ही हैं, आएँ;
अंध हृदय है बंधन निर्दय लाएँ;
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए।
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए।

कवि चिंताओं और बाधाओं का स्वागत करता है। हृदय सांसारिकता में इतना लीन है कि उसे निर्दिष्ट पथ का कुछ भी ज्ञान नहीं, वह बंधन में बंधा हुआ है। परंतु कर्तव्य पराङ्मुख नहीं है। वह बड़ी सुंदरता से सांसारिकता में बँधे हुओं को एक संदेश देता है कि अंत में सबकी एक ही-सी गति होती है। फिर व्याकुल होने की क्या आवश्यकता? 'पारस' कविता उत्कृष्ट है। प्रतिपल 'तुम' मेरे जीवन पर अपनी ज्योति की धारा को, जो सुधा की भाँति है, डाल रहे हो। 'तुम' का तात्पर्य उस अनंत ज्योति से है, जो प्रत्येक पल हमारे जीवन को आलोकित करता है—

जीवन की विजय, सब पराजय
चिर-अतीत-आशा, सुख सब भय
सबमें तुम, तुममें सब तन्मय;

कर-स्पर्श-रहित और क्या है? अपलक, असार!
मेरे जीवन पर यौवन-वन के बहार।

जीवन में विजय ही पराजय है। इसका गूढ़ रहस्य है। 'सबमें तुम, तुममें सब तन्मय' से एक अनंत शक्ति की व्याप्ति का परिचय होता है। दार्शनिक आत्मा और परमात्मा की एकरूपता भी स्थिर करते है। 'घट-घट व्यापक राम' गोस्वामी तुलसीदास की पंक्ति है। आत्मा और परमात्मा का अटूट संबंध है, जीवन निस्सार है, आत्मा की तन्मयता परमात्मा में रहती है, वह आत्मा में निवास करता है, किंतु अज्ञानता और अविवेक आत्मा की दीप्ति धारण करने नहीं देता। यह दार्शनिक ज्ञान की सुंदर कृति है। कवि ने इसी प्रकार से प्रायः वेदांत और दर्शन-ऐसे निगूढ़ तत्त्वों का रहस्य प्रकट किया है। हिंदी-काव्य-साहित्य में यह विचार प्राचीन होते हुए भी नवीन है, और इस प्रकार के विचारों को कवि ने मौलिकता का जामा पहनाया है। 'निराला'जी की 'तुम और मैं' कविता ऊँची-से-ऊँची रहस्यवादी रचना की समता कर सकती है। यह कविता बड़ी स्पष्ट और भाव-अनुभूति-पूर्ण तथा संगीत-कला-पूर्ण है। इसमें सेव्य-सेवक-भावना का उत्कृष्ट, अलौकिक और मधुर प्रवाह प्रवाहित है। 'परिमल' की कविताओं में यह बहुत उत्कृष्ट है। इसमें हृदय की अन्यतम पुकार है—

तुम दिनकर के खर किरण-जाल, मै सरसिज की मुस्कान;
तुम वर्षों के बीते वियोग, मैं हूँ पिछली पहचान।
तुम योग और मै सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि।
तुम मृदु मानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा,
तुम नंदन-वन-घन विटप और मै सुख-शीतल-तलशाखा।

तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानंद ब्रह्म,
मैं मनोमोहिनी माया।
तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कल-कूजन तान,
तुम मदन-पंच-शर-हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान।
तुम अंबर, मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन-पटल-श्याम
मैं तड़ित् तूलिका रचना।

इसी भाव की कुछ प्राचीन और नवीन कविताएँ भी मौजूद हैं, किंतु इसमें जो मौलिकता है, वह कवि की अपनी है। गोस्वामी तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' में इसी प्रकार की विनय श्रीरामचंद्र के लिये की है—

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी,
मैं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी।

आदि। गोस्वामीजी भक्त थे, इसलिये उनकी रचना भक्ति में सराबोर है, और उसकी एक अलग ही ध्वनि है। खड़ीबोली के प्रसिद्ध कवि 'सनेही' ने इसी प्रकार का एक छंद लिखा है—

तू है गगन विस्तीर्ण, तो मैं
एक तारा क्षुद्र हूँ;
तू है महासागर अगम,
मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।

आदि। किंतु 'निराला'जी की उक्त कविता में खास विशेषता है। 'दिनकर के खर किरण-जाल' और 'सरसिज की मुस्कान' में एक निरालापन है। यदि कवि शीतल किरणों के द्वारा किसी पुष्प का खिलना लिखता, तो उसमें वह सौंदर्य न प्रकट होता, जो 'खर किरण-जाल से' सरसिज के मुस्किराने में प्रकट होता है। तुम योग और मैं

सिद्धि हूँ, तुम मानस के भाव और मैं भाषा हूँ आदि बड़ी मार्मिक और भावना-प्रधान पंक्तियाँ हैं। कवि भक्त और आदर्शवादी के रूप में ईश्वर को संबोधित नहीं करता। एक तत्त्वज्ञानी और वेदांती की दृष्टि से अपनी आंतरिक प्रेरणा का अंकन करता है। यही कारण है कि 'निराला'जी की यह रचना साहित्य-क्षेत्र में अधिक प्रिय हुई है। इसमें रहस्यवाद और छायावाद की पुट तो है ही, साथ ही भावनाओं की गठित तारतम्यता भी प्रकट हुई है। इस कविता से सौंदर्य का भी परिचय मिलता है। 'परलोक', 'माया', 'अध्यात्म फल', 'गीत', 'भर देते हो', 'ध्वनि', 'अधिवास' रचनाएँ रहस्यवादी हैं।

रहस्यवादी और भाव-पूर्ण चित्रण के सिवा 'निराला'जी प्रकृति-निरीक्षण को सूक्ष्मता से प्रौढ़ भाषा में व्यक्त करने में बड़े सिद्धहस्त हैं। 'यमुना के प्रति' कविता में प्रकृति-निरीक्षण के भाव और कोमल कल्पनाओं के स्वरूप मिलते हैं। 'वासंती', 'तरंगों के प्रति', 'जलद के प्रति', 'वसंत समीर', 'संध्या सुंदरी', 'शरत्पूर्णिमा की बिदाई', 'वनकुसुमों की शय्या', 'प्रभात के प्रति' रचनाएँ कवि की सूक्ष्म कल्पनाओं के रूप हैं। कवि बड़ी गहराई तक जाता है। वह प्राकृतिक वस्तु में एक तत्त्व का खोज करता है। वह कभी प्रकृति-निरीक्षण में लीन हो जाता है, कभी उस अनंत की असीमता पर प्रकृति की रूप-रेखा को निछावर कर देता है। कवि मानवीय जीवन की आंतरिक व्यथा का चित्र बड़ी सफलता से चित्रित करता है। 'कहूँ' और 'विधवा' कविताओं में मानव-जीवन का करुण रुदन है। कवि अनुभूतियों के सहारे और कल्पना की एकाग्रता से सुख-दुख की अभिव्यक्ति करने में सफल हुआ है। कविताएँ लाक्षणिकता के अनुकूल हैं, किंतु कुछ स्थानों पर मुक्त-काव्य का भी आनंद आता है।

'निराला'जी ने जिन रचनाओं से हिंदी के नवीन काव्य-क्षेत्र में उथल-पुथल उत्पन्न की है, वह है उनका मुक्त-काव्य या स्वच्छंद

छंद। आपने 'परिमल' की भूमिका में लिखा है—"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना। जिस प्रकार मुक्त मनुष्य कभी किसी के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम काम औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं—फिर भी स्वतंत्र—इसी तरह कविता का हाल है। मुक्त-काव्य साहित्य के लिये कभी अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।" इसमें संदेह नहीं कि 'निराला'जी स्वतंत्र छंदों की ही कविता लिखकर 'युग-प्रवर्तक' के रूप में देखे गए। हिंदी के लिये इस प्रकार की कविताएँ भिन्न तुकांत से कहीं अधिक स्वतंत्र हुई हैं। इनमें लय और संगीत तो है ही, साथ ही मात्राओं और वर्णों का बंधन भी है। 'निराला'जी की 'अनामिका' में मुक्त छंद का विशेष प्रवाह है। 'जुही की कली' में निम्न पंक्तियाँ देखिए—

> विजन-वन-वल्लरी पर
> सोती थी सुहाग-भरी, स्नेह स्वप्न मग्न
> अमल कोमल तरु तरुणी जुही की कली
> दृग बंद किए—शिथिल—पत्रांक में।

आदि। यह कविता मुक्त-काव्य का उत्कृष्ट नमूना है। कवि के कथनानुसार "हिंदी में मुक्त-काव्य कवित्त छंद की बुनियाद पर सफल हो सकता है।" 'निराला'जी के रचे हुए छंदों में 'बादल राग' काफ़ी प्रसिद्ध है। 'जागरण', 'जागो फिर एक बार' भी सुंदर कविताएँ हैं। कवि की ये रचनाएँ प्राचीन छंदों की दृष्टि से शून्य हैं, किंतु भाव तथा कल्पना की दृष्टि से गूढ़ हैं। इनमें कवि की कल्पना और मौलिकता प्रदर्शित है। यद्यपि रवि बाबू ने भी 'बादल राग'

अभाग है, किंतु हिंदी के लिये तो 'निराला'जी का ही 'बादल राग' एक नई वस्तु है।

इन कविताओं के सिवा कवि ने गीत बड़े सुंदर लिखे हैं। गीत लिखने में कवि ने अनुभूति-पूर्ण सरसता का परिचय दिया है। कहना यह चाहिए कि हिंदी में खड़ीबोली के छोटे, किंतु सुंदर गीतों की सृष्टि 'निराला'जी ने ही की, जिससे गेय काव्य को पुष्टि प्राप्त हुई। 'गीतिका'-नामक पुस्तक आपके गीतों का संग्रह है। इन गीतों में जीवन के छोटे, किंतु कोमल मनोभावों का अच्छा चित्रण मिलता है। गीतों में कहीं परतंत्रता के बंधन से मुक्त होने का स्वर अलापा गया है, तो कहीं जीवन के दावानल का सहन करने का वर माता से माँगा गया है। कहीं अपने जीवन के मरुस्थल में अर्जित हृदय रूपी तरु के लिये स्नेह का भिक्षा माँगी गई है, कहीं सरिता के तट पर शृंगार से ओत प्रोत नवयौवना युग कर-कमल से घट भरकर आती हुई दिखाई गई है। कवि उसे दुःख-श्रम हरने के लिये स्नेह-सलिल पिलाने का उपदेश देता है। 'यामिनी जागी' गीत अनुभूति-पूर्ण मधुर और हृदय को स्पंदित कर देनेवाला है। इसमें पूर्ण रूपक अलंकार का ध्वनि मुखरित हो उठी है—

> (प्रिय) यामिनी जागी,
> अलस पंकज-दृग अरुण मुख,
> तरुण-अनुरागी,
> खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
> पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे।
> बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
> ज्योति की तन्वी,
> तड़ित् द्युति ने क्षमा माँगी।

गीतों में व्यथा है, मार्मिक वेदना है, अनुभूति है, भाव है, अलंकार की सजावट है, संगीत है, और मधुरता है। हमारी समझ में 'निराला'जी के गीतों का स्थान उनकी अन्य कविताओं से अधिक उच्च है। लोक-प्रियता की दृष्टि से भी गीतों की ख्याति है। अनुभूति और अलंकारों के दृष्टिकोण से भी ये उत्तम हैं। देश-प्रेम की भी कुछ रचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार 'निराला'जी की रचनाएँ छंदों के दृष्टिकोण से तो क्रांतिकारिणी हैं ही, काव्य के उपादानों की दृष्टि से भी अभूतपूर्व हैं। कवि कहीं अधिक भावुक हो जाता और कल्पना-लोक में विचरण करने लगता है, और कहीं विवेकी एवं आदर्शवादी बनकर माया, साधना, आराधना तथा जीवन की अनुभूतियों का चित्रण करने लगता है। कहीं विवेक की ग्रंथियों को सुलझाकर गूढ़ तत्वों से युक्त अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाता है। वर्णनात्मक रचनाओं में 'तुलसीदास' 'निराला'जी की अनुपम कृति है। यह एक खंड-काव्य है। तुलसीदास की महत्ता के यह बड़े कायल हैं। संसार में तुलसीदास की समता का कोई अन्य कवि नहीं है। इसी महत्व को स्वीकार करके 'निराला'जी ने यह काव्य लिखा है। सूक्ष्म कल्पना, कला और प्रौढ़ व्यंजना का यह काव्य अन्यतम उदाहरण है।

अब हमें कवि की भाषा-शैली पर एक दृष्टि डालनी चाहिए। पहले ही बताया जा चुका है कि 'निराला'जी पर बंगाली कवियों के विचारों का सुंदर प्रभाव पड़ा है। कवि ने स्वयं लिखा है—"उसके (बँगला) आधुनिक अमर साहित्य का मुझ पर काफ़ी प्रभाव पड़ा है।" इसलिये शैली में कुछ बंगालीपन की छाप अवश्य आ गई है। भाषा की दृष्टि से यह स्पष्ट है कि रचनाओं में संस्कृत-शब्दों का अधिक प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं समास युक्त शब्दों के अत्यधिक प्रयोग से काव्य जटिल-सा हो गया है। यही कारण है कि 'निराला'जी की कविता

मर्मज्ञों को छोड़कर सभी हिंदी-भाषा भाषी नहीं समझ सकते। हाँ, गीतों में अधिक सरलता है। गीत गेय वस्तु हैं। यदि गायक उन्हें ठिकाने से न गा सकेगा, तो गीतों की प्रधान उपयोगिता जाती रहेगी। इसका कवि ने अनुभव किया है। कवि भावना और कल्पना में अधिक बह गया है, किंतु वर्णन-शैली की तारतम्यता नहीं टूटने पाई। संस्कृत के तत्सम-शब्दों का प्रयोग बहुलता से किया गया है। हाँ, उर्दू के कुछ शब्दों के कहीं-कहीं प्रयोग खटकनेवाले हो गए हैं। एक छोटा-सा उदाहरण देखिए—

देख पुष्प द्वार
परिमल-मधु-लुब्ध मधुप करता गुंजार।
आशा की फाँस में,
प्रणय साँस - साँस में,
बहता है भौंरा मधु-मुग्ध,
कहता अति चकित-चित्त-क्षुब्ध—
'सुनो, अहा ! फूल
जब कि यहाँ दम है
फिर, क्या रजोग़म है;
पड़ेगी न धूल
मैं हिला-झुला, झाड़ - पोंछ दूँगा,
बदले में ज्यादा कभी न लूँगा,
बस, मेरा हक़ मुझको दे देना,
अपना जो हो, अपना ले लेना।"
धूल-झड़ाई थी,
वह सब कुछ
जो कुछ कि आज तक की कमाई थी।

यह कविता कितनी सुंदरता के साथ प्रारंभ हुई है। संगीत की

मधुरता भी काफ़ी है। 'जब कि यहाँ दम है, फिर क्या रंजोगम है' में 'रंजोग़म' 'निरालाजी' की वास्तविक शैली में जमता नहीं। 'हक़' ने भाषा को शक में डाल दिया। हो सकता है कि कवि अनुभूति-प्रधान है, इसलिये उसे शब्दों के प्रयोग की परवा न रही हो। वह सर्वत्र स्वाधीनता का अनुभव करता है।

कविता के सिवा 'निराला'जी के 'अलका', 'अप्सरा', 'निरुपमा' 'प्रभावती' उपन्यास और 'लिली', 'सखी' कहानी-संग्रह भी छप गए हैं। गद्य-शैली संस्कृत-मिश्रित है। चरित्र चित्रण की इनमें विशेषता है। भावना की प्रधानता है। 'रवींद्र-कविता-कानन' से लेखक का रवींद्र बाबू की रचनाओं के प्रति अच्छा अध्ययन प्रकट होता है। इनके सिवा कई जीवनियाँ भी लिखी हैं। इनका गद्य ओज-पूर्ण और विचारात्मक होता है। निरालाजी गद्यकार होने के साथ ही-साथ उद्भट समालोचक तथा तार्किक भी हैं। समालोचनात्मक लेख लिखकर आपने अपनी काव्य मर्मज्ञता भी प्रमाणित की है। विवेक-पूर्ण और तार्किक प्रवृत्ति का प्रभाव आपके काव्यों तथा गद्य-साहित्य पर भली भाँति पड़ा है। आपमें भाषण शक्ति सुंदर है, अभिनय में पटु हैं। काव्य-शैली के समान गद्य-शैली में भी एक विशेषता है। वर्तमान काव्य-साहित्य में आप अँगरेज़ी कवि कीट्स और महाकवि केशव की भाँति पांडित्य से युक्त जान पड़ते हैं। आप हिंदी के ज़बरदस्त पक्षपाती हैं। आपकी सुंदर कविताएँ नीचे दी जाती हैं—

गीत

सखि, वसंत आया,
    भरा हर्ष वन के मन,
        नवोत्कर्ष छाया।

किसलय-वसना, नव-वय-लतिका,
मिली मधुर प्रिय उर, तरु-पतिका
मधुप - वृन्द वंदी,
पिक-स्वर नभ सरसाया।
लता-मुकुल - हार - गंध-भार भर
बही पवन बंद मंद - मंदतर,
जागी नयनों में वन-
यौवन की माया।
आवृत सरसी-उर सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण - शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया।

गीत

(प्रिय) यामिनी जागी,
अलस पंकज-दृग, अरुण मुख,
तरुण - अनुरागी,
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ ग्रीवा - बाहु-उर पर तर रहे।
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे।
ज्योति की तन्वी,
तड़ित् - द्युति ने क्षमा माँगी।
हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय-स्नेह की जयमाल;

वासना की मुक्ति मुक्ता,
त्याग में तागी।

स्मृति

जटिल-जीवन-नद में तिर-तिर,
डूब जाती हो तुम चुपचाप;
सतत द्रुत-गति-मयि अयि, फिर-फिर
उभड़ करती हो प्रेमालाप।
सुस मेरे अतीत के गान,
सुना प्रिय, हर लेती हो ध्यान!

सफल जीवन के सब असफल,
कहीं की जीत, कहीं की हार,
जगा देता मधु - गीत सकल,
तुम्हारा ही निर्मम झंकार,
वायु-व्याकुल शतदल-सर हाय,
विकल रह जाता हूँ निरुपाय!

मुग्ध शैशव मृदु-मधुर मलय,
स्नेह कंपित किसलय नव गात,
कुसुम अस्फुट नव नव संचय,
मृदुल वह जीवन कनक - प्रभात
आज निद्रित अतीत में बंद
ताल वह, गति वह, लय वह छंद!

आँसुओं-से कोमल झर - झर
स्वच्छ-निर्झर - जल कण-से प्राण,
सिमट सट - सट अंतर भर-भर
जिसे देते थे जीवन - दान,

वही चुंबन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर,
फली सुख वृतों की कलियाँ,
विटप उर की अवलंबित हार
विजन - मन - मुदित सहेलरियाँ,
स्नेह उपवन की सुख, शृंगार।
आज खुल-खुल गिरतीं असहाय,
विटप वक्षःस्थल से निरुपाय।
मूर्ति वह यौवन की वढ़-बढ़,
एक अश्रुत भाषा की तान,
उमड़ चलती फिर-फिर अड़-अड़,
स्वप्न-सी जड़ नयनों में मान,
मुक्त-कुंतल, मुख व्याकुल लोल,
प्रणय - पीड़ित वे अस्फुट बोल।
तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत,
स्वर्ग आशाओं का अभिराम,
क्लांति की सरल मूर्ति निर्भ्रित,
गरल की अमृत, अमृत की प्राण।
रेणु वह किस दिगंत में लीन,
वेणु - ध्वनि - सी न शरीराधीन।
सरल - शैशव - श्री सुख-यौवन
केलि अलि-कलियों की सुकुमार
अशंकित नयन, अधर - कंपन,
हरित हृत-पल्लव-नव शृंगार,
दिवस-द्युति छवि निरलस अविकार
विश्व की श्वसित छटा-विस्तार

नियति - संध्या में मुँदे सकल
वही दिनमणि के अगणित साज
न हैं वह कुसुम, न वह परिमल,
न हैं वे अधर, न है वह लाज,
तिमिर-ही-तिमिर रहा कर पार
लग्न वक्षस्थलार्गलित द्वार !
उषा-सी क्यों तुम कहो हृदिदल,
सुप्त पलकों पर कोमल हाथ
फेरती हो ईप्सित मंगल
जगा देती हो वही प्रभात
वही सुख, वही भ्रमर - गुंजार
वही मधु - गलित पुष्प-ससार !
जगत - उर की गत अभिलाषा
शिथिल तंत्री की सोई तान,
दूर विस्मृति - सी मृत भाषा
चिता की चिरता का आह्वान
जगाने में है क्या आनद ?
शृंखलित गाने में क्या छंद ?
मुँदी जो छवि चलते दिन की,
शयन-मृदु नयनों में सुकुमार
मलिन जीवन - संध्या जिनकी
हो रही हो विस्मृति में पार,
चित्र वह स्वप्नों में क्यों खींच
सुरा उनमें देती हो सींच ।
छिपी जो छवि छिप जाने दो,
खोलते हुए तुम्हें क्यों चाव !

दुखद वह झलक न आने दो,
हमें खेने भी तो दो नाव?
हुए क्रमशः दुर्बल थे हाथ,
दूसरे और न कोई साथ!
बँधे जीवों की बन माया,
फेरती फिरती हो दिन-रात
दुःख-सुख के स्वर की काया
सुनाती है पूर्व-श्रुत बात,
जीर्ण जीवन का दृढ़ संस्कार
चलाता फिर नूतन संसार।
यही तो है जग का कंपन
अचलता में सुस्पंदित प्राण,
अहंकृति में झंकृति जीवन,
सरल अविराम पतन-उत्थान
दय भय हर्ष क्रोध अभिमान
दुःख-सुख तृष्णा ज्ञानाज्ञान।
रश्मि से दिनकर की सुंदर
अध-वारिद-उर में तुम आप
नलिका से अपना रचकर
खोल देती हो हर्षित चाप,
जगा नव आशा का संसार,
चकित छिप जाती हो उस पार!
पवन में छिपाकर तुम प्रतिपल,
पल्लवों में भी मृदुल हिलोर,
चूम कलियों के मुद्रित दल,
पत्र-छिद्रों में गा निशि-भोर

विश्व के अंतस्तल में चाह,
जगा देती हो तड़ित् प्रवाह ।

बादल राग

ऐ निर्बंध !—
अंध-तम अगम-अनर्गल बादल !
ऐ स्वच्छंद !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा-रहित-विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन घोर गगन के
ऐ सम्राट !
ऐ अटूट पर छूट-टूट पड़नेवाले—उन्माद !
विश्व-विभव को लूट-लूट लड़नेवाले—अपवाद !
श्री बिखेर, मुख फेर कली के निष्ठुर पीड़न !
छिन्न भिन्न-कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन,
वज्र-घोष से ऐ प्रचंड !
आतंक जमानेवाले !
कंपित जंगम-नीड़-विहंगम
ऐ न व्यथा पानेवाले !
नभ के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

* * *

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घन घोर !
राग-अमर ! अंबर में भर निज रोर !

झरझरझर निर्झर-गिरि-सर में,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित्-तड़ित-गति—चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में
आनन-आनन में रव-घोर-कठोर—
राग-अमर अंबर में भर निज रोर।
अरे वर्ष के हर्ष,
बरस तू बरस-बरस रस-धार।
पार ले चल तू मुझको
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव-संसार !

उथल-पुथल हृदय
मचा हलचल—
चल रे चल,—
मेरे पागल बादल !
धँसता दल-दल
हँसता है नद खल्-खल्,
बहता, कहता कुल-कुल कल-कल-कल-कल
देख-देख नाचता हृदय,
बहने को महा विकल—बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से—
मुझे—गगन का दिखा सघन वह छोर !
राग-अमर ! अंबर में भर निज रोर !

३—सुमित्रानंदन पंत

[पंडित सुमित्रानंदन पंत का जन्म संवत् १९५८ विक्रमीय में, ज़िला अल्मोड़ा के कौसानी नामक स्थान में, हुआ। कौसानी अल्मोड़ा से उत्तर की ओर २५ मील की दूरी पर एक रमणीक, प्रकृति-सौंदर्य-पूर्ण और पर्वतीय स्थान है। आपके पिता का नाम प० गंगादत्त पंत और माता का श्रीमती सरस्वतीदेवी था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा कौसानी की पाठशाला में, बाद को गवर्नमेंट हाईस्कूल में, हुई। यहाँ आपने नवीं कक्षा तक पढ़ा। सन् १९१७ ई० में आपने काशी के जयनारायण हाईस्कूल से इन्ट्रेंस पास किया। सन् १९१९ ई० में प्रयाग आए, और म्योर सेंट्रल कॉलेज में पढ़ने के लिये भर्ती हुए। पंतजी प्रारंभ ही से अपने शिक्षकों के बड़े प्रिय रहे हैं, और साहित्यिक रुचि भी विद्यार्थी-अवस्था से ही रही है। इसीलिये कॉलेज में पढ़ते समय अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर पं० शिवाधार पांडेय का, जो हिंदी के पुराने लेखक तथा काव्य-मर्मज्ञ हैं, ध्यान इनकी ओर विशेष आकर्षित हुआ। पांडेयजी ने अंगरेज़ी कवियों की रचनाएँ पढ़ने में इन्हें विशेष सहायता दी। उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबंधों, 'भास' आदि के नाटकों तथा तुलनात्मक आलोचना का अध्ययन पांडेयजी ने इन्हे विशेष रूप से कराया। निरंतर अध्ययन से पंतजी की रुचि साहित्य और काव्य-रचना की ओर परिष्कृत रूप में अग्रसर हुई। सन् १९२२ ई० में इन्हें अपना कॉलेज-जीवन समाप्त कर देना पड़ा। इसके बाद यह कविता लिखने में विशेष समय देने लगे।

पंतजी का अध्ययन काफ़ी है। अँगरेज़ी तथा विदेशी साहित्यकार

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीपं० सुमित्रानंदन पंत

के काव्यों, श्रेष्ठ साहित्यिक ग्रंथों और संस्कृत के काव्यों का मनन भी किया है। उपनिषद्, दर्शन तथा आध्यात्मिक साहित्य की ओर भी आपकी रुचि रही है। बँगला-भाषा—विशेषकर रवि बाबू के ग्रंथों—को भी पढ़ा है। पर्वतीय होने के कारण भावुकता और कोमलता आपमें विशेष है। सौंदर्य के उपासक और अप-टू-डेट व्यक्ति हैं। 'उच्छ्वास', 'पल्लव', 'वीणा', 'ग्रंथि', 'गुंजन', 'ज्योत्स्ना', 'पाँच कहानियाँ' और 'युगांत' आपके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनके सिवा 'परी', 'क्रीड़ा', 'रानी' नाम के नाटक और 'हार'-नामक उपन्यास भी लिखा है, जो अभी अप्रकाशित है। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद भी आपने किया है।]

श्रीसुमित्रानंदन पंत वर्तमान हिंदी के उत्कृष्ट कल्पना और सुकुमार भावना-प्रधान कवि हैं। जो कविता छायावाद के नाम से प्रचलित हुई, उसे पंतजी की रचनाओं द्वारा नव-जीवन प्राप्त हुआ, और उसकी प्रगति में बड़ी उन्नति हुई। हिंदी में छायावादी कविताओं का प्रारंभ प्रायः कवींद्र रवींद्र की कविताओं के प्रभाव से हुआ है। किंतु अँगरेज़ी-शिक्षा प्राप्त युवकों में अँगरेज़ी के प्रगतिशील काव्य-ग्रंथों के अनुशीलन का भी प्रभाव पड़ा। पंतजी काव्य-क्षेत्र में अभिनव संदेश लेकर आए। उनकी वाणी में पाश्चात्त्य काव्य के सौंदर्य की आभा भी दिखाई पड़ी। वह पश्चिमीय साहित्य-सेवियों की रचनाओं से प्रभावित हुए, साथ-ही-साथ रवींद्र बाबू की छायावादी कविताओं से भी। इसी कारण इनकी कविताएँ विशेष आकर्षक दृष्टिगोचर हुईं। पंतजी सौंदर्य-प्रेमी हैं। वह प्रत्येक वस्तु में सौंदर्य की खोज करते हैं। कविता का सौंदर्य भाव और कल्पना है। इनकी कविता में यह सौंदर्य प्रतिबिंबित होता है। पंतजी पर्वतीय हैं, इसलिये प्रकृति की रमणीयता और सौंदर्य के अत्यंत प्रेमी एवं अनुभवी हैं।

काव्य के सौंदर्य में कोमल भावना, पद-लालित्य और ऊँची कल्पना चमत्कार उत्पन्न करती है। कवि सबसे पहले अपनी 'उच्छ्वास' के द्वारा हिंदी-संसार में आविर्भूत हुआ। यही इनकी प्रथम कृति है। करुण-रस युक्त यह वेदना-पूर्ण, छोटा, किंतु अत्यंत सरस और कोमल कल्पना-प्रधान काव्य है। अँगरेज़ी-साहित्य के मर्मज्ञ पं० शिवाधार पांडेय पर इनकी नवीन शैली के काव्य का अधिक प्रभाव पड़ा, और उन्होंने इसका मार्मिक विवेचन 'सरस्वती' में किया। पंतजी की ख्याति का प्रारंभ इसी लेख से होता है।

पंतजी ने स्कूल में पढ़ते समय ही स्फुट रचनाएँ लिखनी प्रारंभ कर दी थीं। उस समय की रचनाएँ 'वीणा'-नामक पुस्तक में संगृहीत हैं। इन कविताओं में कोमल कल्पना की उतनी उड़ान नहीं है, क्योंकि ये प्रारंभिक रचनाएँ थीं। कवि की वाणी और विचारों में उस समय तक प्रौढ़त्व नहीं उत्पन्न हुआ था। हाँ, 'बंधन-विहीन छंद-रचना की ओर उनका ध्यान आकर्षित हो गया था। मधुर भावों की प्रधानता 'वीणा' की कविताओं की विशेषता है। इसके बाद ही कवि ने 'ग्रंथि'-नामक करुण-रस-प्रधान खंड काव्य लिखा। यह अतुकांत छंदों में है। दुःखांत और करुणा से युक्त चित्रण किसी खंड काव्य में—नवीन काव्यकारों द्वारा रचित—नहीं पाया जाता। कहानी की कल्पना भी कवि के बौद्धिक चमत्कार को प्रदर्शित करती है। इसमें संस्कृत की सुंदर शब्द-योजना और भावना का चमत्कार है। खड़ीबोली में जितने खंड काव्य प्रकाशित हुए हैं, भाव और कल्पना के दृष्टिकोण से 'ग्रंथि' उत्तम है। विदेशी साहित्य के निरंतर अध्ययन से पंतजी की काव्य-रचना-शैली विशेष गंभीर और कल्पना-प्रधान हो गई। 'पल्लव' की रचनाओं में उत्कृष्ट गंभीरता और ऊँची कल्पना है। यह हिंदी के काव्यों में अपना अलग स्थान रखता है। 'पल्लव' में 'बादल', 'छाया', 'वीचि-

विन्यास', 'विश्व-छवि', 'नारी-रूप', 'विश्व-वेणु', 'जीवन-यान' आदि उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। उत्कृष्ट शैली का निखरा रूप इन कविताओं में मिलता है। 'मौन निमंत्रण' और 'नक्षत्र' कविताएँ भी इसी कोटि की हैं। कवि ने कल्पना का, प्रकृति-निरीक्षण की अलौकिक प्रतिभा का चमत्कार इन रचनाओं में दिखलाया है। 'अनंग', 'शिशु' और 'परिवर्तन' कविताएँ दार्शनिक हैं। इन कविताओं के पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि कवि में ज़बरदस्त अनुभूति है। स्वामी रामतीर्थ और स्वामी विवेकानंद के दर्शनवाद का आभास इन रचनाओं में पाया जाता है। कहना यह चाहिए कि 'पल्लव' में पश्चिमीय और भारतीय दर्शन तथा वेदांत के उत्कृष्ट भावों का सुंदर सामंजस्य हुआ है। इसी काव्य से पंतजी ने हिंदी-कवियों में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया है। 'पल्लव' की भूमिका उत्कृष्ट गद्य-साहित्य का उदाहरण है। कवि ने काव्यात्मक और सुसंस्कृत ढंग से, धारा-प्रवाह भाषा में, काव्य में नवीन परिवर्तन की आवश्यकता बतलाई है। पं० केशवप्रसाद मिश्र का कथन 'इतना उत्कृष्ट गद्य बहुत कम लेखकों का पाया जाता है' एक प्रकार से ठीक ही है। 'पल्लव' में सुकुमार शब्द-चयन, कल्पना की उत्कृष्ट उड़ान, प्रवाह, सौंदर्य, अनुभूति का सुंदर सामंजस्य है। प्रसिद्ध समालोचक और काव्य-मर्मज्ञ रायबहादुर प० शुकदेवविहारी मिश्र का यह कथन कि ऐसा काव्य हिंदी-साहित्य में शीघ्र प्रकाशित न होगा, ठीक ही है। कवि के काव्य की यह प्रथम गति है।

इस प्रकार 'पल्लव' में कवि को कल्पना के क्षेत्र में विहार करते हुए हम पाते हैं। किंतु अपनी दूसरी पुस्तक 'गुंजन' में वह मानवता और जीवन के संपर्क में आ गया है। इन रचनाओं से कवि के हृदय की एक सुंदर आभा का दर्शन होता है। जहाँ कवि पहले प्रकृति-निरीक्षक और प्रकृति-पुजारी के रूप में दिखलाई पड़ता है,

यहाँ 'गुंजन' में ऐसा जान पड़ता है कि उसे मानवीय जीवन के सुख-दुख, निराशा और वेदना से पूरी सहानुभूति है, और केवल कल्पना-जगत् का ही प्राणी नहीं, वरन् सुख-दुख के बीच में भी विचरण करनेवाला है। जीवन की लहरों में वह प्रवाहित हुआ है, और उसे अनुभूति प्राप्त हुई। इस दृष्टि से यदि हम 'गुंजन' को 'जीवन-काव्य' कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। जीवन स्वयं एक काव्य है। इसी जीवन-काव्य को कवि ने अपनी सुकुमार भावना और लालित्य द्वारा अपनाया है। कवि को जीव-मात्र से सहानुभूति है। वह उनके सुख-दुख का अनुभव करता है। जीवन के सुख-दुख को उसने बड़ी मार्मिकता से चित्रित किया है। वह प्रकृति के अणु-अणु में जीवन देखता है, और नव-जीवन की कल्पना करता है। उसे चारों ओर जीवन व्याप्त दिखाई देता है। दुख में, सुख में, निराशा में, संघर्ष में, अतृप्ति में, क्षण-क्षण में 'जीवन' की कल्पना करता है। जीवन में सुख-दुख दोनो आते हैं। उसे दोनो से सहानुभूति है। 'गुंजन' कवि के कथनानुसार 'यह मेरे प्राणों का उन्मन गुंजन-मात्र है।' 'पल्लव' और 'ग्रंथि' के कल्पना-प्रधान कवि को मानवता के सुख-दुख की अनुभूति हुई है। उसकी काव्य-धारा की यह दूसरी गति है। वह सभी ओर 'उन्मन' मन से 'जीवन' का अन्वेषण करता है। इसी 'जीवन' में कवि को स्वर्ग का अनुभव होता है। दुख को वह सुख का आधार समझता है। इसीलिये वह बार-बार 'तप रे मधुर-मधुर मन' कहता है। इस प्रकार कवि 'गुंजन' द्वारा एक नई दिशा की ओर अग्रसर हुआ है, और वह दिशा है सुख-दुख की वास्तविक अनुभूति।

पंतजी की रचनाओं पर जब हम एक विहग-दृष्टि डालते हैं, तो उसे कई रूपों में पाते हैं। काव्य-कला की दृष्टि से 'पल्लव' प्रधान है। हमारा ऐसा विचार है कि रवि बाबू 'गीतांजलि' के बाद कोई

ऐसा ग्रंथ नहीं लिख सके, जो उसकी टक्कर का हो। इसी प्रकार पंतजी ने 'पल्लव' के बाद जिन ग्रंथों की रचनाएँ कीं, उनमें विशेषताएँ तो अवश्य हैं, किंतु काव्योत्कर्ष के अनुरूप 'पल्लव' की समता के वे नहीं हैं। 'वीणा' और 'ग्रंथि' तो प्रारंभिक रचनाएँ हैं। हाँ, 'गुंजन' में विशेषता है अनुभूति की। कल्पना और अनुभूति के दो प्रधान काव्य 'पल्लव' और 'गुंजन' हैं। 'गुंजन' में एक विशेषता मंगल की भी है।

'युगांत' कवि की अन्यतम रचना है। इसमें कवि के काव्य की गति परिवर्तित हो गई है। कवि स्वयं लिखता है—"'युगांत' में 'पल्लव' की कोमल-कांत कला का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में मैं उसे 'ग्राम्या' में प्राण एवं प्रदान कर सकूँगा।" इसमें कवि की तैंतीस कविताएँ संगृहीत हैं। रचनाएँ छोटी, सरस और गतिमान् हैं। इसमें प्रकृति-निरीक्षण के सूक्ष्म भावों और अनुभूतियों का सुंदर दर्शन होता है। पुस्तक का नाम 'युगांत' है। हमारा ख्याल है कि कवि ने बहुत विचार-पूर्वक पुस्तक का नामकरण किया है। 'पल्लव' की रचनाओं से कहीं अधिक स्पष्टता 'युगांत' में प्राप्त होती है। अनुभूतियों और कोमल भावनाओं तक पाठक पहुँचकर आनंद का अनुभव करता है। भाषा-शैली कठोरता की ओर अग्रसर हुई है। पंतजी की काव्य-शैली में यह नई बात है। प्रकृति-प्रेमी कवि ने छोटे और सरल छंदों में प्रकृति-सौंदर्य को सुंदरता से अंकित किया है। उसकी दृष्टि नवीनता की ओर एक नए संदेश के साथ पड़ी है। प्राचीनता के विरुद्ध विचार-शक्ति में 'जिहाद' बोल दिया है। इसीलिये इसका 'युगांत' नाम सार्थक है। 'युगांत' की कुछ रचनाएँ साम्यवादी विचारों के जीते-जागते नमूने हैं। कवि सम-भावना का साम्राज्य चाहता है।

अब कवि की रचनाओं की बानगी देखिए। 'वीणा' में कवि की अर्द्ध-स्फुटित रचनाएँ संगृहीत हैं, किंतु नवीनता का वह ज़बरदस्त पक्षपाती हो गया है। 'वीणा' की भूमिका से यह प्रकट हो जाता है। 'वीणा' की भूमिका व्यंग्यात्मक है, और उससे कवि का स्वाभिमान और आत्मगौरव प्रकट होता है। इसीलिये शायद उसे अपनी एक रचना को रवींद्र की रचना से श्रेष्ठ भी कह डालना पड़ा है। इन कविताओं की भाषा यद्यपि अपरिपक्व है, किंतु यह स्पष्ट प्रकट होता है कि कवि में अनुभूति और कल्पना की कितनी शक्तिशालिनी प्रतिभा है। इन्हीं की प्रौढ़ता 'पल्लव' और 'गुंजन' में दिखलाई पड़ती है। 'वीणा' की कविताएँ मिश्रित भाषा में हैं, तथा छोटी और सुंदर हैं। वह उस अगोचर की प्रार्थना करता है—

अब न अगोचर रहो सुजान!
निशानाथ के प्रियवर सहचर!
अंधकार, स्वप्नों के यान!
किसके पद की छाया हो तुम?
किसका करते हो अभिमान?
तुम अदृश्य हो, दृग-अगम्य हो,
किसे छिपाए हो छविमान!
मेरे स्वागत-भरे हृदय में
प्रियतम! आओ, पाओ स्थान!

कवि धनिक को संबोधित करके कहता है कि भिखारी तुम्हारे दरवाज़े पर भिक्षा माँगने आया है। वह सोना-चाँदी का भिखारी नहीं है। थाली-भर मुक्ता उसे नहीं चाहिए। वह तो केवल इसलिये आया है कि तुमने उसे अपना लिया है इसलिये प्रेम-सहित तुम जो दोगे, उसी से वह अपने को कृतार्थ समझेगा। इस कविता में

कवि का संकेत धनिक से है। धनिक कौन है? सांसारिक धनिक नहीं, वरन् वह धनिक, जो सांसारिकता से दूर है—

धनिक! तुम्हारे यहाँ भिक्षा लेने आया है।
नहीं इसलिये, तुम थाली-भर मणि-मुक्ता दोगे सुंदर,
किंतु इसलिये आया है प्रिय! वह तुमने अपनाया है;
स्नेह - सहित तुम जो कुछ दोगे, वह कृतार्थ होगा सत्वर।

इसमें कुछ रचनाएँ—जैसे 'मिले तुम राका-पति में आज', 'बना और भी तो अंतर' और 'तुहिन बिंदु बनकर सुंदर' आदि—रहस्य से पूर्ण हैं। इनमें अनुभूति का प्रधानता है, प्रेम का संबोधन है, जिसका निखरा रूप हमें 'गुंजन' में मिलता है। 'वीणा' में कुछ कल्पना-प्रधान रचनाएँ भी हैं। कुछ में प्रकृति-निरीक्षण का चमत्कार भी मिलता है, जिसका निखरा और गंभीर रूप हमें 'पल्लव' में प्राप्त होता है। 'वीणा' की कल्पना-प्रधान कविताओं में 'कौन-कौन तुम परहित-वसना, 'बाल-काल में मिले जलद से', 'मरु भी होगा नंदनवन' और 'प्रथम रश्मि का आना रंगिनि' मुख्य है। इनमें 'प्रथम रश्मि का आना रंगिनि' कविता सर्वोत्तम है।

प्रातःकाल का समय है। पक्षियों का कलरव हो रहा है, इसी को सुनकर कवि ने कल्पना की है—

प्रथम रश्मि का आना रंगिनि,
तूने कैसे पहचाना,
कहाँ-कहाँ हे बाल-विहगिनि,
पाया तूने यह गाना।
शशि-किरणों से उतर-उतरकर
भू पर काम रूप नभचर,

चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना ।
तूने ही पहले बहुदर्शिनि
गाया जागृति का गाना,
श्री-सुख-सौरभ का नभचारिणि,
गूँथ दिया ताना - बाना ।
खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि,
खिली सुरभि, डोले मधु बाल,
स्पंदन, कंपन औ' नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना ।

'इस पीपल के तरु के नीचे', 'निर्झर की अजस्र झरझर', 'विलोकित सघन गगन में आज', 'अपनेहि पुग लोके', 'नीरव व्योम विश्व नीरव', 'सखी ! सखी वृंदावन' और 'गहन कानन' कविताओं में कवि ने प्रकृति-सौंदर्य का सुंदर भाव अंकित किया है—

विलोकित सघन गगन में आज
विचर रहा है दुर्बल-घन भी
धरकर भीमाकार,
बना है कहीं क्रुद्ध गजराज ।
गर्जन सुनकर काँप रहा है
मा ! कर्तव्य अपार,
चपल करती है पल-पल गाज !

आरंभिक रचना होने के कारण इसमें बाल-सुलभ चांचल्य भी कुछ पंक्तियों से प्रकट होता है । कवि ने विद्यार्थी-अवस्था में होस्टल के जिस रूम में रहता था, उसका भी ज़िक्र किया है—

इस विस्तृत हौस्टेल में
मैं सुनती हूँ
मेरा भी है सखि, छोटा-सा रूम!
जहाँ मेरी आकांक्षा - सूम!
गूँजती है प्रतिपल को तूम!

स्वामी विवेकानंद एक बार अल्मोड़ा में आए थे। कवि ने स्वागत भावना को, जो बाल-स्वभाव सुलभ है, निम्न-लिखित पंक्तियों में अंकित किया है –

मा! अलमोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानंद।

कवि ने मा से बड़े मार्मिक प्रश्न किए हैं। वह कहता है कि स्वामी विवेकानंद स्वयं प्रभावान् हैं, तो उनके स्वागत के लिये दीपावलियों की क्या आवश्यकता? जब उन्होंने कंटक-मय जंगलों को पार किया है, तो उनके आने के मार्ग में मखमल क्यों बिछाया गया है? इस प्रकार की भावना बाल्यकाल में उठना इस बात को प्रकट करती है कि कवि प्रारंभ ही से कितना भावुक था, और कवि-प्रतिभा उसमें कितनी थी? लोकमान्य तिलक के स्वर्गवास पर और प्रेम-पंथ सुंदर पंक्तियाँ भी 'वीणा' में हैं। 'स्नेह चाहिए सत्य सरल' आदि कविताओं में प्रेम का सुंदर विश्लेषण किया गया है। सांसारिकता की सुंदर पुट स्थान-स्थान पर मिलती है। कवि की ये ही भावनाएँ 'गुंजन' में विशेष रूप से चमत्कार और अनुभूति के साथ प्रकट हुई हैं। इसलिये 'वीणा' की रचनाओं से यह प्रकट होता है कि कवि की प्रतिभा चतुर्मुखी है, किंतु इनमें वह अपनी प्रतिभा का प्रौढ़ तथा गंभीर परिचय नहीं दे सका। यह स्वाभाविक है।

'ग्रंथि' भी कवि की दुःखांत वर्णनात्मक शैली की सुंदर

रचना है । इससे उसके हृदय की कोमलता, सुकुमारता और आंतरिक अनुभूतियों का पता चलता है ।

'पल्लव' कवि की उत्कृष्ट काव्य-रचना है । इसमें कल्पना का मौलिक रूप प्रदर्शित हुआ है । प्रकृति-निरीक्षण, रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा-अलंकारों का सुंदर और अद्भुत रूप प्राप्त होता है । इसमें कल्पना की उड़ान सूक्ष्म-से सूक्ष्म रूपों में दृष्टिगोचर हुई है । 'अनंग', 'छाया', 'परिवर्तन' और 'उच्छ्वास' रचनाएँ कोमल और कल्पना-प्रधान हैं । प्रारंभ में कवि ने खड़ीबोली की महत्ता स्वीकार करते हुए कबीर के 'अनहद नाद', मीरा के 'पिय मिलन' और वैष्णव-कवियों के भक्ति-वर्णन की प्रशंसा करते हुए रहस्यवादी रचनाओं पर अपना निर्भीक मत प्रकाशित किया है । छंद, अलंकार, भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है, और अंत में काव्य का वास्तविक तत्त्व—"कविता विश्व का अंतरतम संगीत है । उसके आनंद का रोमहास है । उसमें हमारी सूक्ष्मतर दृष्टि का मर्म प्रकाश है"—बतलाया है । 'पल्लव' की कविताओं से उसकी 'सूक्ष्म दृष्टि' का अधिक ज्ञान होता है । इन कविताओं में, भावों का अंतरस्थ हृदय-स्पंदन अधिक गंभीर, प्रस्फुटित तथा परिपक्व है । संगीत का प्रभाव प्रायः सभी कविताओं में पड़ा है । लक्षण-ग्रंथों के अनुरूप छंदों की रचनाएँ की गई हैं, साथ ही मुक्त छंद भी प्रयुक्त किए गए हैं ।

'उच्छ्वास' की भावना और कल्पना मार्मिक, कोमल और हृदय पर प्रभाव डालनेवाली है । हृदय की अनुभूति की यह सफल कृति है । बालिका के प्रति कवि की यह उक्ति कितनी मधुर और अनुभूति-पूर्ण है—

तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा - स्नान ।

तुम्हारी वाणी मे कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान।

'बादल' रचना प्रकृति-निरीक्षण की कल्पना का अन्यतम रूप है। 'मौन निमंत्रण' कविता में हमारे पूर्व-गौरव का आदि सगात है। मूक वाणी का यह निमंत्रण कवि की भावना और अनुभूति का सृजन है, रहस्यवाद का सुंदर संदेश है। 'छाया' कविता की कल्पना का एकीकरण अनुपमेय है—

अहो, कौन हो दमयती - सी
तुम तरु के नीचे सोई ;
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई।

आदि। इसी प्रकार की अनेक सुंदर कल्पनाओं की यह रचना आगार बन गई है। 'सो-सी' की ध्वनि प्रत्येक पंक्ति में ध्वनित हो उठी है। 'पल्लव' में सबसे सुंदर रचना 'परिवर्तन' है। इसमें काव्य का सुंदर चमत्कार प्रकाशित हुआ है। संसार की सुंदर रचनाओं के समकक्ष इसे निःसंकोच रक्खा जा सकता है। केवल शैली का ही चमत्कार नहीं, वरन् भावों, विचारों, कल्पनाओं में भी गूढ़ता और मनोवैज्ञानिकता है। 'बालापन' और 'नारी रूप' रचनाएँ अपनी विशेषता रखती हैं। 'वसंतश्री', 'विश्व व्याप्ति', 'विश्व-छवि', 'नक्षत्र', 'निर्झर गान', 'विश्व-वेणु', वीचि-विलास', 'अनंग' और 'शिशु' कविताओं में मार्मिकता है। कवि ने प्रत्येक वस्तु को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया है, उसके मर्म को अंकित किया है, तथा हृदय की गूढ़तम भावनाएँ अंकित करने में अपने विस्तृत ज्ञान का परिचय दिया है। 'पल्लव' में कल्पना अधिक है, भावना कम। प्रकृतिवाद अधिक है, छायावाद कम। इसी से उसकी उत्कृष्टता सिद्ध है। इस ग्रंथ की कविताओं से कवि के विभिन्न

दृष्टिकोणों के अध्ययन का ज्ञान होता है, और प्राकृतिक मानवीय सौंदर्य की कितनी अनुभूति-पूर्ण वह कल्पना कर सकता है, इसका पता चलता है।

कवि ने 'गुंजन' में अपनी अनुभूति का सुंदर परिचय दिया है। सुख-दुख का सुंदर चित्रण है। काव्य जीवनमय है, उसमें जीवन, पीड़ा, विरह, मिलन का अपूर्व सामञ्जस्य है। दार्शनिक विचार-धारा का प्रवाह अधिकता से हुआ है। कहा जाता है कि कवि को तर्क की आवश्यकता नहीं है, किंतु कवि ने अपने दार्शनिक तर्क को सुंदर रूप में प्रतिपादित किया है। मनुष्य-मात्र में सुख-दुख और प्रेम का जो उत्पीड़न है, उसे कवि जीवन और जागृति का चिह्न समझता है। वह न सुख अधिक चाहता है और न दुख ही, वरन् मध्य-मार्ग ग्रहण करता है। सुख-दुख को वह अस्थिर समझता है। जीवन को वह नित्य और चिरंतन समझता है। मिथ्या, सत्य, इच्छा, साधन, विश्वास, प्रसन्नता और अभाव के तत्त्व को दार्शनिक रूप दिया है। सुख-दुख के दार्शनिक तत्त्व को कवि क्यों समझता है—

सुख-दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि, फिर शशि से ओझल हो घन।
जग पीड़ित है अति दुख से, जग पीड़ित रे अति सुख से;
मानव-जग में बँट जावे दुख सुख से औ' सुख-दुख से।
अविरत दुख है उत्पीड़न, अविरत सुख भी उत्पीड़न;
सुख-दुख की निशा-दिवा में सोता-जगता जगजीवन।

कवि सुख-दुख के मधुर मिलन का वसंत चाहता है। जहाँ अधिक दुख है, वहाँ बाह्य पीड़ा का प्रत्यक्ष अनुभव होता है, किंतु जहाँ सुख है, वहाँ भी आंतरिक पीड़ा का अनुभव होता है। इसलिये वह समता की स्थापना के लिये मानव जगत् में सुख-दुख बाँट देना

चाहता है। कितनी साम्य भावना है। कवि का कथन है कि सुख और दुख दोनों ही पीड़ा-युक्त हैं, किंतु जीवन दोनों में है। दुख में भी जीवन है, और सुख में भी। इसलिये जीवन ही कल्याणप्रद है। कवि की भावना का यह मार्मिक चित्रण है। वह अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति का सुंदर निदर्शन कराने में काफ़ी सफल हुआ है। कवि प्रकृति की भाँति सांसारिकों को भी बनाना चाहता है। वह चाहता है, मानव प्रकृति से सहयोग करें। तब वे अपने जीवन के विवेक को भली भाँति समझ सकते हैं, इसी-लिये यह कहता है—

वन की सूनी डाली पर सीखा कलि ने मुसकाना ;
मैं सीख न पाया अब तक सुख से दुख को अपनाना।

वास्तविक बात है भी यही। जो सुखी रहकर भी दुख को गले लगा ले, वही जीवन जीवन है। दुख के बाद सुख को अपनाने में वह महत्त्व नहीं है, जो सुख के बाद दुख के अपनाने में होता है। 'साधन' पर कवि ने अधिक ज़ोर दिया है। संसार का जीवन इच्छा है, किंतु आत्मा का साधना है। जीवन की इच्छा छल है, किंतु इच्छा का जीवन जीवन है—

इच्छा है जग का जीवन, पर साधन आत्मा का धन ;
जीवन की इच्छा है छल, इच्छा का जीवन जीवन।

किंतु अर्ध-इच्छाएँ या अधिक इच्छाएँ साधन की बाधक हैं। साधन स्वयं इच्छा है, और समभाव की इच्छा ही साधन है।

ये आधी, अति इच्छाएँ साधन में बाधा बंधन ;
साधन भी इच्छा ही है, सम इच्छा ही रे साधन।

कभी-कभी मिथ्या की पीड़ा से मन दुखी होता है, किंतु मिथ्या स्वयं मिथ्या का मिथ्यापन प्रकट कर देती है—

रह-रह मिथ्या पीड़ा से दुखता-दुखता मेरा मन;
मिथ्या ही बतला देती मिथ्या का रे मिथ्यापन।

कवि को जग-जीवन में उल्लास मिलता है, नवीन आशाएँ हैं नई अभिलाषाएँ हैं, और ईश्वर पर सदा विश्वास है। कवि प्रसन्नता को परम सुख समझता है। वह अपने हृदय के सौरभ (हँसी) से संसार का आँगन भरने की कामना करता है—

हँसमुख प्रसून सिखलाते, पल-भर है जो हँस पाओ;
अपने उर के सौरभ से जग का आँगन भर जाओ।

'गुंजन' में सुकुमार, सुंदर भावनाओं का सुंदर चित्रण है। सांसारिक दर्शन का अपूर्व चित्रांकण है, जो मानव-जगत् की सहानुभूति का केंद्र है। 'अप्सरा', 'चाँदनी', 'एकतारा', 'नौका-विहार' और 'भावी पत्नी के प्रति' कविताएँ बड़ी और भाव-प्रधान हैं। रचनाएँ हृदय के उस विकसित स्वरूप को प्रदर्शित करती हैं, जो मानवीय जगत् की आकांक्षाओं का केंद्र है। इन कविताओं में कवि ने अपनी सुंदर अनुभूति का प्रदर्शन किया है। कवि का हृदय संसार के प्रति सहानुभूति का केंद्रस्थल है, वही भावना 'गुंजन' से प्रकट होती है। कविताएँ प्रायः संगीत-मय हैं, इसमें भावना सरस, सुंदर और अलंकृत हो गई है।

कवि ने 'उच्छ्वास' और 'आँसू' दो कविताएँ निराशा और वेदना-पूर्ण लिखी है। इनमें आंतरिक मनोव्यथा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'उच्छ्वास' में कवि ने पर्वतीय दृश्यों का सुंदरता से चित्रण किया है। 'बालिका' के दर्शन से ही कवि की अनुभूति जाग्रत् हो उठी है—

बालिका ही थी वह भी
सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,

उसके उस सरलपने से मैने था हृदय सजाया ;
नित मधुर-मधुर गीतों से उसका उर था उकसाया।

'आँसू' की निम्न-लिखित पंक्तियों में अनुभूति की सुंदर अभिव्यक्ति है—

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा ज्ञान ;
उमड़कर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।

'युगांत' की एक प्रार्थना है। कवि क्रांतिदर्शी है। वह चाहता है—

जग-जीवन मे जो चिर महान, सौंदर्य-पूर्ण औ' सत्यमान ;
मैं उसका प्रेमी बनूँ नाथ, जिसमें मानव-हित हो समान।
जिससे जीवन में मिले शक्ति, छूटें भय संशय अंध-भक्ति ;
मैं वह प्रकाश बन सकूँ नाथ, मिल जावें जिसमें अखिल व्यक्ति।

'साम्यवाद' और 'विश्व-बंधुत्व' का उक्त पंक्तियों में संदेश है। वह उसका प्रेमी बनना चाहता है, जिसमें मानव का हित समान हो। वह उस शक्ति का आह्वान करता है, जिससे अंधभक्ति छूट जाय।

'मानव', 'बापू के प्रति' कविताएँ भी सजीव हैं। वह जग में 'प्रभात' लाना चाहता है। मनुष्य-मात्र में 'नवजीवन'-संचार चाहता है—

गा सके खगों - सा मेरा कवि,
विश्री जग की सध्या की छवि,
गा सके खगों - सा मेरा कवि,
फिर हो प्रभात—फिर आवे रवि।

'युगांत' की प्रथम रचना 'युगांत' का संदेश देनेवाली है। वह 'अमर प्रणय-स्वर मदिरा' से 'नवयुग की प्याली' को भरना चाहता है।

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र,
हे ध्वस्त, व्यस्त! हे शुष्क, क्षीण!

हिम - ताप - पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग जड़ पुराचीन।

'छाया', 'शुक्र', 'खद्योत', 'सृष्टि', 'तितली', 'संध्या' रचनाएँ प्रकृति-निरीक्षण की बारीकियों को प्रकट करती हैं। कवि जीवन के प्रत्येक क्षण में, प्रकृति में, कार्य-कलाप में युगांतर चाहता है।

नव हे, नव हे
नव-नव सुषमा से मंडित हो
चिर पुराण भव हे
नव हे!
अपनी इच्छा से निर्मित जग,
कल्पित सुख दुख के अस्थिर पग,
मेरे जीवन से हो जीवित
यह जग का शव हे
नव हे!

पंतजी का 'ज्योत्स्ना' नाटक कल्पना-प्रधान है। दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत। यह नाटिका गंभीर विचारों को प्रदर्शित करती है। इसमें जीवन के अनेक प्रश्नों पर कवि ने गंभीरता-पूर्वक विचार किया है। इसके गीत भावपूर्ण, मधुर और संगीत-साधना के अनुकूल हैं। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटिका सफल है। कवि के 'गीतों' का सृजन बड़ा आकर्षक है। पंतजी संगीतज्ञ हैं, उनकी कविताएँ संगीत से अधिक प्रभावित हैं। गीतों में मधुरता का सुंदर प्रवाह है—

पलकन पग चूमूँ आज पिया के
रूप राशि की सेज बिछाऊँ,
प्रेम - दुकूल उढ़ाऊँ पिया के। पलकन०
फूलन के तन सों भुज भर दूँ
मैं अपने बालम रसिया के। पलकन०

कवि ने अपने गीतों में सरसता की सुंदर धारा बहाई है। इस प्रकार पंतजी ने अपने काव्य के द्वारा हिंदी की वर्तमान कविता को उच्च श्रेणी पर पहुँचाया है। कविता में जो गंभीरता, सरसता, उच्च भावनाएँ और कल्पनाएँ पाई जाती हैं, उनमें मौलिकता है। पंतजी ने अपने जीवन में मनन अधिक किया है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण उनकी कविताओं से मिलता है।

कवि का भाषा पर अच्छा अधिकार है। उसका गद्य संस्कृत-मिश्रित और आलंकारिक होता है। कविताओं में उन्होंने अनेक नए शब्दों को गढ़ा है। समासांत पदों के प्रयोग में वह अत्यंत पटु हैं। कई शब्द पुंलिंग से स्त्रीलिंग और स्त्रीलिंग से पुंलिंग में प्रयोग किए गए हैं, जो उनका अपना निजी सिद्धांत है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अलंकारों से काव्य की दुरूहता बढ़ गई है। 'पल्लव' में इसकी प्रधानता है। 'पल्लव' की कविताओं में 'सा'-'सी' का प्रयोग अधिक हुआ है, और 'गुंजन' में 'रे' का। यह संगीत-प्रेमियों के लिये रुचिकर है। कवि ने अपनी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं होने दिया। जिस प्रकार उसने विचारों में, भावों में, छंदों में अपनी स्वतंत्र प्रकृति का परिचय दिया है, उसी प्रकार शब्दों के चयन और उनके प्रयोग में भी अपने स्वतंत्र विचारों का उपयोग किया है। गद्य में भावना की प्रधानता विशेष है। कोमल शब्दों का चुनाव पंतजी ने भली भाँति किया है, परंतु कहीं-कहीं शब्द कुछ ऐसे प्रयुक्त हुए हैं, जिनका अर्थ सरलता से समझ में नहीं आता। किंतु, फिर भी, कवि अपनी मधुर भावना और सार्थकता के लिये प्रिय है।

हम कवि की पाँच सुंदर कविताएँ यहाँ देते है—

परिवर्तन

कहाँ आज वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगंत-छवि-जाल,
ज्योति-चुंबित जगती का भाल ?
राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन-विस्तार ?
स्वर्ग की सुषमा जब साभार
धरा पर करती थी अभिसार !
प्रसूनों के शाश्वत-शृंगार,
(स्वर्ण-भृंगों के गंध-विहार)
गूँज उठते थे बारंबार,
सृष्टि के प्रथमोद्गार !
नग्न-सुंदरता थी सुकुमार,
ऋद्धि औ' सिद्धि अपार !
अये, विश्व का स्वर्ण-स्वप्न, संसृति का प्रथम-प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद-विख्यात ?
दुरित, दुख दैन्य न थे जब ज्ञात,
अपरिचित जरा मरण-भ्रू-पात !

हाय ! सब मिथ्या-बात ! —
आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस !
वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार !
आज पावस-नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न-कराल ;

प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल !
अखिल यौवन के रंग-उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल ;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार ;
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार !

आज बचपन का कोमल गात
जरा का पीला पात !
चार दिन सुखद चाँदनी रात,
और फिर अंधकार, अज्ञात !
शिशिर-सा झर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल !
प्रणय का चुंबन छोड़ अधीर
अधर जाते अधरों को भूल !
मृदुल होठों का हिमजल-हास
उड़ा जाता निःश्वास-समीर ;
सरल भौंहों का शरदाकाश
घेर लेते घन, घिर गंभीर !

शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर-मधुर-संयोग ;
मिलन के पल केवल दो-चार,
विरह के कल्प अपार !
अरे, वे अपलक चार नयन
आठ-आँसू रोते निरुपाय ;

उठे रोओं के आलिंगन
कसक उठते काँटों से हाय!
किसी को सोने के सुख-साज
मिल गए यदि ऋण भी कुछ आज;
चुका लेता दुख कल ही ब्याज,
काल को नहीं किसी की लाज!
विपुल मणि - रत्नों का छवि-जाल,
इंद्रधनु की-सी छटा विशाल—
विभव की विद्युत्-ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल;
मोतियों - जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार!
खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण, क्षण;
अभी उत्सव औ' हास-हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छ्वास!
अचिरता देख जगत की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;
सिसक उठता समुद्र का मन,
सिहर उठते उडुगन!
अहे निष्ठुर-परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव-नर्तन
विश्व का करुण-विवर्तन!
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन

निखिल उत्थान, पतन !
अहे वासुकि सहस्र-फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल-दंत, कंचुक-कल्पांतर,
अखिल-विश्व ही विवर,
वक्र-कुंडल
दिङ्मंडल !
अहे दुर्जेय विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इंद्रासन तल माथ;
घूमते शत शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ !
तुम नृशंस-नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित ;
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद-मर्दित ;
नग्न नगर कर, भग्न-भवन प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव कला-कौशल चिर-संचित !
आधि, व्याधि, बहु-वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भू-कंप—तुम्हारे विपुल सैन्य-दल ;
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिलहिल उठता है टलमल
पद-दलित धरा-तल !
जगत का अविरल हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय-सूचन ;

निमिष-पलकों का मौन-पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि-से घुस पल-पल ;
तुम्हीं स्वेद सिंचित संसृति के स्वर्ण-शस्य-दल
दलमल देते, वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल !
अये, सतत-ध्वनि-स्पंदित जगती का दिङ्मंडल
नैश - गगन - सा सकल
तुम्हारा ही समाधि-स्थल !
काल का अकरुण-भृकुटि-विलास
तुम्हारा ही परिहास ;
विश्व का अश्रु-पूर्ण इतिहास !
तुम्हारा ही इतिहास !
एक कठोर-कटाक्ष तुम्हारा अखिल-प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग-संसृति में निर्भर ;
भूमि चूमि जाते अभ्र-ध्वज-सौध, श्रृंगवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य—भूति के मेघाडंबर !
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू-कंपन,
गिर-गिर पड़ते भीत-पक्षि-पोतों-से उडुगन ;
आलोड़ित-अंबुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध-भुजंगम-सा, इंगित पर करता नर्तन !
दिक्-पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु - गर्जन !
जगत की शत-कातर-चीत्कार
बेधतीं बधिर ! तुम्हारे कान !

अश्रु-स्रोतों की अगणित धार
सींचतीं उर-पाषाण !
अरे क्षण-क्षण सौ सौ निःश्वास
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक् घहर-घहर आक्रांति
ग्रस्त करती सुख शांति !
हाय री दुर्बल भ्रांति !—
कहाँ नश्वर-जगती में शांति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशांति !
जगत अविरत - जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम !

एक सौ वर्ष, नगर-उपवन,
एक सौ वर्ष, विजन-वन !
—यही तो है असार-संसार,
सृजन, सिंचन, संहार !
आज गर्वोन्नत-हर्म्य अपार,
रत्न-दीपावलि, मन्त्रोच्चार ;
उलूकों के कल भग्न विहार,
झिल्लियों की झनकार !
दिवस-निशि का यह विश्व-विशाल
मेघ-मारुत का माया-जाल !

अरे, देखो इस पार—
दिवस की आभा में साकार
दिगंबर, सहम रहा संसार !
हाय ! जग के करतार !!

प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर-इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल-आकार;
छिन गया हाय! गोद का बाल,
गड़ी है बिना बाल की नाल!

अभी तो मुकुट बँधा था माथ,
हुए कल ही हल्दी के हाथ;
खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुंबन-शून्य कपोल;
हाय! रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अँगार!
वात-हत-लतिका वह सुकुमार
पड़ी है छिन्नाधार!!

काँपता उधर दैन्य निरुपाय,
रज्जु-सा, छिद्रों का कृश काय!
न उर में गृह का तनिक दुलार,
उदर ही में दानों का भार!
भूँकता-सिड़ी-शिशिर का श्वान
चीरता हरे! अचीर शरीर;
न अधरों में स्वर, तन में प्राण,
न नयनों ही में नीर!

सकल रोओं से हाथ पसार
लूटता इधर लोभ गृह-द्वार;
उधर वामन-डग-स्वेच्छाचार
नापता जगती का विस्तार;

टिड्डियों-सा छा अत्याचार
चाट जाता संसार!

बजा लोहे के दंत कठोर
नचाती हिंसा जिह्वा लोल
भृकुटि के कुंडल वक्र मरोर
फुहुँकता अंध-रोष फन खोल!
लालची-गीधों से दिन-रात
नोचते रोग-शोक नित गात,
अस्थि पञ्जर का दैत्य दुकाल
निगल जाता निज बाल!

बहा नर-शोणित मूसलधार,
रुंड-मुंडों की कर बौछार,
प्रलय-घन-सा घिर भीमाकार
गरजता है दिगंत संहार;
छेड़ खर-शस्त्रों की झंकार
महाभारत गाता संसार!

कोटि मनुजों के, निहत अकाल,
नयन-मणियों से जटित कराल
अरे, दिग्गज-सिंहासन-जाल
अखिल मृत-देशों के कंकाल;
मोतियों के तारक-लड़-हार
आँसुओं के शृंगार!

रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायंकाल;
शून्य-निःश्वासों के आकाश,
आँसुओं के ये सिंधु विशाल;

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कंकाल !!
वृथा रे, ये अरण्य-चीत्कार,
शांति, सुख है उस पार !

आह भीषण-उद्गार !—
नित्य का यह अनित्य-नर्तन
विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
अचिर में चिर का अन्वेषन
विश्व का तत्वपूर्ण दर्शन !
अतल से एक अकूल-उमंग,
सृष्टि की उठती तरल-तरंग,
उमड़ शत-शत बुद्बुद-संसार
बूड़ जाते निस्सार !
बना सैकत के तट अतिवात
गिरा देती अज्ञात !

एक छवि के असंख्य-उडुगन,
एक ही सबमें स्पंदन ;
एक छवि के विभात में लीन,
एक विधि के आधीन !
एक ही लोल-लहर के छोर
उभय सुख-दुख, निशि-भोर,
इन्हीं से पूर्ण त्रिगुण संसार,
सृजन ही है, संहार !
मूँदती नयन मृत्यु की रात
खोलती नव-जीवन की प्रात,

शिशिर की सर्व-प्रलयकर-वात
बीज बोती अज्ञात !
म्लान-कुसुमों की मृदु-मुसकान
फलों में फलती फिर अम्लान,
महत् है, अरे, आत्म-बलिदान,
जगत केवल आदान-प्रदान !

एक ही तो असीम - उल्लास
विश्व में पाता विविधाभास ;
तरल-जलनिधि में हरित विलास,
शांत-अंबर में नील - विकास :
वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास,
काव्य में रस, कुसुमों में वास ;
अचल-तारक-पलकों में हास,
लोल-लहरों में लास !
विविध-द्रव्यों में विविध प्रकार
एक ही मर्म-मधुर झंकार !

वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप
हृदय में बनता प्रणय अपार ;
लोचनों में लावण्य - अनूप,
लोक-सेवा में शिव-अविकार ;
स्वरों में ध्वनित मधुर, सुकुमार
सत्य ही प्रेमोद्गार ;
दिव्य-सौंदर्य, स्नेह-साकार,
भावनामय संसार !
स्वीय कर्मों ही के अनुसार
एक गुण फलता विविध प्रकार;

कहीं राखी बनता सुकुमार,
कहीं बेड़ी का भार !
कामनाओं के विविध प्रहार
छेड़ जगती के उर के तार
जगाते जीवन की झंकार
स्फूर्ति करते संचार ;
चूम सुख दुख के पुलिन अपार
छलकती ज्ञानामृत की धार !

पिघल होंठों का हिलता-हास
दृगों को देता जीवन-दान,
वेदना ही में तपकर प्राण
दमक, दिखलाते स्वर्ण-हुलास !
तरसते हैं हम आठो याम,
इसी से सुख अति सरस, प्रकाम;
झेलते निशि-दिन का संग्राम,
इसी से जय अभिराम ;
अलभ है इष्ट, अतः अनमोल,
साधना ही जीवन का मोल !

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ' प्यार !
आज का दुख, कल का आह्लाद,
और कल का सुख, आज विषाद ;
समस्या स्वप्न-गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार ;

जगत-जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति-क्रम का ह्रास!
हमारे काम न आने काम,
नहीं हम, जो हम ज्ञात;
अरे, निज छाया में उपनाम
छिपे हैं हम अपरूप;
गँवाने आए हैं अज्ञात
गँवाकर पाते स्वीय स्वरूप!
जगत की सुंदरता का चाँद
सजा लांछन को भी अवदात,
सुहाता बदल, बदल, दिन रात,
नवलता ही जग का आह्लाद!
स्वर्ण-शैशव स्वप्नों का जाल,
मंजरित-यौवन, सरस-रसाल;
प्रौढ़ता, छाया-वट सुविशाल,
स्थविरता, नीरव-सायंकाल;
वही विस्मय का शिशु नादान
रूप पर मँडरा, बन गुंजार;
प्रणय से बिंध, बँध, चुन-चुन सार,
मधुर जीवन का मधु कर पान;
साध अपना मधुमय-संसार
डुबा देता निज तन, मन, प्राण!
एक बचपन ही में अनजान
जागते, सोते, हम दिन-रात;
वृद्ध-बालक फिर एक प्रभात
देखता नव्य-स्वप्न अज्ञात;

मूँद प्राचीन-मरन,
खोल नूतन जीवन !
विश्वमय हे परिवर्तन !

अतल से उमड़ अकूल, अपार,
मेघ-से विपुलाकार ;
दिशावधि में पल विविध प्रकार
अतल में मिलते तुम अविकार !

अहे अनिर्वचनीय ! रूप धर भव्य, भयंकर,
इंद्रजाल-सा तुम अनंत में रचते सुंदर ;
गरज, गरज, हँस, हँस, चढ़, गिर, छा, ढा, भू-अंबर,
करते जगती को अजस्र जीवन से उर्वर ;
अखिल विश्व की आशाओं का इंद्र चाप-वर
अहे तुम्हारी भीम-भृकुटि पर
अटका निर्भर !

एक औ' बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र-समान,
जगत के उर में छोड़ महान
गहन-चिह्नों में ज्ञान !

परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरंतर,
अभिनय करते विश्व-मंच पर तुम मायाकर !
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट, अगोचर ;
शिक्षास्थल यह विश्व-मंच, तुम नायक-नटवर,

प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर !

हमारे निज सुख, दुख, निःश्वास
तुम्हें केवल परिहास;
तुम्हारी ही विधि पर विश्वास
हमारा चिर आश्वास!
ऐ अनंत-हृत्कंप! तुम्हारा अविरत स्पंदन
सृष्टि-शिराओं में संचारित करता जीवन;
खोल जगत के शत शत नक्षत्रों-से लोचन,
भेदन करते अंधकार तुम जग का क्षण, क्षण;
सत्य तुम्हारी राज-यष्टि, सम्मुख नत त्रिभुवन,
भूप, अकिंचन,
अटल शांति नित करते पालन!
तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार;
तुम्हीं में निराकार साकार,
मृत्यु-जीवन सब एकाकार!
अहे महाम्बुधि! लहरों से शत लोक, चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर;
तुंग-तरंगों-से शत युग, शत शत कल्पांतर
उगल, महोदर में विलीन करते तुम सत्वर;
शत-सहस्र रवि-शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण,
जलते, बुझते हैं स्फुलिंग-से तुममें तत्क्षण;
अचिर विश्व में अखिल—दिशावधि, कर्म, वचन, मन,
तुम्हीं चिरंतन
अहे विवर्तन-हीन विवर्तन!

सुख-दुख

मैं नहीं चाहता चिर-सुख,
चाहता नहीं अविरत-दुख ;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन ;
फिर घन में ओझल हो शशि ;
फिर शशि से ओझल हो घन।

जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव - जग में बँट जावें
दुख सुख से औ' सुख दुख से।

अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न ;
दुख-सुख की निशा-दिवा में
सोता - जगता जग - जीवन।

यह साँझ - उषा का आँगन,
आलिंगन विरह - मिलन का ;
चिर हास - अश्रुमय आनन
रे इस मानव-जीवन का !

लोगी मोल

आई हूँ फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल ?
तरल तुहिन-वन का उल्लास
लोगी मोल, लोगी मोल ?

फैल गई मधु-ऋतु की ज्वाल,
जल-जल उठतीं वन की डाल;
कोकिल के कुछ कोमल बोल
लोगी मोल, लोगी मोल?

उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत,
फूट रहे नव-नव जल-स्रोत,
जीवन की ये लहरें लोल
लोगी मोल, लोगी मोल?

विरल जलद-पट खोल अजान
छाई शरद्-रजत-मुसकान,
यह छवि की ज्योत्स्ना अनमोल
लोगी मोल, लोगी मोल?

अधिक अरुण है आज सकाल—
चहक रहे जग-जग खग-बाल;
चाहो, तो सुन लो जी खोल,
कुछ भी आज न लूँगी मोल!

एकतारा

नीरव संध्या में प्रशांत
डूबा है सारा ग्राम-प्रांत।
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।
खग-कूजन भी हो रहा लीन, निर्जन गोपथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजंग-सा जिह्म, क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर केवल प्रशांति को रहा चीर,
संध्या-प्रशांति को कर गभीर।

इस महाशांति का उर उदार, चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार
क्यों बेध रही हो आर-पार।
अब हुआ सांध्य स्वर्णाभ लीन,
सब वर्ण-वस्तु से विश्व हीन।
गंगा के चल-जल में निर्मल कुम्हला किरणों का रक्तोत्पल,
है मूँद चुका अपने मृदु-दल।
लहरों पर स्वर्ण-रेख सुंदर पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर,
अरुणाई प्रखर-शिशिर से डर।
तरु-शिखरों से वह स्वर्ण-विहग उड़ गया खोल निज पंख सुभग,
किस गुहा-नीड़ में रे किस मग!
मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नव नील-नील, कोमल-कोमल,
छाया तरु-वन में तम श्यामल।
पश्चिम-नभ में हूँ रहा देख
उज्ज्वल, अमंद नक्षत्र एक!
अकलुष, अनिंद्य नक्षत्र एक ज्यों मूर्तिमान ज्योतित-विवेक,
उर में हो दीपित अमर टेक।
किस स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप वह लिए हुए? किसके समीप?
मुक्तालोकित ज्यों रजत-सीप!
क्या उसकी आत्मा का चिर-धन स्थिर, अपलक-नयनों का चिंतन?
क्या खोज रहा वह अपनापन?
दुर्लभ रे दुर्लभ अपनापन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल-इच्छा से निर्धन!
आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग
मानता नहीं बंधन-विवेक!
चिर-आकांक्षा से ही थर्-थर् उद्वेलित रे अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर!

अविरत इच्छा ही में नर्तन करते अबाध रवि, शशि, उडुगण,
दुस्तर आकांक्षा का बंधन !
रे उडु, क्या जलते प्राण विकल ! क्या नीरव, नीरव नयन सजल !
जीवन निसंग रे व्यर्थ-विफल !
एकाकीपन का अंधकार दुस्सह है इसका मूक - भार,
इसके विषाद का रे न पार !

*　　　*　　　*

चिर अविचल पर तारक अमंद !
जानता नहीं वह छंद-बंध !
वह रे अनंत का मुक्त - मीन अपने असंग - सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर-नवीन।
निष्कंप - शिखा-सा वह निरुपम भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम !
गुंजित अलि-सा निर्जन अपार मधुमय लगता घन - अंधकार,
हलका एकाकी व्यथा भार !
जगमग - जगमग नभ का आँगन लद गया कुंद, कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन !

युगांत

मंजरित आम्र - वन - छाया में
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा नभ गुंजित,
नीचे चंद्रातप छना स्फार !

तुम मुग्धा थीं, अति भाव-प्रवण,
उकसे थे अँबियों - से उरोज,

चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार,
मैं सलज, तुम्हे था रहा खोज!
छनती थी ज्योत्स्ना शशि - मुख पर
मैं करता था मुख - सुधा - पान,
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल,
भर गए गंध से मुग्ध प्राण!

तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल - वपु भरा गोद,
था आत्म - समर्पण सरल, मधुर,
मिल गए सहज मारुतामोद!
मंजरित आम्र-द्रुम के नीचे
हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
मधु के कर में था प्रणय-बाण,
पिक के उर में पावक - पुकार!

श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी'

४—मोहनलाल महतो 'वियोगी'

[पं० मोहनलाल महतो 'वियोगी' का जन्म संवत् १९५९ विक्रमीय में, बिहार के प्रसिद्ध स्थान गया में, हुआ। सात वर्ष की अवस्था में आपकी पढ़ाई प्रारंभ हुई। छोटी अवस्था में ही आपकी माता का देहांत हो गया। गया-बाल-समाज में आप ही पहले बालक थे, जिन्होंने पढ़ने-लिखने की ओर सुरुचि दिखलाई। हिंदी के साथ-साथ आपने अँगरेज़ी भी पढ़नी प्रारंभ की। आपकी पढ़ाई के लिये आपके पिताजी ने काफ़ी संपत्ति व्यय की, और कई अध्यापक नियुक्त किए। बड़े होने पर आपने संस्कृत भी पढ़ी और उसमें अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

महतोजी की साहित्यिक उन्नति 'माधुरी' पत्रिका के हिंदी में प्रकाशित होने पर हुई। श्रीपं० रूपनारायणजी पांडेय ने आपको काफ़ी प्रोत्साहन दिया, और 'माधुरी' में आपकी रचनाएँ लगातार छपने लगीं। आप कुशल चित्रकार भी हैं। व्यंग्य चित्र भी आपके सुंदर होते हैं। 'माधुरी' में आपके व्यंग्य चित्र भी छपने लगे। महतोजी ने इसी समय हिंदी में प्रसिद्धि प्राप्त की। श्रीरामवृक्षजी शर्मा बेनीपुरी के द्वारा भी आपको हिंदी में बड़ा प्रोत्साहन मिला।

महतोजी की हिंदी में इस समय कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'निर्माल्य', 'एकतारा' और 'कल्पना' आपकी काव्य-रचनाओं का संग्रह है। 'रेखा' आपकी कहानियों के संग्रह की पुस्तक है। 'एकतारा' की भूमिका महामहोपाध्याय डॉक्टर गंगानाथ झा ने लिखी है। आप कवींद्र रवींद्र को अपना गुरु मानते हैं, और उन्हीं के छाया-पथ पर चलते हैं। आपका सिद्धांत है कि 'कविता कविता

के लिये ही लिखी जाती है। अत्युक्तियों और अलंकारों की सहायता से अपने मन की बातों को अतिरंजित करना आवश्यक है। अधिक कहकर वाग्जाल में फँसाना ठीक नहीं।' आप कहानी भी सुंदर लिखते हैं। कहानी भी आपकी छायावादी नवीन साँचे में ढली हुई होती है। आपकी भाषा शुद्ध खड़ी बोली है।]

श्रीमोहनलाल महतो 'वियोगी' हिंदी में पूर्ण नवीनतावादी होकर उपस्थित हुए। वेदना और मधुरता की छाया के सहारे आप कल्पना और भावना को प्रधानता देते हुए काव्य-रचना में सफल माने जाने लगे। आप अपने को श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर का शिष्य मानते हैं। यह हिंदी-कवियों के लिये नई बात है। इसका तात्पर्य यह है कि महतोजी पर रवींद्र बाबू की कविता का बहुत प्रभाव पड़ा, और उन्हीं की रचनाओं से प्रभावित होकर कविता करने में सफल हुए, और हो रहे ह। इसमें संदेह नहीं कि कल्पना-प्रधान कवियों में 'श्रीवियोगी' का स्थान श्रेष्ठ है, और उनकी कविताओं का एक संदेश है, जो रवि बाबू की कविता की छाया है। रवि बाबू छायावाद क प्रवर्तक हैं। उनका छायावाद आत्मिक अनुभूति की अभिव्यक्तियों का एकीकरण रूप है। 'वियोगी'-जी की रचनाएँ कल्पना-प्रधान हैं, और अनुभूति की अभिव्यक्ति से युक्त है। कवि में अनुभूति तो है, किंतु भावुकता कम नहीं। अनुभूति की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप भावना है। 'वियोगी'जी की कविता में कल्पना की तो प्रधानता है ही, किंतु वे कल्पनाएँ अधिक विस्तृत रूप में प्रगट की गई है। कल्पना-प्रधान व्यक्ति जब भावना से प्रेरित होता है, तो उसे थोड़े में अपने मन की बात कहकर संतोष नहीं होता। यही बात 'वियोगी'जी के लिये भी कही जा सकती है। वेदना, प्यार और सुकुमार कल्पना इनकी कविता का गुण है। वेदना हृदय की है, आंतरिक है, बाह्य नहीं।

प्रेम आंतरिक है, प्यार निर्लिप्त है। बाह्य प्यार और प्रेम के प्रलोभन में कवि की भावना नहीं समन्वित होती। वह हृदय में कुछ अनुभव करता है। वह अपनी प्रेरणा को प्रधान मानता है। वह स्वयं अपनी 'निर्माल्य' पुस्तक में लिखता है—

मै क्या लिखता हूॅ, इसका है नही मुझे किंचित भी ज्ञान ;
अनमिल अक्षर मिलकर बन जाते हैं स्वय पद्य या गान।
मैं तो हूॅ नीरव वीणा, मुझ पर है वादक का अधिकार ;
मुझे बजाता है वह जब आ अपनी इच्छा के अनुसार—
होती हैं तब व्यक्त राग-रागिनियाँ मन हरनेवाली ;
है उसकी ही दया अचेतन को चेतन करनेवाली।

कवि क्या लिखता है, इसका उसे ज्ञान नहीं रहता। भावना में वह अपने को भूल जाता है। हृदय ही उसकी वीणा है, और 'वह' बजानेवाला है। जब वह कुछ अनुभव करता है, और उस अनुभव का आधार 'वह' होता है, तब मन हरनेवाली राग-रागिनियाँ स्वय पद्य या गान के रूप में व्यक्त होती हैं। इससे मालूम होता है कि कवि कल्पना और भावना के वशीभूत होकर ही कविता की रचना करता है। 'वियोगी'जी की कविता की प्रगति किस ओर है, इस संबध में श्रीरामवृक्षजी शर्मा बेनीपुरी ने लिखा है—"छाया-वाद की कविता के आदि आचार्य कबीरदास हैं। किंतु कबीर ने जिस धुँधले पथ पर पैर रक्खा था, वह सर्व-साधारण के लिये अगम्य है। यही कारण है कि यद्यपि कबीर का 'अनहदनाद' अभी तक आकाश में गूँज रहा है, तथापि उनके कंठ से कठ मिलानेवाला कोई न जन्मा—कोई भी उस छाया को न छू सका। कहीं छाया भी छुई जा सकती है। अकस्मात् पाँच-छ वर्षों के बाद एक महा-पुरुष का आविर्भाव हुआ। उसे वह 'धुँधला पथ' कवित्वमय सूझ पड़ा। 'अनहदनाद' में अपना नाद मिलाने को वह जम बैठा—कबीर

की खँजरी के स्थान पर उसके हाथ में विश्वमोहिनी वीणा थी। उसका गान सुनकर संसार मुग्ध हुआ। उसके श्रीचरणों पर सवा लाख की एक थैली चढ़ाकर उसने उसे कवि-सम्राट् के शुभ सिंहासन पर बिठलाया—कबीर के बाद उस पथ के पथिक कवींद्र रवींद्रनाथ ठाकुर हैं। रवींद्र की ख्याति और प्रतिपत्ति ने हमारे नवयुवकों का ध्यान छायावाद की ओर आकर्षित किया।...... हमारे महतोजी भी रवींद्र (या कबीर) के ही अनुगामी हैं।"

इसका तात्पर्य यह है कि श्री'वियोगी'जी कवींद्र रवींद्र और कबीर की छाया पर चलते हैं। किंतु 'निर्माल्य' की कविताओं से 'एकतारा' की कविताएँ अधिक प्रौढ़ और छायावादी हैं। 'निर्माल्य' कवि की प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह है। इन कविताओं में प्रौढ़ता और कल्पना एवं प्रवाह का वास्तविक रूप प्रदर्शित नहीं होता। हाँ, छायावाद की वह ध्वनि अवश्य है, जो रवींद्र की कविताओं में ध्वनित होती है। पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के कथनानुसार इनकी कविताओं में रचना-चातुर्य और माधुर्य के अतिरिक्त सुंदर सूझ, कमनीय कल्पना, भव्य भाव तथा नूतनत्व के निदर्शन का दर्शन स्थान-स्थान पर होता है।

कवि के विचारों और भावों में त्याग और उत्सर्ग की सुंदर भावना है। उसने उस 'असीम' की स्थान-स्थान पर सुंदर कल्पना की है। लक्षण-ग्रंथों के अनुरूप छंद-रचना में कवि ने अधिक प्रयास किया है, किंतु मुक्त छंद भी कुछ लिखे हैं। भावोन्मेष में अलंकारों की आवृत्ति भी मधुरता के साथ हुई है। भावों और अनुभूतियों की कल्पनाएँ नवीनता लिए हुए हैं, किंतु उनमें प्रौढ़त्व का आभास कम मिलता है। महाकवि रवींद्र 'गीतांजलि' के बाद कोई वैसा काव्य-संबंधी उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं लिख सके, इसलिये यदि यह कहा जाय कि 'निर्माल्य' गीतांजलि के टक्कर का है, यह

कोरी कल्पना ही है। 'निर्माल्य' के परिचय में लेखक ने लिखा है—"यह 'गीतांजलि' के टक्कर का है, ऐसा कहने का हमें कोई अधिकार नहीं।" इन पंक्तियों से वैसी ही भावना उत्पन्न होती है, जैसा कि श्री-सुमित्रानंदन पंत ने अपनी 'वीणा' की भूमिका में लिखा है—"'मम जीवन का प्रमुदित प्रात, (वीणा पृष्ठ ८) 'गीतांजलि' के 'अंतर मम विकसित कर' वाले गाने से मिलता-जुलता है। . और, मेरा यह गीत रवि बाबू की उस तुकबंदी से शायद अच्छा बन पड़ा है। कम-से-कम मुझे तो यही सोचना चाहिए।" ये सब गर्वोक्तियाँ हैं। हिंदी के कवियों ने रवींद्र बाबू की कविता से छाया ग्रहण की है, यह ठीक है। उनकी कविताएँ नवीन दृष्टिकोण से लिखी गई हैं, किंतु 'निर्माल्य' 'गीतांजलि' की टक्कर का है, यह अतिशयोक्ति से भी अधिक है। इतना सब होते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि महतोजी की रचनाएँ कल्पना और भावना-प्रधान हैं, और उनकी ध्वनि भावुकता की ओर अधिक है, बस। हाँ, 'एकतारा' कवि की सुंदर रचना है, उसकी कविताएँ अधिक स्थायी और नवीन काव्य की फुलवाड़ी के सुगंधित और मनोरम पुष्पों के समान हैं, जिनकी सुगंधि से तृप्ति होती है।

श्री 'वियोगी' जी की कविताओं में हम भावों की विभिन्नता नहीं पाते, उनमें प्रधान ध्वनि ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करना और सुकुमार कल्पनाओं तथा भावनाओं को उसके प्रति प्रदर्शन करना है। कवि की वाणी में उदारता है, मिठास और एक आकर्षण है, जो भक्ति के प्रवाह में प्रवाहित है। वह इच्छा-रहित है। सुख-दुख की चिंता नहीं करता। वह अपने घट (हृदय) में उसके पादोदक को भरकर इस संसार में अपने जीवन को सफल समझता है—

> नहीं है स्वर्ण-रत्न की चाह,
> नहीं है सुख-दुख की परवाह,

केवल तेरा पादोदक निज घर मे भरकर
समझेगा यह सफल विश्व मे अपना जीवन

माया क्या है? उसमें मनुष्य की वास्तविक चैतन्य शक्ति विलीन हो जाती है। किंतु वह 'किसी' की खोज में लगा रहता है, अपनी कल्पना से कुछ अनुभव करता है। उसे एक ध्वनि की अनुभूति होती है, अपना आंतरिक तान को उसकी तान से मिलाने का प्रयत्न करता है, किंतु फिर भी 'उसे' नहीं पाता! क्यों? यह उसी की माया! संसार की समस्त गति उसी की शक्ति पर निर्भर है। उसी की '*माया*' का विस्तार है। '*माया*' के ही वशीभूत हो वह विचित्र कल्पनाएँ करता है, किंतु सफलता नहीं मिलती। इसी से वह कहता है—

मैंने देखा जिधर वियोगी, तुझे उधर ही लख पाया;
इधर कहाँ? कह खड़ा रहा, तू फिर न दृष्टि-पथ में आया।
तब अचेत-सा शीघ्र हाय मैं,
मेरा वह चैतन्य-ज्ञान भी खो गया!

फिर देखा तू आया,
हँसा और कुछ गाया।

प्रेमी की गति प्रेमी ही जानता है। वह जब प्रेम करता है, तो उसके सम्मुख किसी आडंबर का ध्यान नहीं रहता। घायल की गति घायल जाने, और 'यती को यती पहचाने' के अनुसार प्रेमी की व्यथा को प्रेमी ही अनुभव कर सकता है।

वह राजा है, मैं दरिद्र हूँ, इसका कुछ न विचार किया;
होकर प्रेमोन्मत्त, देख छवि मन-ही-मन मे प्यार किया।

वास्तविक प्रेमी बाह्य प्रेम में नहीं फँसता। वह अपने प्रेमी की कल्पना करता है, और मन में ही उसके प्रेम का अनुभव

करता है। उसका प्रेम गूँगे के गुड़ का स्वाद होता है। इसीलिये कवि के इस कथन में कितना सौंदर्य है कि उसकी छवि को देखकर मन-ही मन में प्यार किया।

कवि अपने प्रेमी की खोज करता है। लोग कहते हैं, ईश्वर घट-घट व्यापी है, सभी में वह रम रहा है। कोई कहता है कि उसका पता ठीक-ठीक नहीं लग सकता, नाम सुना जाता है, किंतु उसे किसी ने देखा नहीं। किंतु तो भी कवि पक्का आस्तिक है, उसे उसकी सत्ता पर विश्वास है, तभी तो वह कहता है—

हम भी जहाँ खोजते, पाते हैं उसका अस्तित्व महान,
पर वह कहाँ छिपा है, उसका कोई मिलता नहीं प्रमाण।

कवि प्रेमी की 'आँख-मिचौनी' से अधीर हो उठा है, और उसके नीरस व्यवहार से दुखी है। किंतु तो भी वह आँख मूँदकर अपने जीवन-नभ में श्याम घटा बनकर छा जाने की उससे विनय करता है। हिंदुओं की यह सांस्कृतिक परंपरा है कि एकांत चिंतन से उस ईश्वरीय सत्ता की अनुभूति होती है। कवि ने अपने विचारों में उस मनोभावना का सांस्कृतिक स्वरूप स्थिर करके उसके अस्तित्व की झाँकी दिखलाई है।

संसार समुद्र है, यह जीवन जीर्ण तरी है, उसे 'अज्ञात' देश की ओर जाने की प्रेरणा होती है, किंतु तरी इतनी निर्बल है कि उसका पार लगना कठिन है। सांसारिक लहरों—माया, मोह, पाप—के चक्र में फँसे जीवन-तरी की क्या दशा होगी, यह उसकी गति पर निर्भर है। किंतु अब उसका 'उस पार' उतारे कौन? इसीलिये वह उस हरि की याचना करता हुआ कहता है—

जाना है अज्ञात ।है सिंधु पारकर;
भ्रम से मैं चढ़ गया हाय! इस जीर्ण तरी पर।

कूल नहीं देखा, खेया इसको जीवन - भर ,
इसकी गति पर ही भविष्य मेरा है निर्भर ।
भुजा थक गई क्या करूँ, हे हरि ! बाँह पसारिए ;
व्याकुल हूँ, बेजार हूँ, अब उस पार उतारिए ।

इस विनय में उदारता और अपने अस्तित्व को कुछ न समझने की भावना बड़ी सुंदर है । करुण-रस का प्रवाह उत्तम है । साथ ही रहस्यवाद की वह ध्वनि भी ध्वनित होती है, जिस संबंध में कवि 'उस पार' जाने को लालायित है ।

कवि 'ख़ुमारी की खोज' में है । वह सांसारिक ख़ुमारी का इच्छुक नहीं, क्योंकि उसने 'सुरा-पात्र' ख़ाली कर दिए । दो आकुल अधरों के कोमल संगम में भी वह नहीं मिला । सुमन-गंध, एकांत-मिलन, चुंबन और कामिनी की अलसानी चितवन में ही वह दृष्टिगोचर नहीं हुआ । वह इस प्रकार के सुख में उसकी प्राप्ति की कल्पना ही नहीं करता, उसे रोने में (दुख) सुख मिलता है । इसी में वह उसके पाने का अनंत अनुभव करता है । तभी तो वह कहता है—

दोनो बाँह पसार तुझे जब रोकर हृदय लगाऊँगा ;
आँखें मूँद तभी मादकता का अनंत सुख पाऊँगा ।

'चलो' कविता छायावादी काव्य की वास्तविक छाया है । रवींद्र बाबू के काव्य का प्रतिबिंब इस काव्य में झलकता है ।

शीघ्र खोल दो द्वार, खड़ा हूँ बहुत देर से मैं आकर ;
अरे प्रवासी ! समय हो गया चलने का, निकलो बाहर ।
शून्य हो गए चरागाह सब गौएँ गोठों में आईं ;
देखो, अंत-हीन अंबर में तारावलियाँ भी छाईं ।

कवि अज्ञान के पथ का पथिक है । पाप का झोंका खाकर उसका हृदय-दीपक बुझ गया । वह केवल 'उसी' का सहारा चाहता है, इसीलिये उसकी हृदय-तंत्री निनादित हो उठती है—

अंधकार में निर्जन वन में झंझा का झोंका खाकर—
हाय बुझ गया दीप अकेला भटक रहा हूँ इधर-उधर।
नहीं हाथ को हाथ सूझता, दिशा-ज्ञान भी लोप हुआ ;
पता नहीं, मेरे प्रभु का क्यों मुझ पर इतना कोप हुआ ?

इसी प्रकार 'निर्माल्य' में कवि ने अपनी अनेक कविताओं में छायावादी काव्य की नवीन धारा प्रवाहित की है। प्रायः सभी कविताओं का एक दृष्टिकोण है। उनमें ईश्वरीय सत्ता की महत्ता, उसे अपनी दीनता प्रदर्शित करके कृपा-भाजन बनने की इच्छा और संसार से विरक्ति आदि भावनाओं को कोमल तथा सरल वाक्यों और शब्दों के द्वारा वेदना पूर्ण ढंग से व्यक्त किया गया है।

'एकतारा' की कविताएँ उत्कृष्ट हैं। 'पहला प्यार' रचना बड़ी मार्मिक है। भावना बड़ी हो गई है। 'निर्माल्य' की भावना कुछ सीमित है, किंतु 'एकतारा' की सीमित नहीं। 'चित्रपट से' कविता दार्शनिक तत्त्व का बोध देनेवाली है। 'एकतारा' की कविताओं में कवि की प्रतिभा विकसित रूप में दृष्टिगोचर होती है। इन कविताओं में कवि केवल रहस्य की बात को थोड़े ही कहकर संतोष नहीं प्राप्त करता, वरन् अपनी मानसिक अनुभूति की अभिव्यक्ति एक तर्क के साथ करता है, जिसमें कुछ दार्शनिक और वेदांती विचार-धारा का स्रोत उत्पन्न हो गया है। कवि ने जहाँ छायावादी या दार्शनिक तत्त्वों से पूर्ण रचनाएँ लिखी हैं, वहाँ विभिन्न विषयों पर भी सुंदर और भाव-पूर्ण पंक्तियाँ लिखी हैं। 'आँसू', 'हिंदी', 'वसंत' आदि स्फुट रचनाओं की भावना सुंदर, सरल और कोमल है।

कवि मुक्त काव्य का भी समर्थक है। मुक्त वृत्त में भी उसने कविताएँ लिखी हैं, किंतु उनमें उसे सफलता नहीं मिली।

वाक्यों, शब्दों के संगठन की शिथिलता के साथ-साथ भाव और विचारों की कहीं-कहीं विशृंखलता दृष्टिगोचर होती है। 'ध्वनि', 'तरंग' और 'तरी' मुक्त रचनाएँ हैं। हाँ, मुक्त रचनाओं का शाब्दिक संगठन संस्कृत-शब्दों से युक्त है, जिससे मधुरता का लोप नहीं हुआ। किंतु यदि संस्कृत-शब्दों का इतनी प्रचुरता से प्रयोग न करके कवि साधारण भाषा में मुक्त काव्य लिखता, तो उसकी ध्वनि अधिक स्पष्ट होती, और उसे इसमें सफलता भी अधिक मिलती।

कवि केवल कवि ही नहीं, वरन् गद्यकार भी है। श्रीमहताजी ने गद्य-काव्य और कहानियाँ भी प्रचुर मात्रा में लिखी हैं। वे कहानियाँ छोटी होने पर भी चोखी होती हैं—'नावक के तीर' की तरह सीधे दिल पर चोट पहुँचाती हैं। गद्य लेखन-कला में यह गुण है कि बड़े-से-बड़े भाव को कम-से-कम शब्दों में प्रकट करना यह जानते हैं। चित्रकार होने के कारण भाव-चित्रण भी सफलता पूर्वक करता है। 'रेखा' में आपकी सुंदर कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं।

श्रीमोहनलाल महतो की कविता और गद्य की शैली शुद्ध है। शुद्ध शब्दों का बहुलता के साथ आप प्रयोग करते हैं। कहीं-कहीं अप्रचलित शब्द भी पाए जाते हैं, किंतु उनकी संख्या अत्यंत न्यून है। भावना की प्रधानता इनके गद्यों में विशेष होती है। यह सफल कवि और गद्यकार हैं। हमारी समझ में श्रीमहतोजी अपनी रचनाओं के द्वारा प्रथम श्रेणी के छायावादी कवियों की गणना में अभी तक इसीलिये नहीं आ सके कि उन्होंने छायावाद के दृष्टिकोण को सामने रखकर एक ही भावना को प्रधानता दी है। कोई नवीनता का संदेश उनकी कविताओं में नहीं पाया जाता। किंतु उनका स्थान श्रेष्ठ है, इसमें कोई संदेह नहीं। यहाँ हम कवि की चुनी हुई पाँच श्रेष्ठ रचनाएँ देते हैं—

पहला प्यार

छलक मदिरा का प्याला पड़ा, पा लिया नयनों ने जी-भर ;
नींद सो गई न-जाने कहाँ ! न आई अस्थिर पलकों पर ।
धड़कते हुए हृदय को थाम, नशे में बीती सारी रात ;
ख़ुमारी गई न दिन में आह ! आ गई फिर भी प्यारी रात ।
घूँट, हाँ एक घूँट मिल जाय, लगा लूँ होठों से प्याला ;
देखकर विश्व चकित हो जाय, मद-भरी आँखें गुल्लाला ।
अरे, वह इतनी है सुकुमार, सहेगी क्या भुवन का भार ;
प्रकट उस पर न कहीं हो जाय, देव ! यह मेरा पहला प्यार ।
छिपाकर अपने में निज को, दूर से एक नज़र भरकर—
देखने की है अभिलाषा, अलौकिक वह मुखड़ा सुंदर ।
हृदय में कंपन बनकर बसे, रहे इस तन में बनकर प्राण ;
रहे नयनों में बनकर ज्योति, रहे जीवन में बन कल्याण ।
ढालती रहे सदा मदिरा, छलकता रहे सदा प्याला ;
सदा उन्मत्त बना ही रहे रात - दिन यह पीनेवाला ।
व्याकुल अधरों का संयोग, दो कंपित हृदयों का मिलन ;
मधुर भावों का वह उत्थान, अहा ! आनंदोन्मीलित नयन ।
भूल जा, अरे 'वियोगी' याद दिलाता हूँ, तू जा अब भूल ;
व्यर्थ है उस वसंत की याद, कहाँ हैं वे कलियाँ, वे फूल ?
विश्व की आज वेदना से मिला ले इस वीणा के तार ;
न होगा व्यर्थ, न होगा व्यर्थ, सत्य है तेरा पहला प्यार ।
उठाकर दर्पण-सा कर में, देखकर एक बार हँसकर ;
हृदय से लगा त्योरियाँ बदल, पटक डाला हा ! पत्थर पर ।
क्या कहूँ, पहचाना भी नहीं, और कर बैठी अत्याचार ;
चूम लूँ—चूर-चूर हो गया, हाय ! यह मेरा पहला प्यार ।

छिपा आँसू में मचले भाव, छिपा नयनों में आह खुमार ;
छिपाकर गीतों में उच्छ्वास, किया जब मैंने पहला प्यार ।
खिपटकर सौरभ-सा मुस्काले, चूम पलकों को बारबार ;
कहा यौवन ने भर आँखें—बुरा है विष से पहला प्यार ।

चैत आलस्यमयी आई, आ गई अपराधिनी बयार ;
कहा मेरे अन्तरतर से—"न करने देना पहला प्यार ।"
निशा ले ओस-आँसुओं के क्षणस्थायी चमकीला हार ;
कहा—"ले हार सभी कुछ हार, यही है प्यारे, पहला प्यार ।"

सेज अधरों पर बन मुस्कान, उसी पर अपना यौवन वार ;
कहा कविता ने—"अपने को मिटा देना है पहला प्यार ।"
हृदय को मसल चुटकियों से, हाय, अपनापन आज बिसार ;
जन्म की प्रिया निराशा ने कहा—"मैं ही हूँ पहला प्यार ।"
कपट, वेदना, सभी सखियाँ, अश्रु, आहों से कर शृंगार—
मचल बोलीं—"कर देंगी देव ! सफल हम तेरा पहला प्यार ।"

शेष वसुधा के कण-कण में व्यक्त कर अपने का साकार ;
कहा—"मेरा है मोहक रूप, मुग्ध यह तेरा पहला प्यार ।"
देव ! यह मेरा मधुर दुलार बन गया किसी हृदय का भार ;
किसी का कोमल अत्याचार, किसी का अल्हड़ पहला प्यार ।

रज-कण !

हे रज-कण !
हे मृण्मयी भूमि के एक अंश !
हे अनादि ! हे अंत-हीन ! हे विश्व-नियंता !
सोते थे जो रत्न-खचितशय्या पर—
दुग्ध-फेन-निभ बाल बिछावन ।

सुनकर जिनकी हाँक
धसकती थी यह धरणी,
करते थे दिक्पाल त्रास से विह्वल
घोर गर्जना ;
शेफाली के सुमन-सरीखे
सुनकर धनु-टंकार
टपक पड़ते नभ से
रवि, शशि, ध्रुव हो त्रस्त ;
था जिनका दावा कि उठाकर तीन लोक को
कंदुक-सा उछाल देंगे—नभ में, ठोकर से—
हाय ! उन्हें भी एक रोज तुझमें मिलना ही पड़ा
काल के कुटिल चक्र के नीचे पड़कर !

* * *

नहीं मानते थे जो सत्ता
विश्वेश्वर की,
ऋद्धि-सिद्धियाँ जिनका मुख
जोहा करती थीं,
सुर-दुर्लभ ऐश्वर्य लोटता था जिनके
चरणों के नीचे ; सागर से भी लिया
जिन्होंने दंड बाँधकर,
और इंद्र ने जिनके भय से बरसाई थी —
स्वर्ण-राशि ;
अर्थ-रत्न की क्या बिसात ;
जो दे देते थे अस्थि चीरकर अपने तन की
दान-रूप में ;

हाय ! उन्हें भी एक दिवस लत्ता-लत्ता बन
मिल जाना ही पड़ा शीघ्र तेरे स्वरूप में।

*   *   *

अत्याचारी, साधु,
निस्व, राजा, पंडित, शठ
ऊँच-नीच के भेद-भाव को भूल हृदय से
सोते हैं, हे साम्यवाद के आदि-प्रवर्तक !
एक साथ तेरी कठोर गोदी में सुख से।

*   *   *

जिनके यौवन के प्रदीप में कितने प्रेमी
जले शलभ-से आकर,
सुर-ललनाएँ जिनकी देख अनिंद्य माधुरी
चक्कर खा गिरती थीं,
जिनने सप्त खंड वसुधा को कर डाला था ;
जिनके सीमा-हीन, सुखद, कल्पना-सिंधु से
निकले 'माघ', 'किरात', 'भट्टि', 'नैषध', 'कादंबरि',
'अभिज्ञान शाकुंतल'-ऐसे रत्न मनोहर।
जो स्वदेश के हैं गौरव
मा सरस्वती के
कंबु-कंठ के हार, जाति के उज्ज्वल जीवन।
आसागर महिपाल मौर्य, गुप्तादि कहाँ हैं ?
वैजयंति जिनकी उड़ती थी
नगपति की गगनस्पर्शी चूड़ा पर !
जिनके बल पर गर्व किया करते थे सुर-नर,
रज-कण !

बता कहाँ तूने है उन्हें छिपाया
जल-बुद्बुद-से कहाँ हो गए लोप बेचारे ?

*   *   *

बैठ रामगिरि की चूड़ा पर—स्फटिक-शिला पर,
वर्षा-ऋतु के प्रथम दिवस को
स्निग्ध-वृक्ष छाया में
एक विरह-व्याकुल कविवर ने मेघ मंद्र-सा
गाया था जो विरह गान, वह फैल गया था
यक्षपुरी की उस वियोग-विधुरा-रमणी तक,
बजा रही थी जो कंकण-ध्वनि पर कंका को
अपने सुख के स्वप्न-सदृश्य चारु उपवन में।
शार्दूल-विक्रीत की वह ध्वनि-प्रतिध्वनि
टक्कर खाती फिरती है अब तक व्याकुल हो
अंतस्तल के प्राचीरों से।
किंतु नहीं वह गायक होता
पथिक, दृष्टि-पथ का, निर्मम ?
रज-कण !
क्यों तूने इस सुखद सुमन का
मसलकर मिला दिया रे नीच ! धूलि मे निर्दयता से ?
बता, छिपाया कहाँ उसे तूने, जिसका है याद दिलाता ताजमहल
हो अटल सत्य-सा खड़ा भूमि के एक प्रांत में ?
बता, कहाँ है वह प्रेमी सम्राट् ?
शरत्-राका-सा जिसका
स्वच्छ स्नेह, शीतल होकर, मर्मर-पत्थर बन
खड़ा हुआ है ताजमहल का रूप ग्रहण कर ?

*   *   *

कहाँ गए वे धर्म-प्राण बालक,
जिनके होठों पर
उषा खेलती थी, आँखों में
खड्ग खींचकर धर्मनाशकों को नृशंसता
थिरक रही थी ?
बता, चोर ! क्यों चीर जगत के व्यथित हृदय को
चुरा लिए न-जाने कितने दुर्लभ वैभव !
रक्खा कहाँ छिपाकर, कृपया हमें बता दे;
लेकर तेरा रूप उन्हें हम खोजेंगे, या
उनमें ही मिलकर जीवन को सफल करेंगे।

एकतारा से—

किंतु निर्मम सिकचों को काट नहीं वह जा सकता है कहीं ;
कल्पना हो जितनी स्वच्छंद, रहेगी उसकी मिट्टी यहीं।
सोच ले, बंदी ने भी प्रिये, त्यागकर सुख, जीवन-आधार
न त्यागा भावों का उन्मेष, न त्यागा करना जी-भर-प्यार।
हृदय है अंधकार में बंद, घिरा पंजर से चारो ओर ;
तड़पता ही रहता है सदा, भाव की खाकर मार कठोर।
नयन ने देखा तेरा चित्र, हृदय ने किया मचलकर प्यार ;
बिका मन जाकर तेरे हाथ, और तन बैठा सब कुछ हार ;
इसे कहते हैं प्रभु की मार, लुटा मंदिर में आकर भक्त ;
हुआ रवि की किरणों पर आज अभागा कंज हाय अनुरक्त !

आँसू

हे मेरी आँखों के आँसू ! हे इस जीवन के इतिहास !
छलक पड़ो, मत रहो अंत तक उमड़े इस दुखिया के पास।

हे करुणा के चिह्न ! अहो अभिलाषा की नीरव-भाषा !
मत छलको, है टँगी हुई तुम पर ही मेरी शुभ आशा।
हृदय-वेदना के परिचायक ! निराधार के हे आधार !
अंतस्तल को धोनेवाले ! हे मेरे सुमूक उद्गार !
हे मेरी असंख्य भूलों के मूर्तिमान सच्चे अनुताप !
शीतल करते रहो सदा इस दग्ध हृदय का भीषण ताप।
हे कितनी घटनाओं की स्मृति ! हे मेरी आँखों की लाज !
क्या जानें क्या तुम्हें छलकता देख कहेगा लुब्ध समाज ?
कितने स्नेह, शोक के हो उपहार-तुल्य तुम मेरे पास ;
बात-बात में यों मत छलको, उठ जावेगा फिर विश्वास।
बल न उठे सहसा, जिससे वह बना रहे सुखदायक शांत ;
रक्खा है प्रज्वलित प्रेम को तुम में डुबा, अहो उद्भ्रांत !
बार-बार इस नीरस जग को अपना रूप न दिखलाओ ;
उषाकाल के तारागण-से इन नयनों में छिप जाओ।
हे मेरे इस जीवन-भर की कठिन कमाई ! छिपे रहो ;
आवश्यकता नहीं तुम्हारी आई, भाई, छिपे रहो।
नहीं सफाई देने की बारी आई है, छिपे रहो ;
नहीं झलक अब तक प्रियतम ने दिखलाई है, छिपे रहो।
यों ही ढलक पड़ोगे, तो मिट्टी में मिल जाओगे यार !
"लोचन-जल रहु लोचन-कोना" यही विनय है बारंबार।

हौंस

उस शारदीय रजनी में मदिरा-सरिता के तट पर
मैं था उदास बन बैठा अंतर में आह छिपाकर।

भावों की लहरें उठतीं कविता का कल-कल स्वर था;
नीरव वीणा लेकर मैं उन्मत्त बना कविवर था।

वह जोड़ रहा था बैठा, अपने गीतों की कड़ियाँ;
मैं इधर पिरोता जाता, पगली आँसू की लड़ियाँ।
शीतल शशि-कर मिश्रित कर मद की तीव्रता मिटाता;
फिर भर नयनों के प्याले वह मुझे पिलाता जाता।

घूँघट दे सुंदर मुख पर, कुछ चिंतित-सी सकुचाई;
सुख की अस्थिर घड़ियों-सी तू मेरे सम्मुख आई।
जो छलक पड़ी थी मदिरा मेरे अंतर में आकर;
जिसके सुवास से अलकें रह जाती थीं बल खाकर।

जो इन आँखों को पागल कर डाला था छन-भर में;
वह तेरे इन अधरों पर खेली मुस्कान-लहर में।
ज्योत्स्ना इठलाती सी है कुछ मूक-गिरा में कहकर;
झिलमिल-झिलमिल करती थी सरिता के वक्षःस्थल पर।

डूबती और उतराती व्याकुल आँखों के जल में;
उसकी छाया पड़ती थी मेरे इस अंतस्तल में।
रजनी-गंधा की मादक लेकर सुगंध मुस्काता;
मैं और अनमना, होता जब-जब मलयानिल आता।

इस अलसानी सुषमा पर तू लट्टू थी तन-मन से;
सवर्षण-सा होता था, भावुकता बालापन से।
मैं लुटा आह! जाता था इस अनुपम भोलेपन से;
इन कवितामय भूलों पर, इस भाव-हीन चितवन पर।

चंद्रिका अँधेरी का ले, बुनकर धुप-छाँही जाली
फिर तेरी इन आँखों पर मैंने धीरे से डाली।
सरिता का चुंबन करता छाया स्वरूप से अंबर;
तू विहँस उठी लज्जित हो मेरी इस व्याकुलता पर।

हा ! किसने छिपकर छेड़ा इस वीणा के तारों को;
उन्मत्त कर दिया किसने इन नीरव झंकारों को।
तारों के द्रुत कंपन में मेरा हृदय - स्पंदन है;
इस कोमल स्वर-लहरी में अव्यक्त आह ! क्रंदन है।
शोभा समेटकर सारी अपने आँचल में लेकर
रजनी जाती थी रोती कोयल के स्वर में जी-भर।
यह तारकावली उसकी अलकों के हैं च्युत मोती ;
बह गई शून्य में मानो इनको विभोर हो बोती।
निद्राभिभूत कर जग को ज्योत्स्ना से और पवन से ;
शशि चरा रहा है मृग को, बदली में छिप गोपन से।
प्रातः-समीर धीरे से जा चूम-चूम कलियों को
है लुला जगाता डाली निद्रित, चचल, अलियों को।
जब तक प्राची में आकर ऊषा न गुलाल बिखेरे,
जब तक न द्विजों के पंखों पर वह कोमल कर फेरे,
जब तक पंकज-दल पर से ढुलकें न ओस की बूँदें,
जब तक न पद्मिनी अपनी विकसित पंखुड़ियाँ मूँदें,
जब तक न घोर निद्रा में जाग्रत की विद्युत् फैले,
जब तक न प्रभा में डूबे हे प्रिये ! क्षितिज मटमैले,
स्वर-लहरी खेल रही है जब तक कवि की वीणा पर,
प्लावित करने को जग को झरता गीतों का निर्झर,
जब तक मदिरा की सरिता है छलक रही मदमाती,
जब तक मेरी स्मृति-तरणी डूबती और उतराती।
मेरे सुख की सपना-सी तब तक तो तू इस तट पर
बैठी रह, तुझे पिलाऊँ अपने हाथों से भर भर।
इतना कि बने पागल हम, भूलें अपने को छन-भर ;
हो नाश हमारा पूरा टूटी प्याली मदिरा पर।

सिकता का कुसुम-बिछौना, चंदोआ नील-गगन को ;
फानूस दीपमाला हम समझें निशिपति, उडुगण को।
नव-कलियों का नाटक हो, हम होवें राजा-रानी ;
फिर पटाक्षेप होने पर रह जावे यही कहानी।

नवयुग-काव्य-विमर्श

श्रीमती महादेवी वर्मा एम्० ए०

५—महादेवी वर्मा

[श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ विक्रमीय में, फ़र्रुख़ाबाद में, हुआ। आपके पिता का नाम बाबू गोविंदप्रसाद वर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी० और माता का श्रीमती हेमरानीदेवी है। आपके विचार शिक्षा के संबंध में बड़े ऊँचे हैं। आप लड़कियों की शिक्षा को उन्नत करने में बड़ा प्रयत्न करते थे। आपके दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। श्रीमती महादेवीजी का प्रारंभिक शिक्षा इंदौर में हुई। आपने वहाँ छठे दर्जे तक पढ़ा। घर पर आपने पेंटिंग, संगीत आदि की भी शिक्षा प्राप्त की। संवत् १९७३ विक्रमीय में, ९ वर्ष की उम्र में, आपका विवाह डॉ० स्वरूपनारायण वर्मा के साथ हुआ। आप संवत् १९७७ विक्रमीय में शिक्षा प्राप्त करने प्रयाग आईं। उसी वर्ष आपने मिडिल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। संवत् १९८१ में आपने इंट्रेंस पास किया। इस परीक्षा में आप संयुक्तप्रांत के विद्यार्थियों में प्रथम आईं। इसके फल-स्वरूप आपको छात्र-वृत्ति और हिंदी-विषय 'तमीज़' प्राप्त हुई। दो वर्ष के बाद इंटर-मीजिएट और संवत् १९८५ में बी० ए० की परीक्षा संस्कृत और फ़िलासफ़ी लेकर पास की। इस वर्ष क्रास्थवेट-गर्ल्स कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा में आठ लड़कियाँ शामिल हुई थीं, उनमें आपका प्रथम स्थान रहा। इसके बाद आपने एम्० ए० में पढ़ना प्रारंभ किया। एक वर्ष पढ़ने के अनंतर आपका स्वास्थ्य ख़राब हो गया, इस कारण एक वर्ष के लिये पढ़ाई स्थगित कर देनी पड़ी। दूसरे वर्ष आपने संस्कृत में एम्० ए० किया।

बचपन में, आप तुकबंदियाँ बनाया करती, और उसे फाड़कर

फेंक दिया करती थीं। ज्यों-ज्यों आपकी शिक्षा उन्नत होती गई, त्यों-त्यों आपकी कविता में भी प्रौढ़त्व आने लगा। आपकी प्रारंभिक कविताएँ 'चाँद' में प्रकाशित हुईं। परंतु फिर अन्य पत्रों—'माधुरी', 'सुधा', 'मनोरमा' आदि—में छपीं। आप छायावाद की प्रसिद्ध कवयित्री हैं। वर्तमान हिंदी-काव्य-साहित्य में आपका विशेष स्थान है। आपकी कविताओं में वेदना और अनुभूति का जो सम्मिश्रण पाया जाता है, वह भावुक और हृदयवाले व्यक्तियों को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। आप जो कविता एक बार लिख लेती हैं, फिर उसे ज्यों-का-त्यों रहने देती हैं। समय-समय पर आपकी कविताओं के लिये पुरस्कार और प्रशंसा-पत्र भी मिले हैं। 'मेरा जीवन'-नामक कविता पर आपको चाँदी का एक कप भी मिल चुका है। आपकी कविताओं के चार संग्रह—'नीहार', 'रश्मि', 'सांध्य गीत'—प्रकाशित हो चुके हैं। 'नीरजा'-नामक पुस्तक पर हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से आपको ५००) का 'सेकसरिया-पारितोषिक', महात्मा गांधी के सभापतित्व में, इंदौर-सम्मेलन में, प्राप्त हो चुका है। इस समय आप प्रयाग-महिला-विद्यापीठ की प्रिंसिपल और 'चाँद' की संपादिका हैं।]

श्रीमती महादेवी वर्मा हिंदी के नवीन काव्य-जगत् की प्रधान कवयित्री हैं। छायावादी कवियों में सबसे अधिक अनुभूति आपकी रचनाओं में पाई जाती है। रहस्यवाद के अनुरूप आपकी रचनाएँ विशेष महत्त्व की हैं। श्रीमती महादेवीजी का हृदय भी स्त्री-स्वभाव-सुलभ है। कोमलता, मधुरता, वेदना, पीड़ा आपके हृदय की प्रधान वस्तु है। इन्हीं वस्तुओं का प्रतिबिंब रचनाओं में पूर्णतया आभासित होता है। श्रीमती वर्मा की काव्य-रचना का विकास क्रमशः हुआ है। बाल्य-काल की रचनाओं से ही यह आभासित होता था कि इनमें भावुकता अंतर्हित है, जो समय

पाकर विकसित होगी और, हुआ भी ऐसा ही। आपकी कविता का श्रीगणेश 'चाँद' से होता है। 'चाँद' के द्वारा ही आप हिंदी-संसार में अपनी प्रतिभा का चमत्कार प्रकट करने में समर्थ हुईं, शिक्षा का ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया, भाव, विचार और शैली में ज्यों-ज्यों प्रौढ़ता आती गई, त्यों-त्यों काव्य का अंतर्जगत् भी अनुभूति-प्रधान होता गया। 'रश्मि' में 'पपीहे के प्रति' और 'अलि से' आपकी प्रारंभिक रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में यद्यपि अनुभूति का वह स्वरूप दिखाई नहीं देता, जो अन्य कविताओं में पाया जाता है, किंतु मधुरता और आकर्षण के सौंदर्य की सुंदर झलक है, और रहस्यवाद की एक ऐसी पुट है, जिसका विकसित रूप अन्य कविताओं में पूर्ण रूप से आभासित होता है। इनमें संगीत का समावेश है। आपका विचार है कि कविता हृदय की एक अनुभूति है। पालिश करने से उसका स्वरूप परिवर्तित हो जाता है। इसी-लिये आप जो रचनाएँ लिखती हैं, एक ही बार लिखती है, उसे 'संशोधन', 'खराद' और 'पालिश' की कसौटी पर नहीं कसतीं। यही कारण है कि उनमें कृत्रिमता का आभास नहीं मिलता, और वे हृदय से उत्पन्न भावों और अनुभूतियों की एकरूपता प्रदर्शित करती हैं। महादेवीजी का संसार वेदना का है, पीड़ा का है, और निराशा का है। वेदना, निराशा और पीड़ा से उनका हृदय परिपूर्ण है, इसी से उनकी अनुभूति में एक ऐसी मधुरता और हृदय को स्पर्श करनेवाली भावना है, जो प्रभावित करती है। 'नीहार' और 'रश्मि'-नामक दोनों पुस्तकों में कवयित्री के निराशा-पूर्ण जीवन की अनुभूति प्रदर्शित होती है। उनका हृदय किसी अभाव का अनुभव करता है, उसी की खोज में वह उन्मत्त है। उनका 'मूक मिलन', 'मूक प्रणय' मीराबाई के 'पिय-मिलन' के समकक्ष है। मीरा की उपासना साकार थी, वह गिरधरगोपाल की उपासिका थीं, और उनके सामने एक

साकार रूप था, किंतु महादेवीजी की उपासना निराकार है। वह निराकार की कल्पना करती हैं, किसी अभाव का वह अनुभव करती हैं, किंतु वह अभाव अरूप है, उसका कोई निश्चित रूप नहीं। पीड़ा और धड़कन की पूर्ति कैसे हो सकती है, वह अभाव सीम है या असीम, शायद वह स्वयं इसे नहीं जानतीं। 'सूनेपन' में 'आँसुओं' की माला पिरोने में उन्हें संतोष मिलता है। इसीलिये वह स्वयं कहती हैं—

> अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली;
> प्राणों का दीप जलाकर करती रहती दीवाली।

जिस प्रकार मीराबाई ने वैष्णव-काल में अपनी कल्पना और विरह-वेदना का एक नवीन संसार निर्माण किया था, और हिंदी-साहित्य में पीड़ा, वेदना और अनुभूति का संदेश दिया था, उसी प्रकार श्रीमती वर्मा भी इस छायावाद के युग में अपना गूढ़-तम अंतर्विभूति की अनुभूति को प्रदर्शित करके ऐसा संदेश दे रही हैं, जो जीवित है, जाग्रत् है, और दीप्तिमय है। वेदना की प्रधानता किसी भी कवि की कविता में इतनी नहीं, जितना श्रीमती महादेवी की कविताओं में पाई जाती है। करुण रस से ओत-प्रोत पंक्तियाँ और भावनाएँ अंतस्तल को चीरकर अपनी स्थिति स्थिर करती हैं। इस वेदना, विरह और निभृत मिलन में सहानुभूति एवं पीड़ा का ऐसा मिश्रण है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा काव्य-मर्मज्ञों को अपनी ओर सहानुभूति-पूर्वक आकर्षित कर लिया है।

श्रीमती महादेवी वर्मा स्वयं काव्य-संबंध में 'रश्मि' में लिखती हैं—"मेरे लिये तो मनुष्य एक सजीव कविता है। कवि की कृति तो उस सजीव कविता का शब्द-चित्र-मात्र है, जिससे उसका व्यक्तित्व और संसार के साथ उसकी एकता जानी जाती है। वह एक संसार में रहता है, और उसने अपने भीतर एक और इस संसार से अधिक

सुंदर, अधिक सुकुमार संसार बना रक्खा है। मनुष्य में जड़ और चेतन दोनो एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध रहते हैं। उसका बाह्याकार पार्थिव और सीमित संसार का भाग है, और अंतस्तल अपार्थिव, असीम का—एक उसको विश्व से बाँध रखता है, तो दूसरा उसे कल्पना द्वारा उड़ाता रहना ही चाहता है।" कवयित्री का प्राण और मन अपने ही संसार में विचरण करता है, जो असीम है, वहीं कल्पना और अनुभूति का जन्म होता है। यही कल्पना और अनुभूति की दीपावली से सूनेपन का अँधेरा प्रकाशमय होता है। कवयित्री 'छायावाद'-शब्द की ज़ोरदार समर्थक हैं। बाह्य रूप से भाषा का रूप और होता है, किंतु आंतरिक भाषा की गूढ़ता कविता में अंत-र्हित होती है। एक स्थान पर छायावाद के समर्थन में आप लिखती हैं—"सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छंद छंद में चित्रित उन मानव-अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त ही था, और मुझे आज भी उपयुक्त ही लगता है।" कितने ही प्राचीनतावादी या रूढ़िवादी छायावाद को व्यंग्यात्मक अर्थ में प्रयुक्त करते हैं, किंतु छायावाद की परिभाषा श्रीमती वर्मा के कथनानुसार उपयुक्त है, और रहस्यवाद भी इसी का रूपांतर-मात्र है। केवल नाम में अंतर है, किंतु अर्थ और भाव में दोनो की समानता है।

श्रीमती वर्मा का अनुराग बाल्य-काल से ही भगवान् बुद्ध के प्रति है, इसलिये बुद्ध का दर्शन और बाह्य संसार के प्रति निराशा की भावना उनके मन में आ जाना स्वाभाविक-सा है। दुःख क्या है, उसका काव्य से क्या संबंध है, इसको क्रिवासत्री वह अंतश्चक्षुओं से देखती हैं, और जीवन को एक सूत्र में बाँधने के उपयुक्त समझती हैं। दुःख को अपनाना, उसे प्रसन्नता के साथ निराकार की कल्पना में समावेश कर देना ही श्रीमती वर्मा कवि का मोक्ष समझती हैं।

वह संसार में दुख-सुख की फ़िलासफ़ी को एक नैतिक दृष्टि-कोण से देखती हैं। उनका कथन है—"दुःख मेरे निकट जीवन का एक ऐसा काव्य है, जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमे चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किंतु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाए बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परंतु दुख सबको बाँटकर—विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को इस प्रकार मिला देना, जिस प्रकार एक जल-बिंदु समुद्र में मिल जाता है, कवि की मोक्ष है।" इसमें संदेह नहीं कि दुख भी एक तपस्या है, दुखों की अनुभूति ही मनुष्य की आत्मा को बलवती बनाती है, और उसे अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता देती है। उपास्य देव की आराधना में जितनी ही दुःख की अनुभूति होती है, उतनी ही आत्मा उपास्य देव के निकट पहुँचती जाती है। श्रीमती वर्मा का दुःखवाद इसी प्रकार का है, और उनकी भावना उपास्य देव के समीप पहुँचती आ रही है। असीम दुःख का अंतिम परिणाम आत्मानंद होता है। दुःख की हिलोरों में आत्मा को अनुभूति होती है, और उसे उन दुखों में सुख के दर्शन होते हैं। श्रीमती वर्मा की 'नीहार' और 'रश्मि' की रचनाओं में दुःखवाद की भावना इतनी अधिक है कि ऐसा जान पड़ता है कि कवयित्री अपने लक्ष्य तक पहुँचने में व्याकुल है। किसी खोई हुई वस्तु की वह खोज में है, इसके लिये वह अपनी कल्पनाओं और वेदनापूर्ण अनुभूतियों का एक रूपक प्रस्तुत कर देती है। 'नीहार' और 'रश्मि' की रचनाओं के संबंध में प्रसिद्ध कलाकार श्रीरायकृष्णदास का कथन है—"श्रीमती महादेवी वर्मा हिंदी-कविता के इस वर्तमान युग की

वेदना-प्रधान कवयित्री हैं। उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-वेदना है। कवि की आत्मा मानो इस विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी दृष्टि से, विश्व की संपूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनंत, अलौकिक चिर सुंदर की छाया-मात्र है। इस प्रतिबिंब जगत् को देखकर कवि का हृदय उसके सलोने बिंब के लिये ललक उठा है। मीरा ने जिस प्रकार उस परम पुरुष की उपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी-जी ने अपनी भावनाओं में उसकी आराधना निर्गुण-रूप में की है। उसी एक स्मरण, चिंतन एवं उसके तादात्म्य होने की उत्कंठा महादेवीजी की कविताओं के उपादान हैं। उनकी 'नीहार' में हम इस उपासना-भाव का परिचय विशेष रूप में पाते हैं। 'रश्मि' में इस भाव के साथ ही हमें उनके उपास्य का दार्शनिक 'दर्शन' भी मिलता है।"

किंतु श्रीमती महादेवी वर्मा जीवन-भर आँसुओं की माला गूँथने की पक्षपातिनी भी नहीं हैं। उनका ऐसा स्वप्न है—"जिस प्रकार जीवन के उषाकाल में मेरे सुखों का उपहास-सा करती हुई विश्व के कण-कण से एक करुणा की धारा उमड़ पड़ी है, उसी प्रकार संध्याकाल में जब लंबी यात्रा से थका हुआ जीवन अपने ही भार से दबकर कातर क्रंदन कर उठेगा, तब विश्व के कोने-कोने में एक अज्ञातपूर्व सुख मुस्किरा पड़ेगा।" आपके इस कथन की कुछ पुष्टि 'नीरजा'-नामक काव्य-संग्रह से होती है। 'नीरजा' महादेवीजी की अभिनव और सुंदर कृति है। गीति-काव्य की यह अभूतपूर्व रचना है। थोड़ा-बहुत जो अभाव रह भी गया था, वह उनके 'सांध्य गीत' में दूर हो गया है। गीतों में लय, ध्वनि, संगीत का इतना सुंदर सम्मिश्रण है, जो हृदय को अपनी ओर खींच लेता

है। काव्य का संगीत से घनिष्ठ सबंध है। काव्य का संगीतमय होना वैसा ही है, जैसे आत्मा की पुलक-प्राप्ति। 'नीरजा' और 'सांध्य गीत' में श्रीमती वर्मा की प्रतिभा का एक ऐसा चमत्कार प्रदर्शित हुआ है, जिसका कुछ अभाव 'नीहार' और 'रश्मि' में प्रदर्शित होता है। अनुभूति की आभा, संगीत के सम स्वर की व्यंजना 'नीहार' और 'सांध्य-गीत' की विशेषता है। 'सांध्य गीत' में महादेवीजी का दुःखवाद पवित्र प्रणय में परिवर्तित हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि निराकार की कल्पना करते-करते उन्हें अपने अभाव का एक झलक दृष्टिगोचर हुई है, और विह्वलता तथा आत्मानंद का उन्हें अनुभव हो रहा है। केवल दुःखवाद की घनीभूत पीड़ा और वेदना का करुण क्रंदन ही 'नीरजा' और 'सांध्य गीत' में प्रतिध्वनित नहीं होता, वरन् साथ-ही-साथ पुलक, विह्वलता, आतुरता और प्रसन्नता की भी झलक दृष्टिगोचर होती है। जहाँ पहले उनका आहें ओठों की ओटों में सोती थी, और अपने सर्वस्व को दीवानी चोटों में ढूँढ़ती थीं, वहाँ अब वे अपनी चिर-मिलन यामिनी की प्रतीक्षा करती हैं। जहाँ वे शून्य में उच्छ्वासें भरकर विरह-रागिनी का आलाप करती थीं, वहाँ वे रजनी को संबोधन करके कहती हैं कि अब उर-कंपन से विरह-रागिनी न बजेगी। बस, यही अंतर 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', और 'सांध्य गीत' की कविताओं में पाया जाता है। यही महादेवीजी की कविताओं का क्रमिक विकास है, और इसी विकास के साथ उनकी प्रतिभा एवं अनुभूति और भी विकसित होती चली जा रही है। और, ऐसी आशा दिखाई देती है कि अभी उनका विकास रुकेगा नहीं, और संभवतः उनकी भावना साकाररूप से उनके अनंत प्रिय मिलन का स्वप्न सार्थक हो। श्रीरायकृष्णदासजी ने 'नीहार' की भूमिका में लिखा है—'नीरजा' में 'नीहार' का उपासना-भाव और भी सुस्पष्टता तथा तन्मयता से जाग्रत् हो उठा है। इसमें अपने उपास्य के लिये केवल

करुण अधीरता ही नहीं, अपितु हृदय की विह्वल प्रसन्नता भी मिश्रित है। 'नीरजा' यदि अश्रुमुखी वेदना के कणों से भीगी हुई है, तो साथ ही आत्मानंद के मधु से मधुर भी है। मानो कवि की वेदना, कवि की करुणा अपने उपास्य के चरण-स्पर्श से पूत होकर आकाश-गंगा की भाँति इस छायामय जग को सींच देने में ही अपनी सार्थकता समझ रही है।" राय कृष्णदासजी के ये मार्मिक शब्द 'नीरजा' की रचनाओं के संबंध में सत्य और तथ्य-पूर्ण हैं। इसी की पुष्टि 'सांध्य गीत' में भली भाँति हुई है।

श्रीमती महादेवीजी की रचनाओं को हम केवल दो रूपों में पाते हैं—एक तो वे हैं, जो वेदना-प्रधान हैं, और 'नीहार' एवं 'रश्मि' में सगृहीत हैं ; दूसरी वे है, जो वेदना-प्रधान होते हुए भी आत्मानंद की अनुभूति से पूर्ण हैं, और 'नीरजा' एवं 'सांध्य गीत' में संगृहीत हैं। इसलिये इनकी कविताओं की विशेषता के संबंध में यहाँ कुछ लिखना युक्ति-सगत होगा।

'नीहार' आपका पहला काव्य-संग्रह है। इसकी भूमिका खड़ी बोली के महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने लिखी है। उपाध्यायजी के कथनानुसार 'नीहार' में श्रीमती वर्मा की 'प्रतिभा का विलक्षण विकास देखा जाता है।' इनकी 'सजीव' और 'सुंदर पंक्तियाँ' हृदयस्पर्शी है। 'मार्मिकता' और 'भावुकता' उल्लेखनीय हैं। 'नीहार' वेदना-प्रधान काव्य है। प्रत्येक पंक्ति में पीड़ा और वेदना की मार्मिक व्यंजना आभासित होती है। उसके जीवन में 'सूनापन' ही दृष्टिगोचर होता है। 'सूनेपन' में वह अपनी करुण वाणी के द्वारा अपने उपास्य देव का 'मूक रूप' में आह्वान करती है। आत्मा उपास्य देव का वह असीम संगीत सीखने के लिये आकुल हो उठी है—

गए तब से कितने युग बीत,
हुए कितने दीपक निर्वाण;
नहीं पर मैंने पाया सीख
तुम्हारा-सा मनमोहन गान।

कितने ही युग बीत गए। उस असीम संगीत को सीखने की धुन में कितने ही दीपक (आत्मा) निर्वाण को प्राप्त हुए, किंतु फिर भी मेरी आत्मा अभी रिक्त है। उसे उसी निर्वाण-प्राप्ति की मधुर लय सीखने की इच्छा है। उपास्य देव के लोक में वेदना का नाम नहीं है, अवसाद की रूप-रेखा नहीं है, किंतु जिसने मिटने का स्वाद नहीं जाना, वह जलने के महत्त्व को नहीं जान सकता। दीपक के ऊपर पतिंगे निछावर होते हैं, उन्हें मिटने में ही स्वाद मिलता है, इसीलिये उन्होंने जलने का महत्त्व समझ लिया है—

ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद;
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद।

कितनी वेदना-पूर्ण पंक्तियाँ हैं। कवयित्री की धारणा है कि उसकी करुणा का उपहार यही मिलेगा कि अमरों के लोक में निवास होगा, किंतु वह इसे नहीं, वरन् मर मिटने के अपने अधिकार को वह सुरक्षित रखना चाहती है—

क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार;
रहने दो हे देव! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।

'चाह', 'सूनापन', 'मेरा राज्य', 'निर्वाण' और 'उस पार' कविताओं

में वेदना की असीम धारा प्रवाहित हुई है। 'अभिमान' रचना की दार्शनिकता बड़ी गूढ़ है।

आलोक यहाँ लुटता है,
बुझ जाते हैं तारागण,
अविराम जला करता है
पर मेरा दीपक-सा मन।

दीपक के समान मन रात-दिन जलता रहता है। दिवा-निशा के क्रमानुसार आलोक और तारागण लुट और बुझ जाते हैं। भावना कितनी गूढ़ है। प्रेमी के हृदय की उस सुन्दर, प्राकृतिक अनुभूति की कितनी मार्मिक व्यंजना है। मन सदैव प्रकाशित रहता है। वह सांसारिकता या दिवा-निशा की कल्पना भी नहीं करता। वह अपने सिद्धांत पर स्थिर है। उसमें अपनेपन की एक झलक है, उसे अपने 'सूनेपन' की उपासना का अभिमान है, उसी में वह अपने निर्वाण का अनुभव करता है—

उनसे कैसे छोटा है
मेरा यह भिक्षुक जीवन,
उनमें अनंत करुणा है,
इसमें असीम सूनापन।

'स्वप्न' कविता भावना और अनुभूति की दृष्टि से बड़ी ही पीड़ामय है। इसका शब्द-विन्यास बड़ा प्रभावशाली है। हृदय पर एक ठेस लग जाती है।

नीरवतम की छाया में छिप सौरभ की अलकों में—
गायक, वह गान तुम्हारा आ मँडराया पलकों में।

'आना', 'निश्चय', 'अनुरोध', 'तब' और 'कहाँ' कविताओं में भी करुण क्रंदन है। वेदना की अभूतपूर्व मधुरता मुखरित हो उठी है। 'फिर एक बार' रचना में जीवन की झिलमिली का दर्शन होता

है। 'मेरा एकांत' और 'मेरा जीवन' रचनाओं में जीवन की क्षण-भंगुरता, निराशा, अस्थिरता और वियोग के संदेश की पुट है, जो हृदय की मार्मिकता प्रदर्शित करती है। 'प्रतीक्षा' कविता की पंक्तियाँ वेदन-पूर्ण हैं। 'उनके' और 'अपने' प्रति कही गई करुण भावना का साकार रूप उपस्थित हो जाता है। 'दीप', 'वरदान', 'स्मृति', 'आँसू की माला' तथा 'खोज' रचनाओं की भाव-व्यंजना अनुभूति और कल्पना की सजीवता की द्योतक है। 'जो तुम आ जाते एक बार' कविता कवि की असीम अधीरता और व्याकुलता का अभिनव उदाहरण है। केवल 'उनके' आ जाने से ही आत्मा को संतोष हो सकता है। केवल इसी की अंतिम साध है।

कितनी करुणा, कितने सँदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग ;
गाता प्राणों का तार-तार
अनुराग-भरा उन्माद-राग।
आँसू लेते वे पद पखार।
हँस उठते पल में आर्द्र नैन,
धुल जाता ओठों से विषाद,
छा जाता जीवन में वसंत,
लुट जाता चिर-संचित विषाद,
आँखें देतीं सर्वस्व वार।

इन पंक्तियों में हृदय की आकांक्षा है, विह्वलता है, और अपनेपन को निछावर कर देने का उन्माद है।

'रश्मि' की कविताएँ भी 'नीहार' की ही भाँति हैं, किंतु इसमें कवि के उपास्य देव का कुछ 'दर्शन' मिलता है। यही इस पुस्तक की विशेषता है। कवयित्री ने पुस्तक के प्रारंभ में, 'अपनी बात' में, अपने दुःखवाद का छोटा, किंतु मार्मिक विश्लेषण किया है। इस

ग्रंथ में प्रथम कविता 'रश्मि' सबसे सुंदर है। इसमें प्रभात का एक अपूर्व-सा चित्र है। जब उषा का अरुण चितवन पड़ते ही विश्व की सारी निस्तब्धता एक अपूर्व संगीत में परिवर्तित हो जाती है, तब मनुष्य का हृदय भी उस संगीत में अपना स्वर मिलाए बिना नहीं रह पाता—उसे भी भूली हुई स्मृति आकर झंकृत कर देती है। कवयित्री ने इसी भावना को बड़ी सुंदरता से चित्रित किया है। काव्य-कला की दृष्टि से इसमें अनोखापन है, ऊँची-से-ऊँची कला इसमें विद्यमान है—

चुभते ही तेरा अरुण बान
बहते कन-कन से फूट-फूट मधु के निर्झर-से सजल गान।
सौरभ का फैला केश-जाल,
करती समीर-परियाँ विहार,
गीली केशर-मद झूमझूम
पीते तितली के नवकुमार
मर्मर का मधु संगीत छेड़ देते हैं हिल पल्लव अजान।

'सुधि' रचना की अनुभूति बड़ी मार्मिक है। संगीत की मधुर धारा का प्रवाह हृदय में आनंद की लहरें उत्पन्न कर देता है। कवयित्री के लिये स्मृति का आना वसंत-आगमन से कम नहीं है। कभी-कभी भूले हुए स्नेह की स्मृतियाँ जीवन को सरस और उर्वर बनाने में समर्थ होती हैं। इस भावना की छाया कविता में सजीवता के साथ प्रकट हुई है—

किस सुधि वसंत का सुमन तीर कर गया मुग्ध मानस अधीर।
वेदना गगन से रजत ओस
चू-चू भरती मन-कंज-कोष,
अलि-सी मँडराती विरह-पीर।
अधरों से झरता स्मित पराग,

प्राणों में गूँजा नेह - राग
सुख का बहता मलयज समीर।

'कौन है ?', 'वे दिन', 'मेरा पता', 'निभृत मिलन', 'मैं और तू' एवं 'उनसे' कविताओं में छायावाद की उत्कृष्ट आभा है। 'उलझन' कविता से - हृदय की मूक वेदना की उलझन में मानवता की सहानुभूति उलझ जाती है। 'मृत्यु' को कवयित्री ने 'प्राणों के अंतिम पाहुन' कहकर अभिवादन किया है, और ऐसा संकेत किया है कि मृत्यु विश्राम देकर नवजीवन के प्रभात में लक्ष्य-पथ पर अग्रसर होने का उत्साह देती है। यह भावना कितनी ममता-रहित है। निराशावाद की असीमता इससे प्रकट होती है। 'स्मृति' की वास्तविक कसक और अनुभूति को कवयित्री ने बड़ी सुंदरता से चित्रित किया है। जीवन में कभी-कभी ऐसा ज्ञात होने लगता है कि जैसे हम कहीं कुछ भूल आए हैं—

कहीं से आई हूँ कुछ भूल।
कसक-कसक उठती सुधि किसकी,
रुकती-सी गति क्यों जीवन की,
क्यों अभाव छाए लेता विस्मृति सरिता के कूल।

'स्मृति' में कितनी अधीरता है, पीड़ा का कितना व्यापक स्वरूप है, यह उक्त पंक्तियों से आभासित होता है। इसी प्रकार 'रश्मि' की प्रायः ऐसी भावनाएँ हैं, जिनका संबंध प्रकृति से है। केवल दुःखवाद या निराशावाद ही उनसे नहीं प्रकट होता, वरन् प्राकृतिक वस्तुओं को देखकर कवयित्री के हृदय में कुछ दार्शनिक प्रश्न उठते हैं, और वह विस्मय में अपने को लीन पाती है, तथा उस असीम की खोज करती है, जिसके कारण कण-कण में क्षण-क्षण पर एक परिवर्तन-सा दिखाई पड़ता है।

कवयित्री को यह आभासित होने लगता है कि उपास्य देव का दार्श-

निक 'दर्शन' ही एक ऐसी वस्तु है, जिससे प्रकृति अपना रूप परिवर्तित करने मे समर्थ होती है। इसी 'दर्शन' के प्रतिबिंब की छाया 'रश्मि' की प्रायः समस्त रचनाओं में दिखाई पड़ती है। श्रीमती वर्मा के दुःखवाद का यही विकसित रूप है, और 'रश्मि' में काव्य का यही विकास अनोखा है।

श्रीमती महादेवी वर्मा की 'नीरजा' और 'सांध्य गीत' नई कृति है। 'नीरजा' उक्त दोनो ग्रंथों से अधिक सुखप्रद और अनुभूति-प्रधान है। 'सांध्य गीत' में इस अनुभूति की और भी पुष्टि हुई है। केवल दुखःवाद ही से आत्मा को संतोष नहीं होता, ऐसा मानव की प्रकृति और स्वभाव है। वह दुखःवाद में सुख की छाया का अनुभव करता है, इसी सुख की कल्पना में उसे दुःख की मिठास का अनुभव होता है। 'नीरजा' और 'सांध्य गीत' दुख-सुख की भावनाओं और अनुभूतियों का केंद्र है। इसमें कवयित्री ने अपनी दुख-सुख-मिश्रित अनुभूति की जो धारा प्रवाहित की है, उससे आत्मानंद का अनुभव होता है। कवयित्री के पहले के उद्गारों में पीड़ा है, उसने अपने उपास्य देव के अभाव में वेदना का स्रोत बहाया है, किंतु अब उपास्य देव की उपासना में उसके सौंदर्य का अनुभव भी करने लगी है। अब 'रूपसि, तेरा घन केश-पाश' या 'आ मेरी चिर-मिलन यामिनी' लिखकर विह्वलता और आत्मानंद का परिचय देती है। यह परिवर्तन अत्यंत आकर्षक और हृदय को आनंद-विभोर कर देनेवाला है। राग-रागिनी के तारों से इसका बाह्य रूप ऐसा मधुर बना दिया गया है कि अंतर्जगत् स्वयं ही मुस्किराने लगा है। इनके गीति-काव्य में मधुरता और संगीत की मादकता का अभूतपूर्व आविर्भाव हुआ है। वह स्वयं आत्मानंद का अनुभव करती हैं। तभी तो वह कहती हैं—

एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित,
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत-शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में।
कौन तुम मेरे हृदय में?
गूँजता उर में न-जाने दूर के संगीत-सा क्या?
आज खो निज को मुझे खोया मिला विपरीत-सा क्या?
क्या नहा आई विरह-निशि मिलन मधु दिन के उदय में?
कौन तुम मेरे हृदय मे?

वेदना के मधुर क्रय में किसी को कवयित्री ने पा लिया है, विरह को रजनी मिलन मधु दिन के उदय में स्नान कर आई है, इसमें पूर्ण आत्मानंद का अनुभव होता है। 'रूपसि, तेरा घन केश-पाश' रचना आत्मानंद को मधुर अनुभूति है। 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल' की भावना में कितनी विह्वलता है। वह अपने दीपक (आत्मा) को जलाने के लिये लालायित हैं, क्योंकि इससे प्रियतम का पथ आलोकित होगा। इसमें अपना सर्वस्व निछावर करने की कितनी सुंदर कामना है। अब दुःखवाद का अनुभव नहीं हो रहा है, वरन् उनका आना निश्चय है, इसके लिये वह अपनी आत्मा को प्रस्तुत करती हैं। 'आ मेरी चिर-मिलन यामिनी' में भावना और अनुभूति का सौंदर्य फूट पड़ा है। प्रेम-विह्वलता को सृष्टि बड़े अपूर्व ढंग से हुई है। वह आँसुओं से हृदय को पिघला देना उचित नहीं समझती, पपीहे का करुण क्रंदन नहीं सुनना चाहतीं। लोचन अलसाए हैं, किंतु अपलक हैं। एक लघु क्षण अनंत के समान हो गया है। अब सूनेपन में डर-कंपन से विरह-रागिनी न बजेगी, क्योंकि चिर-मिलन यामिनी का आह्वान ही अधिक सुखकर है।

आ मेरी चिर-मिलन यामिनी!
परिमल भर लावे नीरव घन,

गले न मृदु उर आँसू बन-बन,
हो न करुण पी-पी का क्रंदन,
अलि, जुगनू के छिन्न हार को पहन न विहँसे चपल दामिनी।
अपलक हैं अलसाए लोचन,
युक्ति बन गए मेरे बंधन,
है अनंत अब मेरा लघु तृण,
रजनि ! न मेरे उर-कंपन से आज बजेगी विरह-रागिनी।
तम में हो चल छाया का लय,
सीमित की असीम में चिर लय,
एक हार में हो शत-शत जय,
सजनि ! विश्व का कण-कण मुझको आज कहेगा चिर-सुहागिनी।

अब वह 'विरागिनी' से 'चिर-सुहागिनी' होने की कल्पना करती हैं। यही आत्मानंद और सौंदर्य की अनुभूति का विकसित स्वरूप है।

कवयित्री 'मतवाली' है, और उपास्य देव 'अलबेला'-सा है, यह भावना विह्वलता की द्योतक है। उन्माद अनुभूति की अभिव्यक्ति का मादक स्वरूप है। कवयित्री को 'पतझर' में 'मधुवन' से सुख प्राप्त होता है। सुख-दुख का सम्मिलित रूप ही चिरानंद है। करुण और मधुर मिलकर कण-कण को करुण, मधुर और सुंदर बना देते हैं।

जग करुण-करुण, मैं मधुर-मधुर,
दोनो मिलकर देते रज-कण चिर करुण मधुर सुंदर-सुंदर।

'लय गति मदिर, गति ताल अमर', 'तुम सो जाओ, मैं गाऊँ', 'प्राण-पिक प्रिय-नाम रे कह', 'लाए कौन सँदेश नए घन' में भी वही पुलक, वही विह्वलता और वही आत्मानंद है। इस प्रकार 'नीरजा' की रचनाएँ इतनी मार्मिक हुई है कि उनका भव्य रूप विशेष रूप से निखरा हुआ है। नई-नई उपमाओं और रूपकों से

अलंकृत होते हुए सजीवता और सुघरता द्विगुणित हो गई है। प्रवाह की मधुर धारा हिलोरें लेती हुई व्याप्त है।

'नीरजा' में जिस विह्वलता और व्याकुलता का प्रस्फुटन हुआ है, उसी की पुष्टि 'सांध्य गीत' में हुई है। 'सांध्य गीत' आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है। गीतों का इतना सुंदर सग्रह किसी भी कवि का नही है। श्रीमती वर्मा के मनोमोहक गीत प्राणों में जीवन देनेवाले हैं। ये हिंदी-संसार और अनुभूति प्रधान काव्य के लिये नई चीज़ हैं। इन गीतों की लोक-प्रियता इसी से सिद्ध है कि पिछले वर्ष और आज भी नौसिखिए जितने गीत लिख रहे हैं, उन पर श्रीमती वर्मा के गीतों का पूर्ण प्रभाव जान पड़ता है। वही छंद, वही भाव और क़रीब-क़रीब वैसी ही भाषा। मेरी राय में वर्तमान नवीन कवियों में महादेवीजी की भाँति सरस, सुंदर और अनुभूति-पूर्ण गीत लिखने में कोई दूसरा कवि नही समर्थ हुआ।

राग-भीनी तू सजनि, निःश्वास भी तेरे रँगीले।
लोचनों मे क्या मदिर नव
देख जिसको नीड़ की सुधि फूल निकली बन मधुर रव।
झूमते चितवन गुलाबी
मे चले घर खग हठीले
छोड़ किस पाताल का पुर
राग से बेसुध, चपल सपने सजीले नयन में भर,
रात नभ से फूल लाई
आँसुओं से कर सजीले।

कितना सुंदर गीत है। कितना प्रवाह है, कितना कोमल और कितना हृदयस्पर्शी है। संध्या का कवयित्री ने किस सुंदरता से वर्णन किया है। शब्दों का गठन कितना उपयुक्त किया गया है।

कौन आया था, न जाना स्वप्न में मुझको जगाने ;
याद में उन उँगलियों की हैं मुझे पर युग बिताने ।
रात के उर में दिवस की
चाह का शर हूँ ;
शलभ, मैं शापमय वर हूँ ।

इसी प्रकार 'सांध्य गीत' में कितने ही गीत हैं, जो मादकता और अनुभूति से पूर्ण हैं । हमारा विचार है कि इनके गीत हिंदी की वह देन हैं, जो अमर रहेगी । अभी लोगों की समझ में न आवे, न सही, लेकिन उनकी लोक-प्रियता में तो इस समय भी संदेह नहीं ।

श्रीमती महादेवीजी की भाषा सुंदर और स्निग्ध है । संस्कृत-मिश्रित प्रणाली की आप अनुगामिनी जान पड़ती हैं । कहीं-कहीं दो-एक शब्द उर्दू के प्रयुक्त हुए हैं, वह भी कारण-वश । शब्दों के चयन में कुशलता का प्रदर्शन है, कोमलता और मधुरता उसकी विशेषता है । छंदों की रचना में महादेवीजी की प्रतिभा विकसित है । उनकी प्रत्येक कविता नवीन छंदों के तारों से बँधी हुई है । मुक्त काव्य आपने नहीं लिखा । शायद मुक्त काव्य में आपको अधिक विश्वास नहीं । भाषा में एक ऐसा आकर्षण है, जो अपनेपन से युक्त है । भाषा की सुंदरता की विशेषता यह भी है कि यदि भाव किसी की समझ में कहीं नहीं आते, तो भी गति, ताल, स्वर और प्रवाह की मधुरता में उसे आनंद प्राप्त होता है । कर्कश शब्दों का प्रयोग हमें इनकी रचनाओं में कहीं नहीं दिखाई पड़ता, स्वाभाविक शब्दों का प्रयोग ही अधिक मिलता है । शब्दों के विकृत रूप और ठूँस-ठाँस का भान नहीं होता । ऐसा जान पड़ता है कि श्रीमती वर्मा में अनुभूति इतनी बलवती है कि उससे शब्द-चित्र का एक मूर्त स्वरूप उपस्थित हो जाता है ।

छायावादी रचनाओं में वास्तविक छायावाद आपकी रचनाओं

में पाया जाता है। कल्पना थोड़ी, किंतु अनुभूति अधिक है, इसी-लिये छंद प्रायः छोटे हैं, जिसका आनंद थोड़े समय में लिया जा सकता है। यों तो आपकी रचनाएँ प्रायः सुंदर और काव्य के अनुरूप स्निग्ध और भाव-पूर्ण हैं, किंतु उनमें से हम पाँच रचनाएँ नीचे देते हैं—

रश्मि

चुभते ही तेरा अरुण बान !
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर-से सजल गान ।
इन कनक-रश्मियों में अथाह
लेता हिलोर तम-सिंधु जाग ;
बुद्‌बुद से बह चलते अपार
उसमें विहगों के मधुर राग ;
बनती प्रवाल का मृदुल कूल,
जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान ।
नव कुंद-कुसुम-से मेघ-पुंज
बन गए इंद्रधनुषी वितान ;
दे मृदु कलियों को चटक ताल,
हिम-बिंदु नचाती तरल प्राण;
धो स्वर्णप्रात में तिमिरगात,
दुहराते अलि निशि-मूक तान ।
सौरभ का फैला केश-जाल
करतीं समीर-परियाँ विहार,
गीली केसर-मद झूम - झूम
पीते तितली के नवकुमार ;

मर्मर का मधु संगीत छेड़
देते हैं हिल पल्लव अजान!
फैला अपने मृदु स्वप्नपंख,
उड़ गई नींद निशि क्षितिज-पार;
अधखुले दृगों के कञ्जकोष
पर छाया विस्मृत का खुमार।
रँग रहा हृदय ले अश्रु-हास
यह चतुर चितेरा सुधिविहान!

गीत

मैं मतवाली इधर-उधर प्रिय मेरा अलबेला-सा है!
मेरी आँखों में ढलकर छवि उसकी मोती बन आई;
उसके घनप्यालों में है विद्युत-सी मेरी परछाईं।
नभ में उसके दीप, स्नेह जलता है पर मेरा उनमें;
मेरे हैं यह प्राण, कहानी पर उसकी हर कंपन में।
यहाँ स्वप्न की हाट, वहाँ अलि छाया का मेला-सा है!
उसका स्मित लुटती रहती कलियों में मेरे मधुवन की;
उसकी मधुशाला में बिकती मादकता मेरे मन की।
मेरा दुख का राज्य और उसका सुधि के पल रखवाले;
उसका सुख का कोष वेदना के मैंने ताले डाले।
वह सौरभ का सिंधु मधुर जीवन मधु की बेला-सा है।
मुझे न जाना अलि, उसने जाना इन आँखों का पानी;
मैंने देखा उसे नहीं, पद-ध्वनि है उसकी पहचानी।
मेरे जीवन में उसकी स्मृति भी तो विस्मृति बन आती;
उसके निर्जन मंदिर में काया भी छाया हो जाती।
क्यों यह निर्मम खेल सजनि, उसने मुझसे खेला-सा है?

संसार

निःश्वासों का नीड़, निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बंदनवार ।
तब बुझते तारों के निष्प्रभ नयनों का यह हाहाकार
आँसू से लिख-लिख जाता है 'कितना अस्थिर है संसार' !

हँस देता जब प्रात सुनहरे
अंचल में बिखरा रोली,
लहरों की बिछलन पर जब
मचली पड़ती किरण भोली,
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार
छलकी पलकों से कहती हैं 'कितना मादक है संसार' !

देकर सौरभ-दान पवन से
कहते जब मुरझाए फूल,
'जिसके पथ में बिछे, वही
क्यों भरता इन आँखों में धूल ।'
'अब इनमें क्या सार' मधुर जब गाता भौंरों की गुंजार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार' !

स्वर्ण वर्ण से दिन लिख जाता
जब अपने जीवन की हार,
गोधूली नभ के आँगन में
देती अगणित दीपक बार,
हँसकर तब उस पार तिमिर का कहता बढ़-बढ़ पारावार,
'बीते युग पर बना हुआ है अब तक मतवाला संसार' ।

स्वप्नलोक के फूलों से कर
अपने जीवन का निर्माण,
'अमर हमारा राज्य' सोचते
हैं जब मेरे पागल प्राण,
आकर तब अज्ञात देश से जाने किसकी मृदु झंकार
गा जाती है करुण स्वरों में 'कितना पागल है संसार'!

सांध्य गीत

राग-भीनी तू सजनि, निःश्वास भी तेरे रँगीले !
लोचनों में क्या मदिर नव !
देख जिसको नीड़ की सुधि फूट निकली बन मधुर रव !
झूमते चितवन गुलाबी
में चले घर खग हठीले !
छोड़ किस पाताल का पुर
राग से बेसुध, चपल सपने लजीले नयन में भर,
रात नभ के फूल लाई
आँसुओं से कर सजीले !
आज इन तंद्रिल पलों में
उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुंतलों में !
सजनि, नीलमरज भरे
रँग चूनरी के अरुण पीले !
रेख-सी लघु तिमिर लहरी
चरण छू तेरे हुई है सिंधु सीमा-हीन गहरी !
गीत तेरे पार जाते
बादलों की मृदु तरी ले !
कौन छायालोक की स्मृति

कर रही रंगीन प्रिय के मृदु पदों की अक-संसृति !
सिहरती पलकें किए देतीं
विहँसते अधर गीले !

गीत

रूपसि, तेरा घन केश-पाश !
श्यामल-श्यामल, कोमल-कोमल लहराता सुरभित केश-पाश !
नभ-गंगा की रजत-धार में
धो आई क्या इन्हें रात ?
कंपित हैं तेरे सजल अंग,
सिहरा सा तन है सद्यस्नात !
भीगी अलकों के छोरों से चूती बूँदें कर विविध लास !
रूपसि, तेरा घन केश-पाश !
सौरभ-भीना, झीना, गीला
लिपटा मृदु अंजन-सा दुकूल;
चल अंचल से झर-झर झरते
पथ में जुगनू के स्वर्ण-फूल;
दीपक-से देता बार-बार तेरा उज्ज्वल चितवन-विलास !
रूपसि, तेरा घन केश-पाश !
उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है
बक-पाँतों का अरविंद-हार;
तेरी निःश्वासें छू भू को
बन-बन जातीं मलयज बयार,
केकी-रव की नूपुर-ध्वनि सुन जगती जगती की मूक प्यास ।
रूपसि, तेरा घन केश-पाश !

इन स्निग्ध लटों से छा दो तन,
पुलकित अंकों में भर विशाल
झुक सस्मित शीतल चुंबन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल;
दुलरा दो ना, बहला दो ना, यह तेरा शिशु-जग है उदास !
रूपसि, तेरा घन-केश-पाश !

शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !
किसी का दीप निष्ठुर हूँ !

ताज है जलती शिखा, चिनगारियाँ शृंगार-माला;
ज्वाल अक्षय कोष है, अंगार मेरी रंगशाला,
नाश में जीवित किसी की साध सुंदर हूँ !

हो गए झरकर दृगों से अग्नि-कण भी क्षार शीतल;
पिघलते उर से निकल निःश्वास बनते धूम श्यामल;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ !

पलक में रह, किंतु जलती पुतलियाँ आगार होंगी;
प्राण में कैसे बसाऊँ कठिन अग्नि-समाधि होगी;
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मंदिर हूँ !

कौन आया था, न जाना, स्वप्न में मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियों की हैं मुझे पर युग बिताने;
रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ !

शीश पर छाया हुआ है अमर झंझा का वरद कर;
तुहिन पद-तल कुहरमय पथप्रलय रखता अंक में भर;
दूत वासंती न कह मैं अजर पतझर हूँ !

शून्य मेरा जन्म था, अवसान है मुझको सवेरा;
प्राण आकुल के लिये संगी मिला केवल अँधेरा;
मिलन का मत नाम ले, मैं विरह में चिर हूँ !
शलभ ! मैं शापमय वर हूँ !

६—रामकुमार वर्मा

[श्रीरामकुमार का जन्म मध्यप्रदेश के सागर-ज़िले में, संवत् १९६२ विक्रमीय में, हुआ। इनके पिता श्रीलक्ष्मीप्रसादजी सरकारी उच्च पद पर प्रतिष्ठित थे। नौकरी में श्रीलक्ष्मीप्रसादजी को अनेक ज़िलों में घूमना पड़ा। इसलिये इनकी प्रारंभिक शिक्षा मध्यप्रदेश के भिन्न-भिन्न स्थानों में हुई। विशेषकर रामटेक तथा नागपुर के मराठी-स्कूल में इन्होंने मराठी में अपनी शिक्षा के चार वर्ष व्यतीत किए। हिंदी की शिक्षा इनकी माता श्रीमती राजरानीदेवी ने इन्हें घर पर ही दी।

प्रारंभ से ही इनमें प्रतिभा के चिह्न दिखाई देते थे। प्रत्येक कक्षा में इनका नंबर पहला रहता था। इनकी इस प्रतिभा का विकास इंट्रेंस-कक्षा तक काफ़ी अच्छा हो गया। इनमें काव्य की ओर रुचि विद्यार्थी-अवस्था से ही दिखाई पड़ी थी। यह गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामायण बड़े स्वर से पढ़ा करते थे, और कभी-कभी चौपाइयों में अपने इच्छानुसार परिवर्तन भी कर दिया करते थे। सन् १९१८ में, जब यह मिडिल क्लास में थे, इनके एक अध्यापक ने इनकी पुस्तक पर ये पंक्तियाँ लिखी हुई पाई—

ईश्वर, मुझको पास कराओ अब,
और मिठाई खूब-सी खाओ अब।

सन् १९२२ के असहयोग-आंदोलन में इन्होंने स्कूल छोड़ दिया, और प्राइवेट तौर पर पढ़कर साहित्य-सम्मेलन एवं विद्वत्परिषद् की परीक्षाएँ पास कीं। इसी समय, १७ वर्ष की अवस्था में, इन्हें 'देश-सेवा'-शीर्षक कविता पर, कानपुर के श्रीबेनीमाधव खन्ना का ५१)

का पुरस्कार मिला। तभी से इन्हें कविता लिखने में उत्साह मिला। सन् १९२३ ई० में पुनः पढना प्रारंभ किया, और उसी वर्ष इंट्रेंस की परीक्षा पास की। इसके बाद जबलपुर के रॉबर्ट्सन-कॉलेज से, १९२५ ई० में, एफ़० ए० की परीक्षा पास की। फिर यह प्रयाग चले आए, और प्रयाग-विश्वविद्यालय से १९२७ ई० में बी० ए० तथा १९२९ ई० में एम्० ए० की परीक्षा पास की। एम्० ए० की परीक्षा में यह हिंदी लेकर प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए। फिर वहीं, युनिवर्सिटी में, हिंदी के लेक्चरर हो गए।

वर्माजी की हिंदी में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। 'वीर हम्मीर', 'कुल-ललना' और 'चितवन' में इनकी प्रारंभिक रचनाएँ संगृहीत हैं। 'चित्तौड की चिता' ऐतिहासिक और वर्णनात्मक काव्य है। 'अभिशाप', 'अंजलि', 'रूप-राशि', 'निशीथ', 'चित्ररेखा' और 'चंद्र-किरण' में उत्कृष्ट कविताएँ संगृहीत है। इसके अतिरिक्त 'कबीर का रहस्यवाद' और 'साहित्य-समालोचना' दो आलोचनात्मक ग्रंथों की भी आपने रचना की है। 'पृथ्वीराज की आँखे' में एकांकी नाटकों का संग्रह है। आपने 'हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'-नामक बड़ा महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ लिखा है। 'चित्ररेखा' काव्य पर 'देव-पुरस्कार' और 'चद्र-किरण' पर 'चक्रधर-पुरस्कार' प्राप्त कर चुके हे। आप विद्वान् और विचारक हैं। वर्तमान हिंदी के रहस्यवादी कवियों में आपका उच्च स्थान है।]

हिंदी-काव्य-साहित्य में श्रीरामकुमार वर्मा की कृतियों का श्रेष्ठ स्थान है। आप तेरह-चौदह वर्ष से, अनवरत परिश्रम से, साहित्य-सेवा कर रहे हैं। आपकी कविता का क्रमिक विकास बडी सुंदर रीति से हुआ है। सन् १९२० में आपकी पहली कृति 'वीर हम्मीर' प्रकाशित हुई थी। यह एक छोटा तथा ऐतिहासिक प्रबंध-काव्य है, और हरिगीतिका छंदों में लिखा गया है। यद्यपि उत्कृष्ट काव्य का

स्वरूप इस पुस्तक में दृष्टिगोचर नहीं होता, तथापि इसमें इनके भविष्य का उज्ज्वल संदेश अवश्य मिलता है। इसके बाद आपकी 'कुल-ललना' पुस्तक प्रकाशित हुई। यह रीति-काल के लक्षण-ग्रंथों के अनुरूप रची गई है। इसमें भारत की वीर नारियों का चरित्र भाव-पूर्ण शब्दों में चित्रित है। फिर 'चितवन'-नामक पुस्तक प्रकाशित हुई, जो उन दोनो पुस्तकों से भावुकता के दृष्टि-कोण से श्रेष्ठ सिद्ध हुई। इसमें विचारों और भावों की प्रधानता पाई जाती है। कवि ने 'वीर हम्मीर' और 'कुल-ललना' में शब्दों और वाक्यों को सुसंगठित रूप में रखकर ही वास्तविक विचार प्रकट करने की क्षमता दिखाई है। किंतु 'चितवन' में आंतरिक विचारों को भी सुंदरता के साथ प्रकट करने का प्रयत्न किया है। 'चित्तौड़ की चिता' वर्णनात्मक खंड काव्य है। इसमें सरल और सुंदर छंदों में सती पद्मिनी का वर्णन किया गया है।

श्रीरामकुमार वर्मा एक प्रतिभावान् कवि के रूप में इसी रचना द्वारा प्रकट हुए। कवि की वास्तविक कविता का प्रारंभ इसी रचना से होता है। इस पुस्तक से यह भासित होने लगा कि इनमें वह प्रतिभा है, जो कवि के लिये आवश्यक है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आपकी शिक्षा के क्रमिक विकास का काव्य के विकास पर अधिक प्रभाव पड़ा। ज्यों-ज्यों शिक्षा में उन्नति होती गई, त्यों-त्यों कविता में भी भाव और विचारों का विकास होता गया। 'चित्तौड़ की चिता' में छंदों का प्रयोग पूर्व ढंग पर ही हुआ है, किंतु भाव, विचार और चरित्र-चित्रण में नवीनता, मौलिकता एवं विशेषता है। इन रचनाओं में जो नवीनता उत्पन्न हुई, उसका विकास आगे की काव्य-रचना में अधिक हुआ।

'अभिशाप', 'अंजलि', 'चित्ररेखा' और 'चंद्र-किरण' आपकी वे पुस्तकें हैं, जिनमें श्रेष्ठ काव्यत्व का दर्शन होता है। इनमें भाव

और कल्पना की प्रधानता है। इन पुस्तकों को पढ़ने से प्रकट होता है कि कवि की कविता प्रकृति के अंगों को छूती हुई ईश्वर की अनुभूति करना चाहती है। प्रकृति के रहस्य-पूर्ण स्वरूप में उसे प्रेम और सौंदर्य के सिवा कुछ नहीं मिलता। हाँ, उस प्रेम के स्वरूप में निराशा का अंश अधिक है। ऐसा जान पड़ता है कि कवि प्रेम की प्रौढ़ता के लिये निराशा की आवश्यकता समझता है। यदि निराशा न हो, तो प्रेम का स्वरूप नहीं निखरता। प्रकृति के प्रत्येक अंग में कवि का आत्मप्रदर्शन है। यदि प्रकृति न हो, तो कविता प्राण-शून्य-सी दिखाई देने लगे। प्रकृति की मनोहर झाँकी में कवि को उस शांति के दर्शन होते हैं, जिसका निर्माण केवल सौंदर्य से हुआ है। प्रकृति-सौंदर्य की सुकुमार भावना में कवि का काव्य अंतर्हित है। भावना में कल्पना की प्रधानता है। कल्पना की डोरों को पकड़कर वह काव्य के स्वर्गीय विधान तक पहुँचना चाहता है।

'रूप-राशि' कल्पना-प्रधान काव्य है। कवि ने 'रूप-राशि' की भूमिका में स्वयं लिखा है—"कविता में कल्पना मुझे सबसे अच्छी मालूम होती है। वही एक सूत्र है, जिसे पकड़कर कवि इस संसार से उस स्थान तक चढ़ जाता है, जहाँ उसकी इच्छित भावनाओं के द्वारा एक स्वर्ण-संसार निर्मित रहता है। भावना तो इच्छा का तेजस्वी और परिष्कृत रूप है। वह हृदय को केवल वेगवान् बना देती है, किंतु कवि में निर्माण करने की शक्ति कल्पना द्वारा ही आती है। मैं कल्पना का उपासक हूँ...।" एक समालोचक का भी यह कहना ठीक है—"यही कल्पना वर्माजी को निरंतर आगे बढ़ाती चली जाती है।" 'चित्ररेखा' और 'चंद्र-किरण' आपके अनुभूति-प्रधान काव्य हैं। इसमें कल्पना अनुभूति के रूप में प्रदर्शित हुई है।

आपने 'चित्ररेखा' में इस संबंध में लिखा भी है—"मैं पहले कल्पना का उपासक था,.. पर अब अनुभूति मुझे कल्पना से अधिक रुचिकर है। अनुभूति में अपने मन की सारी उमंग प्रवाहित नदी की भाँति एक स्थान पर स्थिर होना नहीं जानती। अन्य साधनों के अभाव में उसके प्रकाशित होने के लिये आँसू की धारा ही पर्याप्त है। ऐसी परिस्थिति मे अंतर्जगत् अपने को खींचकर करुण-रस की परिधि में ले जाता है।" कल्पना और अनुभूति ही कविता का जीवन है। यह जीवन वर्माजी के काव्य में विकसित रूप में पाया जाता है।

हम श्रीरामकुमारजी की कविता को इन दो रूपों में पाते हैं—(१) वर्णनात्मक काव्य और (२) मुक्तक और गीति काव्य।

वर्माजी की वर्णनात्मक रचनाएँ प्रायः इतिहास से संबंध रखनेवाली हैं। वर्णनात्मक कविता दो रूपों में दिखाई पड़ती है। पहली जैसे 'रूप-राशि' की 'शुजा' कविता और 'नूरजहाँ' आदि तथा 'निशीथ' काव्य। इन कविताओं को लिखने में कवि पहले वातावरण तैयार कर लेता है, तब रचना करता है। 'शुजा' कविता में कवि की भावना सुंदरता से प्रस्फुटित हुई है। यह कविता कल्पना-प्रधान है। ढंग मुक्तक काव्य का-सा है, किंतु कविता छंद-विहीन नहीं है। शाहजहाँ के चार पुत्र—दारा, शुजा, और गज़ेब और मुराद—थे। औरंगज़ेब अपने भाइयों को परास्त करने के लिये शुजा का पीछा करता है। शुजा भागता हुआ अराकान क राजा की शरण लेता है, किंतु राजा भी उसे शरण नहीं देता। तब वह दुखी और निराश होकर अराकान के जंगल में विलीन हो जाता है। कवि अराकान से पूछता है—"शुजा कहाँ है?" बस, इसी विचार को लेकर कवि ने कल्पना किया है। विचार और कल्पना की दृष्टि से कविता सुंदर है, किंतु श्रेष्ठ काव्यत्व के अनुरूप यह कविता पूर्ण सफल नहीं है। हाँ, कवि की सहृदयता

से 'शुजा' की तत्कालीन मनोवेदना का चित्रण इस कविता में भली भाँति हुआ है। 'नूरजहाँ' भी वर्णनात्मक कविता है। शुजा से यह रचना विशेष निखरी हुई है। भाव और विचारों की इसमें सुंदर पुट है।

'निशीथ' कवि की वर्णनात्मक शैली का सुंदर काव्य है। इसमें निराशा और प्रेम का अपूर्व सामंजस्य है। कवि की आंतरिक निराशा साथ ही वेदना और करुणा का इसमें सम्मिश्रण है। कवि ने इस काव्य की रचना करके 'बिना निराशा के प्रेम का रूप निखर ही नहीं सकता' की समस्या की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया है। इसमें श्रीसुमित्रानंदन पंत के 'स्नेह-शब्द' के अनुसार 'सजल-सजल कल्पना मूर्तिमती करुणा की तरह मौन अनिमेष दृष्टि से किसी शून्य की ओर झाँक रही है', तथा विरह की अँधियाली आभा में 'करुण कल्पना, दीपावलि' है।

हृदय एक है, उसमें कितनी ओर लगी है आग,
उसे शांत करने को लोचन अश्रु रहे हैं त्याग।
किन-किन रंगों में हँसकर फूलों के दिव्य स्वरूप
हिलते थे उस स्वर्ण-नदी में, जो कहलाती धूप।

कवि के हृदय का यह मार्मिक भाव है। हृदय एक है, किंतु उसमें कितनी ओर आग लगी है। यह वेदना-पूर्ण है। 'कमला' जो निशीथ की नायिका है, उसकी मनोभावना को चित्रित करने में कवि ने मानसिक सहानुभूति से काम लिया है।

आशा और निराशा लड़तीं
सम्मुख बिठा अनंग;
हार-जीत का निर्णय करता
उसके तन का रंग।

कितनी स्वाभाविकता इस छंद में है। नायिका के वक्षःस्थल में

एक लपट नाच रही थी, एक ओर उसके सद्भाव-पूर्ण हृद्धाम को लूट रहा था ; उसके वक्षःस्थल में एक चोट लगी थी । एक भावना छलने के लिये सोने का मृग बनकर आई थी । वह क्या था मोह ! मोह की परिभाषा कवि ने बड़ी सुंदरता और पैनी दृष्टि से अंकित की है । 'निशीथ' में बारह सर्ग हैं । कवि ने बड़ी सरसता के साथ एक छोटी-सी करुण कहानी लिखी है । वर्माजी की वर्णनात्मक कविताओं में 'निशीथ' की कविता सर्वश्रेष्ठ है । इसमें स्थान-स्थान पर उन्माद, वेदना, आशा-निराशा और सुख-दुःख का बड़ा मार्मिक अनुभव होता है । उपमा, उत्प्रेक्षा, अलंकारों की मधुर ध्वनि प्रायः प्रत्येक पंक्ति में मिलती है । कविता को पढ़कर ऐसा जान पड़ता है कि कवि के हृदय में कितनी मादकता और उन्मत्तता है । इस तरह की पुस्तक आज के १५ वर्ष पूर्व रची गई होती, तो कवि की गणना खड़ी बोली के प्रधान कवियों में हो गई होती । किंतु पुस्तक ऐसे समय में प्रकाशित हुई, जब खड़ीबोली का शाब्दिक सौंदर्य काल समाप्त हो चुका है, और भावनाओं तथा विचारों की प्रधानता की स्थापना हो चुकी है । निराशा, वेदना और करुणा से पूर्ण इतने सुंदर काव्य हिंदी में इने-गिने ही हैं ।

वर्माजी के काव्य का दूसरा अंग गीति या मुक्तक है । इसमें कल्पना और भाव से युक्त अनुभूति-पूर्ण कविता की प्रधानता है । कवि की कल्पना बहुत उच्च तथा मार्मिक है । कवि में कल्पना की उड़ान कितनी है, यह बात उसकी 'अंजलि', 'अभिशाप' और 'रूप-राशि' कविता-पुस्तकों से भली भाँति प्रमाणित है । कल्पना के सहारे कवि की भावना अनंत की ओर उड़ी चली जा रही है । सर्वत्र उस प्रकृति-पुरुष में अपने व्यक्तित्व को देखना, आत्मीयता की अनुभूति करना कल्पना के ही आधार पर स्थित है । कल्पना की कामना कवि अपने भावों और जीवन में भी करता है—

मेरे भावों के प्रसून भ।
पहने रगों का परिधान,
मेरे जीवन मे भी आवे
फूलो की मीठी मुस्कान।

कल्पना में वर्माजी अँगरेज़ी कवि-शैली का अनुसरण करते हैं। 'शैली' ने कल्पना-क्षेत्र में अपने काव्य का प्रदीप जलाया है। 'निशीथ' में जितनी निराशा और वेदना है, 'रूप-राशि' में उनकी कुछ न्यूनता हो गई है। कवि की रुचि प्रणय की ओर अग्रसर हुई है। प्रणय की प्रवृत्ति और कल्पना दोनों ने मिलकर काव्य में जीवन उत्पन्न कर दिया है। कवि दुःख की ओर से खिंचकर सुख की ओर आ गया है। अब वह पृथ्वी पर ही स्वर्ग बनाना चाहता है। प्रकृति के अणु-अणु में प्रणय की लहर लहराती हुई देखता है। 'रूप-राशि' में 'ये गजरे तारोंवाले' कविता में कल्पना की सुंदर उड़ान है। अँधियाली रात में तारों का उदय होना कवि-कल्पना के अनुसार फूलों के गुंफित गजरे हैं।—

इस सोते ससार बीच जगकर. सजकर रजनीबाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारोवाले ?
मोल करेगा कौन, सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी;
मत कुम्हलाने दो सूनेपन मे अपनी निधियाँ न्यारी।
निर्झर के निर्मल जल में ये गजरे हिला-हिला धोना;
लहर हहरकर यदि चूमे, तो किंचित विचलित मत होना।
होने दो प्रतिबिंब विचुंबित लहरों ही में लहराना,
लो, मेरे तारों के गजरे, निर्झर स्वर में यह गाना।
यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय ! न मोल करे,
तो फूलो पर ओस-रूप में बिखरा देना सब गजरे।

कवि ने रजनी को युवती-रूप में कल्पित किया है, उसी को संबोधित

करके सुंदर कल्पना की है। आकाश में तारों के उदय होने और जल में उनके प्रतिबिंब पड़ने की साधारण बात को कवि ने काव्योचित स्वरूप प्रदान किया है। 'मिलन', 'ओ समीर, प्रातः समीर' कविताएँ भी कल्पना से ओत-प्रोत हैं। 'अशांत' कविता में कुछ दार्शनिकता है। कवि प्रत्येक वस्तु में अशांति के वातावरण का अनुभव करता है—

हास्य कहाँ है ? उसमें भी है
रोदन का परिणाम ;
प्रेम कहाँ है ? घृणा उसी में
करती है विश्राम।
दया कहाँ है ? द्वेषित उसको
करता रहता रोष ;
पुण्य कहाँ है ? उसमें भी तो
छिपा हुआ है दोष।
धूल, हाय ; बनने ही को
खिलता है फूल अनूप ;
वह विकास है मुरझा जाने
ही का पहला रूप।

'हास्य में रोदन', 'प्रेम में घृणा', 'दया में क्रोध' और 'पुण्य में दोष (पाप)' में कवि ने सांसारिकता की एक पुट देकर दार्शनिक सिद्धांत की सृष्टि की है। 'भूल रहा हूँ स्वयं इस समय मैं हूँ जग में कौन ?' कहकर कवि अपने अस्तित्व को भूल जाता है। अशांत वातावरण में मनुष्य अपना सुध-बुध खो बैठता है, अपने अस्तित्व का ज्ञान भी खो डालता है। यह नैसर्गिक वर्णन है। 'कंकाल' कविता भी भावुकता से पूर्ण है। मनुष्य-मात्र के जीवन का बाह्य दर्शन क्षण-भंगुर है, और उसका आंतरिक रूप कंकाल-मात्र। इसमें निराशा-

वाद का प्रतिबिंब है। कल्पना ने जीवन की नश्वरता का चित्र अंकित कर दिया है। प्रणय की कल्पना में भी कवि ने स्थान स्थान पर अपनी चातुरी प्रदर्शित की है। 'चित्ररेखा' कविता में प्रणयातिरेक है—

> आज तुम्हारे उर से मेरे उर का नव शृंगार है;
> बाहु-पाश का स्पर्श कंठ पर मानो पुलकित हार है।
> मेरे डग में आज तुम्हारी चितवन का अभिसार है,
> यह जीवन मधु-भार है।

कवि मिलन के लिये उत्सुक है, इसीलिये वह प्रेयसी की चितवन के अभिसार का अनुभव अपनी डग से करता है।' ओस के 'प्रति', 'रूप-राशि', 'उच्छ्वास', 'हार', 'एकांत गान' में कल्पना की प्रधानता है। 'अंजलि' में भावुकता काफ़ी प्रौढ़ावस्था में पाई जाती है। इस प्रकार इन कविताओं में भावुकता और कल्पना की अवस्था इतनी प्रौढ़ हो गई है कि उसका स्थान अनुभूति ने ले लिया है।

वर्माजी ने नवीन काव्य 'चित्ररेखा' में अनुभूति-पूर्ण भावों की सृष्टि की है। रहस्य की भावना अब केवल कल्पना की वस्तु नहीं रह गई। अब वह कवि के अंग-अंग के रोम-कूपों से प्रतिध्वनित होकर निकल रही है। 'चित्ररेखा' की अधिकांश रचनाएँ रहस्यवादी हैं। कवि ने स्वयं रहस्यवाद की जो परिभाषा बतलाई है, वह इस प्रकार है—"रहस्यवाद जीवात्मा की उस अंतर्हित प्रकृति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है, और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनो में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता।" इस रचना में इसी उद्देश्य के विचारों की प्रधानता है। विचारों के साथ-ही-साथ संक्षिप्त से प्रकृतिवाद का प्राधान्य है। कवि की रचना का आधार प्रकृति है। उसी के द्वारा रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

इनकी रहस्यवादी रचनाओं में हम चार रूपों का मिश्रण पाते हैं—(१) गंभीर और एकांत सत्य का परिचय, (२) चरम शांति की अवतारणा, (३) जीवन में अचेत शक्ति और चेतना तथा (४) प्रेम का अभूतपूर्व आविर्भाव। इन्हीं विचारों का सम्मिलन हम कवि की रहस्यवादी रचनाओं में पाते हैं। 'चित्ररेखा' में कविताएँ अनुभूति-प्रधान और रहस्यवादी हैं। कवि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में 'उसी' के रूप का दर्शन करता है। शतदल में उसे वही रूप दिखलाई देता है, जिसमें प्रकृति के तत्त्व अपना अस्तित्व मिला देना चाहते हैं—

कौन हो तुम ज्योतित आकार ?
पवन करता रहता परिचार
सलिल लहरों के हाथ पसार।
माँगता है चिर मिलन विलास ;
शतदल सजल सहास।

कवि 'उसी' के अन्वेषण में न-जाने कहाँ-कहाँ जाता है। 'उस पार' चला जाता है, जहाँ दिशाओं का भी पता नहीं। इस महान् यात्रा में उसे कोई बाह्य उपादान प्राप्त नहीं होता। उसका हृदय ही—साँस ही—उसे उस अनंत शक्ति का परिचय देने के लिये पर्याप्त है—

मैं जाता हूँ बहुत दूर, रह गईं दिशाएँ इसी पार ;
साँसों के पथ पर बार-बार कोई कर उठता है पुकार।

'कोई कर उठता है पुकार' की प्रतिध्वनि कानों में गूँज जाती है।

अँगरेज़ी-कवि टेनीसन भी रहस्यवादी रचनाएँ लिखने में सफल हुआ है। उसने भी अपने में 'किसी', 'कोई' अथवा 'उसी' की खोज में अपनी मर्म-व्यथा का चित्र अंकित किया है। वर्माजी भी उसी 'कोई' की खोज अपने हृदय में करते हैं। वह जानते हैं कि

शरीर में कोई है, परन्तु वह कैसा है? किस रूप का है? इसका ज्ञान उन्हें नहीं। घनघोर वर्षा हो रही है, अंधकार का राज्य है, उसी निशा में चातक किसी को पुकार उठता है—

छिपा उर में कोई अनजान!
खोज-खोजकर साँस विफल बाहर आती-जाती है;
पुतली के काले बादल में वर्षा सुख पाती है।
एक वेदना विद्युत-सी खिंच-खिंचकर चुभ जाती है;
एक रागिनी चातक-स्वर में सिहर-सिहर गाती है।
कौन समझे-समझावे गान!
छिपा उर में कोई अनजान।

इस कविता में रहस्य है। कोई छिपा है, कहीं दूसरी जगह नहीं, वरन् हृदय में। कवि उसकी खोज में व्यस्त है, लेकिन उसे प्राप्त नहीं कर पाता। यही नहीं, कवि ने आत्मा और माया का सुंदर चित्र खींचा है। आत्मा इस मायामय संसार में भटक रही है। वह वेदना-पूर्ण स्वर में करुण पुकार करती है—

मैं भूल गया यह कठिन राह।
कितने दुख बनकर विकल साँस भरते हैं उर में बार-बार;
वेदना हृदय बन तड़प रही, रह-रहकर करती है प्रहार।
यह निर्झर मेरे ही समान किस व्याकुल की है अश्रु-धार?
देखो, यह मुरझा गया फूल, जिसको मैंने कल किया प्यार।
रवि-शशि ये बहते चले कहाँ, यह कैसा है भीषण प्रवाह?
मैं भूल गया यह कठिन राह!

बिजली के हृदय को किसने चीर दिया? आकाश इतना विस्तृत होने पर भी क्यों रो रहा है? समीर भी कोई आधार न पाकर जाने क्यों वृक्ष के हृदय से लगकर सिसक रहा है। इस बात को कवि ने बड़ी सजीवता से चित्रित किया है—

किसने मरोड़ डाला बादल, जो सजा हुआ था सजल वीर ?
केवल पल-भर मे दिया हाय ! किसने विद्युत का हृदय चीर ?
इतना विस्तृत होने पर भी क्यों रोता है नभ का शरीर ?
वह कौन व्यथा, जिस कारण है सिसका करता तरु में समीर ?

इस प्रकार के प्रश्नों को कवि ने अपनी अनुभूति से रहस्य पूर्ण बना दिया है। संसार में अनेक प्रश्न हैं, जो आत्मा की सजग प्रवृत्ति से बाहर टकराते हैं। इसीलिये आत्मा में ईश्वर की शक्ति बार-बार चैतन्य होती है। यह चित्रण बड़ा मनोवैज्ञानिक है। कवि संसार का दिग्दर्शन कराता हुआ वास्तविक सत्य का अनुभव करता है। आत्मा अपनी शक्ति पहचानती है, और संसार के विषम वातावरण में केवल एक सत्ता का विभिन्न प्रकार से आभास पाती है। अतः अपने वास्तविक स्वरूप को समझकर अपनी विचार-धारा को सत्य की ओर छोड़ देती है। कवि की अनुभूति में उस सत्ता का स्वरूप दिखाई देता है, जिसे रहस्य के नाम से पुकारते हैं।

कवि ने अपनी रहस्यवादी कविताओं में विश्वबंधुत्व की भी अच्छी कल्पना की है। वह अपने स्वार्थ की परवा न करके संसार के स्वार्थ की कामना करता और अपनी सहानुभूति को विस्तृत रूप से प्रकट करता है। कवि का दृष्टिकोण विस्तृत हो गया है। वह संसार के दुःखों को नहीं देख सकता, और उन्हें शांत करना चाहता है। विश्व की ज्वाला बुझाने के लिये वह उद्विग्न होकर कहता है—

मैं आज बनूँगा जलद-जाल ;
मेरी करुणा का वारि सींचता
रहे अवनि का अंतराल।

जिस प्रकार बादल अपने शरीर को नष्ट कर बार-बार बिखरकर अपना अस्तित्व खो देता है, उसी प्रकार कवि अपने आत्मसमर्पण

से जग का जीवन रस-पूर्ण कर देना चाहता है। इस भावना में विश्वबंधुत्व की करुण पुकार है।

प्रकृति के चित्रण में कवि सिद्धहस्त है। उसकी प्रकृति ऐसा मालूम होता है कि शुद्ध अद्वैत की प्रकृति ही है, जो सत् में केंद्रित कर भी अपने चित् का आविर्भाव करना चाहती है। प्रकृति का यह संकेत निम्न-लिखित कविता में देखिए—

> यह ज्योत्स्ना तो देखो, नभ की बरसी हुई उमंग,
> आत्मा-सी बनकर छूती है मेरे व्याकुल अंग।
> आओ, चुंबन-सी छोटी है यह जीवन की रात,
> देव, मैं अब भी हूँ अज्ञात।

ज्योत्स्ना आत्मा बनना चाहती है, मानो सत् ही चित् का रूप लेना चाहता है। इसमें कवि-उपमा बड़ी सजीव है। जीवन चुंबन के समान ही छोटा और उतना ही मादक है। कैसी सूक्ष्म तथा सुंदर कल्पना है? इस प्रकार 'चित्ररेखा' में कितने ही सुंदर चित्रों की रेखाएँ उज्ज्वल रूप धारण करके प्रकाशमान हो रही हैं। स्थान-स्थान पर दार्शनिक तत्त्वों का सुंदर समावेश हुआ है। अँगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि टेनीसन ने 'दि हायर पैंथीज़्म' कविता में लिखा है—

> Dark is the world to thou,
> Thyself art the reason why,
> For is he not all but thou,
> That hast, power to feel I am I.

"तेरे लिये संसार अंधकारमय है, तो इसका कारण तू ही है, क्योंकि क्या वह स्वयं तू ही नहीं है, जिसमें स्वानुभूति की शक्ति है।" टेनीसन ने 'मैं' का अन्वेषण किया है। वर्माजी ने भी अपनी रहस्यवादी कविताओं में 'मैं', 'कोई' का अन्वेषण किया है। इसी

तरह अन्य स्थानों पर भी कवि की अनुभूतियाँ अविदित छाया-मय नवीन-नवीन दृश्य दिखाती हैं। कवि की कल्पना-भावना अब प्रौढ़ावस्था को प्राप्त हो गई है। रहस्यवाद की ये रचनाएँ उच्च कोटि की हैं।

'चंद्र-किरण' कवि की कविताओं का नवीन संग्रह है। इसमें सैंतीस कविताएँ हैं। इसकी कविताएँ हृदयस्पर्शी, शीतल और भावना-पूर्ण है। पुस्तक के प्रारंभ में कवि ने 'दो शब्द' में लिखा है—"इनमें भावना की जितनी स्वतंत्रता है, उतनी मेरे अन्य गीतों में संभवतः न हो। उल्लास और करुणा इसमें अपनी चरम सीमा पर पहुँचने का उपक्रम कर रही है।" इसमें करुण-रस प्रधान है। कविताओं में अध्ययनशीलता की उपेक्षा है। लेखक के कथनानुसार 'चंद्र-किरण' की कविताएँ 'किसान के गीत' हैं। इनमें प्रायः कविताएँ ऐसी हैं, जिनमें प्रकृति-सौंदर्य अंकित है। 'विमल रजनी' का प्राकृतिक सौंदर्य कितना वास्तविक है—

मौन की निश्चल परिधि में
सो गए तरु-वृंद सारे;
वृद्ध पृथ्वी की विवशता
देखते हैं तरुण तारे।
या गगन से आरती सज
सब दिशाओं में उतरती।

'वसंत-श्री', 'वसंत', 'वीचि-विलास', 'तारों का संगीत', 'किरण-कण' और 'मधुयामिनी' कविताओं में प्रकृति-सौंदर्य की अनूठी झलक है।

अनुभूति और भावना का भी 'चंद्र-किरण' की कविताओं में सुंदर मिश्रण है।

'साधना', 'अनुभूति', 'जिज्ञासा', 'तुम और मैं', 'व्यथा' और

'रहस्य' कविताओं में मधुर भाव स्थान-स्थान पर प्रकट हुए हैं। हृदय में मादकता और आकर्षण उत्पन्न होता है—

आज देख ली अपनी भूल।
सुंदरता के चयन हेतु तोड़े मुरझानेवाले फूल।
जिस जीवन मे हूँ मैं अथ से,
निकल रहा साँसों के पथ से,
रात्रि-दिवस की श्याम - श्वेत गति
समझ रहा हूँ मैं अनुकूल, आज देख ली अपनी भूल।

हृदय की मर्म-पीड़ा और वेदना का चित्रण भी कहीं-कहीं अनुभूति-पूर्ण हुआ है। भावुक व्यक्ति मौन रूप से ही पूर्व-स्मृतियों का अनुभव करता है। वह बार-बार स्मरण करता है, किंतु उसका अंत अज्ञात-सा जान पड़ता है—

जागते बीती अँधेरी रात।
मौन-कारागार में बंदी रही प्रिय बात।
पूर्व-स्मृतियों की दशा है आह कितनी दूर;
चल रहा हूँ, किंतु उसका अंत है अज्ञात।

श्रीरामकुमार वर्मा के काव्य की भाषा-शैली भी नवीन कविताओं में अधिक सुंदर हो गई है। पहले की रचनाओं में विशेषतः 'अभिशाप', 'रूप-राशि' की भाषा शैली में कुछ कर्कशता आ गई है। मधुरता का वह रूप इनमें नहीं दिखाई देता, जैसा 'चित्ररेखा' और 'चंद्र-किरण' में दिखाई देता है। अस्पष्टता की छाप कवि की कविताओं में नहीं है। शुद्ध खड़ी बोली के शब्दों का चयन किया गया है। परिमार्जित भाषा का रूप कविताओं में स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है।

वर्माजी हिंदी, संस्कृत और अँगरेज़ी के विद्वान् हैं। इसलिये उनकी रचनाएँ भी प्रौढ़ और मार्मिक होती हैं। 'कबीर का रहस्य-

वाद' लिखकर आपने अपने रहस्यवादी भाव-विचारों के अध्ययन का अच्छा परिचय दिया है। 'साहित्य-समालोचना' पुस्तक में आलोचना के महत्त्व को विविध रूप में प्रदर्शित किया गया है। भाषा में सुंदर प्रवाह है। संस्कृत-शब्दों के प्रयोग के आप पक्षपाती जान पड़ते हैं। इसके सिवा आपने एकांकी नाटक भी लिखे हैं। इस प्रकार कवि की विचार-धारा चतुर्मुखी जान पड़ती है। गद्य रचना-शैली भी भावना-प्रधान है। उसमें कवित्व-गुण का प्रभाव पाया जाता है। इस प्रकार वर्माजी गद्य-पद्य-रचना में अनुभवी हैं, किंतु काव्य-कला में आप अधिक सफल हुए हैं।

आपने अब तक अनेकों कविताओं की रचना की है, और उनका भावना, कल्पना, अनुभूति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप है। यहाँ आपके द्वारा चुनी हुई पाँच कविताएँ दी जाती हैं—

चंद्र-किरण

मैं तुम्हारे नूपुरों का हास।
चरण में लिपटा हुआ करता रहूँ चिर-वास।
मैं तुम्हारी मौन गति में भर रहा हूँ राग;
बोलता हूँ यह जताने हूँ तुम्हारे पास।
चरण-कंपन का तुम्हारे हृदय में मधु-भाव,
कर रहा हूँ मैं तुम्हारे कंठ का अभ्यास।
हूँ तुम्हारे आगमन का पूर्व लघु संदेश;
गति रुकी, तो मौन हूँ, गति में अखिल उल्लास।
मैं चरण ही में रहूँ स्वर के सहित सविलास;
गति तुम्हारी ही बने मेरा अटल विश्वास।

करुणा की आई छाया।
कोकिल ने कोमल स्वर भर कुंजों-कुंजों में गाया।
जब विश्व व्यथित था, तुमने अपना संदेश सुनाया;
तरु के सूखे-से तन में नव-जीवन बनकर आया।
मेरी साँसों पर जीवन कितनी ही बार झुलाया;
पर इतने रूपों में भी क्या मैंने तुमको पाया।
यह जीवन तो छाया है, केवल सुख-दुख की छाया;
मुझको निर्मित कर तुमने आँसू का रूप बनाया।

चित्ररेखा

जीवन-संगिनि चंचल हिलोर!
प्रतिपल विचलित गति से चलकर
अलसित आ जा तू इसी ओर।
मैं भी तो तुझ-सा हूँ विचलित,
कठिन शिलाओं से चिर-परिचित।
प्रतिबिंबित नभ-सा चंचल चित,
फेनिल के आँसू से चर्चित,
जान न पाता हूँ जीवन का
किस स्थल पर है सुखद छोर।
सुनें परस्पर सुख ध्वनियाँ हम,
मैं न अधिक हूँ, और न तू कम,
आज न कर पाऊँगा संयम।
मैं न बनूँ, तो तू बन प्रियतम,
मृदु सुख बन जावे इस पथ में
विरह-वेदना अति कठोर।
जीवन-संगिनि चंचल हिलोर।

ये गजरे तारोंवाले

इस सोते संसार बीच जगकर सजकर रजनी-बाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरे तारोंवाले ?
मोल करेगा कौन ? सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी ;
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी ।
निर्झर के निर्मल जल में ये गजरे हिला-हिला धोना ,
लहर हहरकर यदि चूमें, तो किंचित विचलित मत होना ।
होने दो प्रतिबिंब विचुंबित, लहरों ही में लहराना ;
'लो, मेरे तारों के गजरे' निर्झर-स्वर में यह गाना ।
यदि प्रभात तक कोई आकर तुमसे हाय ! न मोल करे ,
तो फूलों पर ओस-रूप में बिखरा देना सब गजरे ।

अशांत

नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ
आज अनश्वर गीत ?
जीवन की इस प्रथम हार में
कैसे देखूँ जीत ?
उषा अभी सुकुमार चरणों में
होगी वही सतेज;
लता बनेगी ओस-बिंदु की
सरल मृत्यु की सेज;
कह सकता है कौन, देखता हूँ मैं भी चुपचाप ;
किसका गायन बने न-जाने मेरे प्रति अभिशाप ।
क्या है अंतिम लक्ष्य—
निराशा के पथ का—अज्ञात !

दिन को क्यों लपेट देती है
श्याम वक्ष में रात ?
और काँच के टुकड़े बिखरा-
कर क्यों पथ के बीच
भूले हुए पथिक-शशि को दुख
देता है नभ नीच ?
यही निराशामय उलझन है, क्या माया का जाल ?
यहाँ लता में लिपटा रहता छिपकर भीषण व्याल।
देख रहा हूँ बहुत दूर पर
शांति-रश्मि की रेख ;
उस प्रकाश में मैं अशांत तम
ही सकता हूँ देख।
काँप रही स्वर-अनिल-लहर
रह-रहकर अधिक सरोष ;
डरकर निरपराध मन अपने
ही को देता दोष !
कैसा है अन्याय ? न्याय का स्वप्न देखना पाप !
मेरा ही आनंद बन रहा मेरा ही संताप।
हास्य कहाँ है ? उसमें भी है
रोदन का परिणाम ;
प्रेम कहाँ है ? घृणा उसी में
करती है विश्राम।
दया कहाँ है ? दूषित उसको
करता रहता रोष ;
पुण्य कहाँ है ? उसमें भी तो
छिपा हुआ है दोष।

भूल हाय! बनने ही को खिलता है फूल अनूप ;
वह विकास है मुरझा जाने ही का पहला रूप ।

मेरे दुख में प्रकृति न देती
क्षण - भर मेरा साथ ;
उठा शून्य में रह जाता है
मेरा भिक्षुक हाथ ।
मेरे निकट शिलाएँ पाकर
मेरे श्वास प्रवाह
बड़ी देर तक गुंजित करती
रहतीं मेरी आह ।

'मर-मर' शब्दों में हँसकर पत्ते हो जाते मौन ।
भूल रहा हूँ स्वयं, इस समय मैं हूँ जग में कौन ?

वह सरिता है—चली जा रही
है चंचल अविराम,
थकी हुई लहरों को देते
दोनो तट विश्राम ।
मैं भी तो चलता रहता हूँ
निशि-दिन, आठो याम ;
नहीं सुना मेरे भावों ने
'शांति शांति' का नाम ।

लहरों को अपने अंगों में तट कर लेता लीन ;
लीन करेगा कौन ? अरे, यह मेरा हृदय मलीन !

शुजा

[शाहजहाँ बीमार है। उसके चार पुत्र हैं—दारा, शुजा, मुराद और औरंगज़ेब। राजसिंहासन के लिये चारो पुत्रों में लड़ाई हो रही है। औरंगज़ेब ने दारा और मुराद को पराजित कर दिया है। वह शुजा का पीछा बंगाल में कर रहा है। शुजा बनारस, मुंगेर, मुर्शिदाबाद, ढाका से होता हुआ अराकान के राजा की शरण लेता है। वहाँ भी राजा से मनोमालिन्य होने के कारण शुजा अराकान के वन में सदैव के लिये चला जाता है। मैं अराकान से पूछना चाहता हूँ—"शुजा कहाँ है ?"]

मौन-राशि ओ अराकान !

अथ-हीन और इति-हीन मौन यह मन है, तन भी यही मौन ;
निर्जनता की बहुमुखी धार अविदित गति से है बही मौन।
यह मौन ! विश्व का व्यथित पाप तुझमें क्यों करता है निवास ?
क्या व्योम देखकर ? अरे व्योम में तारों का है मुक्त हास।
ये शिला - खंड काले, कठोर, वर्षा के मेघों - से कुरूप !
दानव - से बैठे, खड़े या कि अपनी भीषणता में अनूप !
ये शिला - खंड मानो अनेक पापों के फैले हैं समूह !
या नीरवता ने चिर निवास के लिये रचा है एक व्यूह !
यह सर्प - मृत्यु - रेखा सजीव खिंचती चलती है दिशा - हीन !
विष मौन कर रहा है प्रवास ले एक वक्र वाहन मलीन।
दो भागों में जिह्वा - प्रवाह - चंचल है सुख दुख के समान ;
तजता समीर फुफकार—आह, यह देख मृत्यु का सगति यान !
ओ अराकान ! यह विषम-भूमि, भय ही जिसका है द्वारपाल ;
शिशुपन यौवन से है अजान, जर्जरपन ही का जन्मकाल।
सुख-सदृश न्यून है लघु प्रसून, दुख के समान है कुश अपार ;
दोनो का अनुचित विवश योग है जीवन का अज्ञात हार।

क्या हार ? आह, वह शुजा वीर संग्राम-भूमि में गया हार !
यह वही शुजा है, जो सदैव वैभव का था जीवित विहार !
यह वही शुज है, एक बार जिससे सज्जित थे राज-द्वार !
अब हार—विजय की पतित राशि—लज्जित करता है बार-बार !
जीवन के दिन क्या हैं अनेक ? वृद्धा के शिर के श्याम केश !
जर्जरपन का है मुक्त द्वार, जिसके सम्मुख है मृत्यु-देश !
यह वैभव का उज्ज्वल शरीर दो दिन करता है अट्टहास ;
फिर देख स्वयं निज विकृत रूप लज्जित हो करता है प्रवास !
वह शुजा ! आह, फिर वही नाम—मचले बालक-सा बार-बार ;
सोई स्मृति पर लघु हाथ मार क्यों जगा रहा है इस प्रकार ?
वह शाहजहाँ का राज्य-काल, मानो हिमकर का रजत हास !
लक्ष्मी का था इस्लाम-रूप ! स्वर्गों का था भू पर निवास !
वे दिन क्या थे यौवन-विलास संध्या-बादल-सा था नवीन !
वह रास-रंग—वह रास-रंग—यौवन था यौवन में विलीन !
जन भूल गया था व्यक्ति-भेद, उसकी गति का था हुआ नाश ;
था स्वर्ण-रजत का एक मूल्य, रत्नों में पीड़ित था प्रकाश।
रमणी के कंठों पर स-रत्न सोया करता था बाहु-पाश ;
उच्छृंखलता भी थी प्रमत्त, चिंता जीवन से थी हताश।
'शासित के जो हलके सदैव—थे, शासक पर था राज्य-भार !
उसकी जागृति से सभी काल निद्रित रहता था दुराचार।'
उस दिन वह केवल था विनोद, जब नीली यमुना के समीप
संचित था उत्सुक जन-समूह, बुझते जाते थे नभ-प्रदीप।
काले बादल-से दो प्रमत्त हाथी लड़ते थे बार-बार ;
विद्युत-सा उद्धत चपल शब्द सूचित कर देता था प्रहार।
अपनी आँखों में भरे हर्ष—उत्सुकता की चंचल हिलोर ;
नृप शाहजहाँ रवि-रश्मि-युक्त हो देख रहा था उसी ओर।

सम्मुख थे उसके राजपुत्र, चंचल घोड़ों पर थे सवार;
आश्चर्य-उमंगों का सदैव दृग में बढ़ता था तीव्र उभार।
औरंगज़ेब की ओर एक गज दौड़ा बन साकार क्रोध;
पर थी उसकी तलवार तीव्र करनेवाली चंचल विरोध।
जीवन का अब अस्थिर प्रवाह दो क्षण तक ही था रहा शेष;
पर वाह, शुजा रे शुजा वीर, तेरी चंचलता थी विशेष!
तूने विद्युत बनकर सवेग, विद्युततर कर भाला विशाल;
उस मृत्युरूप गज के सरौद्र मस्तक पर छोड़ा था कराल।
गज घूमा, तू औरंगज़ेब को बचा हो गया अमर वीर!
मैं तुझे खोजता हूँ अलक्ष्य, अब अराकान में हो अधीर।
था शाहजहाँ बीमार, और दारा बैठा था नमित माथ;
जिन पर आश्रित था राज्य-भार, वे काँप रहे थे आज हाथ।
दरबार हो गया नियम-हीन, प्रातः दर्शन भी था न आह;
रवि शाहजहाँ से हुआ शून्य प्रतिदिन प्राची-सा दुखावगाह।
गत तीस वर्ष का राज्य-काल विस्तृत था स्वप्नों के समान;
जिनमें निद्रित था बन प्रशांत, इस जीवन का अस्तित्व-ज्ञान।
'शाही-बुलंद-इक़बाल'-युक्त दारा का शासन था सहास;
पर शाहजहाँ का रोग-कष्ट करता मुख से मुख पर प्रवास।
चिंता-निर्मित नत व्यथित शीश झुकते थे दिन में अयुत बार;
मृदु वायु सह रही थी अनंत आशीषों के अविराम भार।
जिस तन पर मणियों का प्रकाश अपना जीवन करता व्यतीत;
अब वह तन है कितना मलीन! कितना निष्ठुर है यह अतीत!
जब शाहजहाँ ने एक बार सोचा जीवन का निकट अंत;
दृग से दो आँसू गिरे, और उनमें आकांक्षा थी अनंत।
वे जीवन के दो दिवस शेष, जिनमें होंगी स्मृतियाँ अतीत;
प्रिय ताजमहल के पास क्यों न हों प्रेयसि-चिंतन में व्यतीत!

कुछ दूर—आगरे में अनूप संचित है स्मृति का अश्रु-बिंदु ;
वह ताज—वेदना की विभूति—अंकित है भू पर पूर्ण इंदु ।
वह शाहजहाँ है एक व्यक्ति, जिसने इतना तो किया काम ;
दे दिया विरह को एक रूप, है 'ताज' उसी का व्यथित नाम ।
पर है प्रेयसि की स्मृति पवित्र, कितनी कोमल ! कितनी अनूप !
फिर शाहजहाँ ने बन कठोर क्यों दिया उसे पाषाण-रूप ?
यदि फूलों से निर्मित अम्लान यह ताजमहल होता सहास,
तब तो स्मृति का था उचित चिह्न, मैं क्यों रहता इतना उदास ?
तारों की चितवन के समान था शाहजहाँ अपलक, अधीर ;
यमुना की लहरों से समोद क्रीड़ा करता था मृदु समीर ।
कितने भावों को कर विलीन छोटे से दृग के बीच आज ;
दिल्ली का स्वामी बन मलीन था देख रहा निस्तब्ध ताज ।
वह ताज देखकर उसे हाय, उठता था दृग में विकल नीर !
मुमताज ! कहाँ पाषाण-भार, है कहाँ तुम्हारा मृदु शरीर ?
है कहाँ तुम्हारी मदिर दृष्टि, जिसमें निमग्न था अधर-पान ?
अधरों में संचित था अनूप, इक्षुज-सा कोमल मधुर गान !
था मधुर गान !...अः वह मुराद औरंगज़ेब के सहित आज—
है शुजा—शुजा भी है स-ओज, सजने को भीषण युद्ध-साज ।
दिल्ली का सिंहासन विशाल, है आज युद्ध का पुरस्कार;
जीवन होगा जय का स्वरूप क्या मृत्यु रूप होगी न हार ?
नृप शाहजहाँ की हीन शक्ति, बन गई सुतों का बल अपार ;
दारा, मुराद, औरंगज़ेब, थे मानो जीवित अहंकार ।
सतलज की लहरें हुईं क्षुब्ध, जब उठा भयंकर युद्ध-नाद ;
प्रतिबिंबित था जल में अनंत—सेना-समूह—भीषण विषाद ।

परिशिष्ट

पंडित सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा उनके काव्यों के संबंध में इस ग्रंथ में जहाँ उल्लेख हुआ है, वहाँ उनके 'तुलसीदास' नाम के कलात्मक काव्य से उद्धरण नहीं दिया गया। 'तुलसीदास' काव्य के प्रकाशन की बात हमें उक्त अंश छप जाने के बाद ज्ञात हुई। इसलिये पाठकों को उनकी चार श्रेष्ठ कविताओं के साथ पाँचवाँ 'तुलसीदास' काव्य का निम्न-लिखित अंश भी सम्मिलित समझना चाहिए।

'निराला'जी का 'तुलसीदास' यद्यपि छोटा है, पर कला की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट काव्य है। इसे 'निराला'जी ने बड़े गहन अध्ययन और मनन के बाद लिखा है। महाकवि कालिदास के काव्यों के अध्ययन के बाद उनकी अनुभूति इस प्रकार के काव्य-सृजन की ओर हुई है। यह विचारों की दृष्टि से बड़ा गहन, गंभीर और मनन की वस्तु है। हिंदी-काव्य-जगत् में महाकवि तुलसीदास की अद्भुत काव्य-कुशलता अमिट वस्तु है। 'निराला'जी इनके काव्य से प्रभावित हुए हैं, और उसी महत्ता के परिणाम स्वरूप 'तुलसीदास' काव्य की रचना हुई है। यह सबके समझने की चीज़ नहीं, और न सबकी समझ में आ ही सकता है। किंतु इस प्रकार के कलात्मक काव्य का महत्व, उसकी बारीकी, उसके गंभीर विचार समझने के लिये अभी समय की अपेक्षा है। इस काव्य में कल्पना और विचार की प्रधानता है। इसमें कवि का एक 'आइडिया' है, और एक नवीन भावना का सृजन हुआ है। इसमें अलंकारों की प्रधानता उतनी

नहीं है, जितनी विचारों की। इस काव्य का मौलिकता और कला की दृष्टि से इसीलिये अधिक महत्व है। ऐसे ग्रंथ हिंदी के काव्य-क्षेत्र में नहीं हैं। 'परिमल', 'गीतिका' और 'अनामिका' की कविताओं से 'तुलसीदास' की रचनाएँ अधिक पुष्ट, परिमार्जित और कलात्मक हैं। 'तुलसीदास' 'निराला'जी के काव्यों में एक अद्भुत और अमिट वस्तु है। 'तुलसीदास' का प्रारंभिक अंश यहाँ दिया जाता है—

तुलसीदास

भारत के नभ का प्रभा-पूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मंडल;

उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान;
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण, पर शतदल।

शत-शत अब्दों का सांध्य काल
यह आकुंचित-भ्रू कुटिल-भाल
छाया अंबर-पर जलद-जाल ज्यों दुस्तर;

आया पहले पंजाब-प्रांत,
कोशल-बिहार तदनंत क्रांत,
क्रमशः प्रदेश सब हुए भ्रांत, घिर-घिरकर।

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर;

छाया ऊपर घन - अंधकार—
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय - धार, ध्वनि हर - हर

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड
आतप ज्यों तम पर करोदंड,
निश्चल अब वही बुँदेलखंड, आभा गत,

नि:शेष सुरभि, कुरबक - समान
संलग्न वृंत पर, चित्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों, चिह्न म्लान ; छाया श्लथ।

वीरों का गढ़, वह कालिंजर,
सिंहों के लिये आज पिंजर ;
नर हैं भीतर, बाहर किंनर - गण गाते ;

पीकर ज्यों प्राणों का आसव
देखा असुरों ने दैहिक दव,
बंधन में फँस आत्मा - बाधव दुख पाते।

लड़ - लड़, जो रण - बाँकुरे, समर,
हो शयित देश की पृथ्वी पर,
अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष, अमर, जग - तारण,

भारत के उर के राजपूत,
उड़ गए आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृप - वेश सूत—वंदीगण।

यों, मोगल - पद - तल प्रथम तृण
संबद्ध देश - बल चूर्ण - चूर्ण ;
इस्लाम - कलाओं से प्रपूर्ण जन—जनपद।

संचित जीवन को, क्षिप्रधार,
इस्लाम - सागराभिमुख ऽपार,
बहतीं नदियाँ नद; जन - जन हार वशंवद ।

अब, धौत धरा, खिल गया गगन,
उर - उर को मधुर, ताप - प्रशम
बहती समीर, चिर - आलिंगन को उन्मन ;

झरते हैं शशधर से क्षण - क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुंबन, संजीवन ।

भूला दुख, अब सुख - स्वरित जाल
फैला—यह केवल - कल्प काल—
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता ;

प्राणों की छवि, मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित-छंद ;
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता ।

सोचता कहाँ रे, किधर कूल
बहता तरंग का प्रमुद फूल ?
यों इस प्रवाह में देश मूल खो बहता ;

'छल-छल-छल' कहता यद्यपि जल,
वह मन्त्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल' ;
निष्क्रिय ; शोभा - प्रिय कूलोपल ज्यों रहता ।

पड़ते हैं जो दिल्ली - पथ पर
यमुना के तट के श्रेष्ठ नगर,
वे हैं समृद्धि की दूर - प्रसर माया में ,

यह एक उन्हीं में राजापुर,
है पूण्य, कुशल, व्यवसाय - प्रचुर,
ज्योतिश्चुंबिनी कलश-मधु-उर छाया में।

युवकों में प्रमुख रत्न - चेतन,
समधीत - शास्त्र - काव्यालोचन
जो, तुलसीदास, वहीं ब्राह्मण-कुल-दीपक,
आयत - दृग, पुष्ट - देह, गत - भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद - स्मित परिचय, संस्मारक;

नीली उस यमुना के तट पर
राजापुर का नागरिक मुखर
क्रीडितवय - विद्याध्ययनांतर है संस्थित;
प्रियजन को जीवन चारु, चपल
जल की शोभा का-सा उत्पल,
सौरभोत्कलित अंबर-तल, स्थल-स्थल, दिक-दिक।

एक दिन, सखागणसंग, पास,
चल चित्रकूटगिरि, सहोच्छ्वास,
देखा पावन वन, नव प्रकाश मन आया;
वह भाषा—छिपती छवि सुंदर
कुछ खुलती आभा में रँगकर,
वह भाव, कुरल - कुहरे - सा भरकर भाया।

केवल विस्मित मन, चिंत्य नयन;
परिचित कुछ, भूला ज्यों प्रियजन—
ज्यों दूर दृष्टि की धूमिल - तम तट - रेखा;

है मध्य तरंगाकुल सागर,
नि:शब्द स्वप्नसंस्कारागार;
जल में अस्फुट छवि छायाधर यों देखा।

तरु-तरु, वीरुध्-वीरुध्, तृण-तृण
जाने क्या हँसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लखकर;

भर लेने को उर में, अथाह,
बाँहों में फैलाया उछाह;
गिनते थे दिन, अब सफल-चाह पल रखकर।

कहता प्रति जड़, "जंगम-जीवन!
भूले थे अब तक बंधु, प्रमन?
यह हताश्वास मन भार श्वास भर बहता;

तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि-धूसरित छवि,
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।

"इनकी आँखों की ज्वाला चल,
पाषाण-खंड रहता जल-जल,
ऋतु सभी प्रबलतर बदल-बदलकर आते,

वर्षा में पंक-प्रवाहित सरि,
है शीर्ण-काय-कारण-हिम अरि;
केवल दुख देकर उदरंभरि बन जाते।

"फिर असुरों से होती क्षण-क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह, दलित-चरण;
वे सुप्त भाव, गुप्ताभूषण अब हैं सब;

इस जग के मग के मुक्त - प्राण !
गाओ—विहंग !—सद् ध्वनित गान,
त्यागोज्ज्वित, वह ऊर्ध्व ध्यान, धारा - स्तव ।
"लो चढ़ा तार—लो चढ़ा तार,
पाषाण - खंड ये, करो हार,
दे स्पर्श अहल्योद्धार - सार उस जग का ;
अन्यथा यहाँ क्या ? अंधकार,
बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार,
झरने - झाड़ी - कंटक; विहार पशु - खग का !
"अब स्मर के शर - केशर से झर
रँगती रज - रज पृथ्वी, अंबर ;
छाया उससे प्रतिमानस - सर शोभाकर ;
छिप रहे उसी से वे प्रियतम
छवि के निश्छल देवता परम ;
जागरणोपम यह सुप्ति विरम भ्रम, भ्रम भर ।"
बहकर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल ,
हो गया चित्त कवि का त्यों तुलकर उन्मन ;
वह उस शाखा का वन - विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग—रंग पर जीवन ।

तृतीय खंड

(नवोदित कवि)

लक्ष्मीनारायण मिश्र

श्रीयुत लक्ष्मीनारायण मिश्र यद्यपि एक सुंदर नाटककार के रूप में हिंदी संसार में परिचित हैं, किंतु आपका प्रारंभिक रचना-काल काव्य से ही प्रारंभ होता है। 'अंतर्जगत्' आपकी स्फुट कविताओं का संग्रह है। इस छोटी-सी काव्य-पुस्तिका में कवि ने अंतर्जगत् की भावना और अनुभूति का मार्मिक चित्र अंकित किया है। काव्य की भाषा परिमार्जित, स्पष्ट और सुंदर है। 'तपोवन'-नामक एक अन्य काव्य की रचना भी की है। 'संन्यासी', 'राक्षस का मंदिर', 'आधी रात' समस्या-नाटक ग्रंथ हैं। 'अशोक' ऐतिहासिक नाटक है। इन नाटकों से लेखक की बुद्धिवादी तर्कशीलता का सुंदर परिचय प्राप्त होता है। इब्सन के दो नाटकों का आपने अनुवाद भी किया है। आप विद्वान् और सुंदर विचारक हैं।

अंतर्जगत् से—

शीतलता हिमकर-किरनों में जीवन मलय-पवन में
मैं अविराम नृत्य लहरों में आकुलता हूँ घन में।
छिड़ता है संगीत गगन में सिंधु-किनारे मेरा;
दिन-मनि के उस अचल लोक का मैं हूँ शांत सवेरा।
सुनते मनुज अमर होता है, मरकर सत्य-सहारे—
जगत मरे यदि उसी सत्य के, पावन-शांत-किनारे।
नियति-नेमि के नूपुर-रव से मुखरित विश्व-सदन में
पूजा होगी मृत्यु निरंतर तेरी तव प्रति-छन में।

कविता की वीणा बजती जब मन-मंदिर में मेरे,
तेरी स्वर-लहरी की लहरें रहतीं मुझको घेरे।
मेरे मोहन ! जब निद्रा के सुखद-सदन में जाता,
सरस-स्वप्न - संगीत - सरिस तेरा समधुर स्वर आता।
बढ़ती चली जा रही भीतर जो विपत्ति नित मेरे,
अमर-भाव है वह जगती का अंतरतमको घेरे।
उसको लेकर रचना होगी, जिस अनादि-अभिनय की,
थम जाएगी आकुलता, उसको लख मृत्यु निलय की।
आज बज उठी तेरे कर से वीणा मेरे मन की;
आशातीत अतिथि ! लीला, कैसी ? तेरी इस छन की ?
जागृत तभी हुई अचानक, जो चिरदिन की सोई,
सुला सकेगा क्या उसको फिर इस जगती में कोई।
जीवन-सागर के उस तट पर अपने सुंदर जग की—
सृष्टि अनोखी की है तूने, जहाँ न रेखा मग की।
नीचे सिंधु भर रहा आहें, हँसते नखत गगन में;
सबसे दूर जल रहा दीपक तेरे भव्य भवन में।
तेरी धुँधली स्मृति के आगे झुकी विश्व की ममता;
भला असीम जगत यह तेरी कर सकता है समता ?
सत्य कहीं होगी यदि निर्मम, यह चिर-पूजा मेरी,
तो देवत्व लाभ कर लेगी पावन प्रतिमा तेरी।
तिल-तिल करके जला दिया, इस सुंदर जग को जिसने,
मानस की उस अग्नि-राशि को आज बुझाई किसने ?
जो कुछ जलने योग्य रहा, वह जलता अब तक आया;
किंतु शेष है अमर न उस पर पड़ी ध्वंस की छाया।

जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज'

पं० जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' एम्० ए० नवीन छायावादी कवियों में श्रेष्ठ स्थान रखते हैं। काव्य रचना आप कई वर्ष से करते आ रहे हैं। आपकी कविताओं का संग्रह 'अनुभूति' नाम से प्रकाशित हो चुका है। कविताओं में अनुभूति और कल्पना का सौंदर्य बड़ा ही सुंदर दृष्टिगोचर होता है। वेदना और करुणा की प्रधानता होती है। भाव-पूर्ण कहानियाँ लिखने में भी आपने सफलता प्राप्त की है। 'किसलय', 'मृदुदल' और 'कालिका' कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'चरित्र-रेखा' चरित्र-चित्रण की दृष्टि से सुंदर है। आप अच्छे समालोचक भी हैं। स्वर्गीय प्रेमचंदजी की कृतियों की सुंदर और गंभीर आलोचना लिखी है।

अभाव की पूजा

जीवन के पहले प्रभात में,
मिला तुम्हीं से था मुझको प्रिय, यह पावन उपहार।
जिसे कहते तुम आज 'अभाव'
लिए नयनों में करुणा-नीर ;
और करने को जिसका अंत—
(व्यथित हो-होकर परम अधीर)
रहे हो मेरे चारों ओर विभव की दारुण ज्योति पसार।
ज्योति यह दारुण है, हाँ, देव !
क्योंकि मैं हूँ चिर तम का दास ;
सुखी रहता दुख ही में डूब,
कहाँ जाऊँ, किस सुख के पास ?
सँभाले सँभलेगा भी कभी किसी का मुझसे इतना प्यार ?

वासना में विष है, है आग
लालसा में, सुख में संताप।
पुण्य पा लूँगा मैं किस भाँति ?
कहाँ जाएगा मेरा पाप ?
विश्व की पीड़ाओं को कहाँ मिलेगा प्रश्रय, मधुर दुलार ?

विरति-पथ है कोलाहल-हीन ;
इसी पर चलने दो चुपचाप।
साथ में दुर्बलताएँ रहें ;
प्रलोभन का न मिले अभिशाप।
बहुत सुंदर लगता है मुझे—यही मेरा सूना संसार।

जनम-भर तप करने के बाद
मिला है मुझको यही 'अभाव'।
इसी में है मेरा सर्वस्व,
न है कुछ पाने का अब चाव।
बिछाकर मोहक माया-जाल, साधना का न करो संहार।

लिए जो हलचल अपने साथ
पधारे हो तुम मेरे पास—
उसे दे पाऊँगा किस भाँति
इसी छोटे-से घर में वास ?
लूट लेंगे मुझको ये लोभ, समेटो इनकी भीड़ अपार।

दाह अति शीतल है यह, है न—
कहीं इसमें ज्वाला का नाम ?
बरसने दो करुणा-घन को न,
न है उसका अब कोई काम।
जला, जल चुका बहुत, चुपचाप पड़ा हूँ अब तो बनकर छार !

विकल, विह्वल थी जब मधु-धार,
किया प्यासे अधरों ने मान।
पुनः उस मादकता की ओर
करो उपक्रम ले जाने का न?
लुढ़क जाऊँगा हो हत-चेत, रहे रस क्यों बरवस यों ढार!
जगाओ अब न हिये की भूख,
न भड़काओ चाहों की प्यास।
इसी सूनेपन में है शांति,
तृप्ति, सुख, संयम, हर्ष, हुलास।
कहाँ अब वे आँखें हैं हाय! निहारूँ जिनसे यह शृंगार?
करो विचलित मत मुझको देव!
दिखाकर 'कुछ देने का चाव'।
साधना की वेदी पर बैठ—
पूजने दो यह 'अमर अभाव'।
इसी में हो तुम, हूँ मैं, और—इसी में भरा तुम्हारा प्यार!!

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

श्रीयुत हरिकृष्ण 'प्रेमी' छायावाद के नवीन कवियों में महत्त्व-पूर्ण स्थान रखते हैं। 'आँखों में', 'जादूगरनी' और 'अनत के पथ पर' आपकी काव्य-पुस्तकों का हिंदी-काव्य-क्षेत्र में अच्छा आदर हुआ है। काव्य में कल्पना, भावना और अनुभूति का सुंदर सामंजस्य हुआ है। कवि के हृदय की वेदना, व्याकुलता और सहृदयता पाठकों पर अपनी एक छाप छोड़ जाती है। 'आँखों में' बड़ी रचना है, जो कल्पना-प्रधान है। 'अनंत के पथ पर' भाव और अनुभूति की सुंदर अभिव्यक्ति है। काव्य की भाषा सुंदर, स्पष्ट और भाव-पूर्ण है। इसके

सिवा प्रेमीजी सुंदर गद्य-लेखक भी हैं। आपने कुछ नाटक भी लिखे हैं। अभिनय की दृष्टि से नाटकों को अच्छी सफलता मिली है।

जिज्ञासा

स्वर्गंगा की धारा में स्मृति के दीपक हैं बहते,
किस मधुर लोक की गाथा मेरे मानस से कहते!
इस रत्न-जटित अंबर से किसने वसुधा को छाया,
करुणा की किरणें चमका क्यों अपना रूप छिपाया?
यह हृदय न-जाने किसकी सुध में बेसुध हो जाता,
छिप-छिपकर कौन हृदय की वीणा के तार बजाता?
इस नीरव नभ से जाने किसका आमंत्रण आता,
उर आश्रय-हीन विहगी-सा किस ओर उड़ा-सा जाता?
इस महाशून्य में किसका मैं अनुभव कर मुसकाती,
मैं अपने ही 'कलरव' को क्यों नहीं समझने पाती?
इस पर्दे के पीछे से करता है कौन इशारे?
किसने जीवन के बंधन सहसा खोले हैं सारे?
किसका अभाव मानस में सहसा शशि-सा आ चमका,
है क्या रहस्य, बतला दे कोई, इस अंतर् तम का?
किसके चरणों पर अविरल आँखों का अर्घ्य चढ़ाती,
किस मादक मोहक छवि के मैं नित्य गीत हूँ गाती?
स्वप्नों में आ क्यों कोई चुपचाप चला जाता है,
बुझते जीवन-दीपक को भर स्नेह जला जाता है?
किस महालोक से आता, किस महालोक को जाता,
किस स्वर्ण-सदन में मेरा रहता है भाग्य-विधाता?
किसका अदृश्य कर सूने नभ को चित्रित कर जाता,
किसका कर दिन-रजनी का यह अविरल चक्र चलाता?

है क्या रहस्य, क्या जाने हम विस्तृत अगम गगन का,
वह मादक देश कहाँ है जीवन के जीवन-धन का ?
कैसे यह इतना सोना इन किरणों में भर आया ;
नित नए रूप सजती है किस मायावी की माया ?
यह प्रतिपल का परिवर्तन किन चपल करों को भाया?
किस शिशु के कौतूहल ने यह जग-सा खेल बनाया ?

हरवंशराय 'बच्चन'

श्रीयुत हरवंशराय 'बच्चन' हिंदी के नए कवियों में बड़े लोकप्रिय हैं। आपकी 'मधुशाला' से संपूर्ण हिंदी-संसार परिचित है। आपने फ़ारसी के कवि उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का 'ख़ैयाम की मधुशाला' के रूप में सफल हिंदी-रूपांतर भी किया है, किंतु इतना ही नहीं, आपने अपनी छिपी हुई वेदना के साथ ख़ैयाम की मादकता को लेकर हिंदी-संसार के लिये अपनी और एक नई 'मधुशाला' की भी सृष्टि की है, जिसमें यद्यपि ख़ैयाम की दार्शनिकता नहीं, किंतु व्यथा की आग में तपे हुए एक भावुक युवक की वेदना है। 'बच्चन'जी ने मंदिर-मसजिद तथा सवर्ण-अवर्ण की सामाजिक समस्याओं पर भी अपने सुधारवादी विचार प्रकट किए हैं, और उन्हें एक समाज-सुधारक की शुष्क भाषा में नहीं, बल्कि अपनी कविता की मदिरा से प्रभावित करके दिया है। शैली, कवित्व-शक्ति और परिपक्व विचारों तथा भावों की दृष्टि से आपकी 'मधुशाला'-नामक पुस्तक सर्वश्रेष्ठ कही जा सकती है, किंतु उसके अतिरिक्त आपकी प्रारंभिक रचनाओं का संग्रह 'तेरा हार' तथा सबसे नई पुस्तक 'मधुकलश' भी उल्लेखनीय हैं। 'मधुकलश'

का उल्लेख प्रारंभिक रचनाओं के साथ इसलिये भी किया गया है कि पाठक 'श्रीबच्चन' के विकास-क्रम का अध्ययन कर सकें।

पग-ध्वनि

वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
नंदन-वन में उगनेवाली मेंहदी जिन तलवों की लाली
बनकर भू पर आई आली! मैं उन तलवों से चिर-परिचित,
मैं उन तलवों का चिर ज्ञानी।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
ऊषा ले अपनी अरुणाई, ले कर-किरणों की चतुराई,
जिनमें जावक रचने आई, मैं उन चरणों का चिर-प्रेमी।
मैं उन चरणों का चिर-ध्यानी।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
उन मृदु चरणों का चुंबन कर ऊसर भी हो उठता उर्वर,
तृण-कलि-कुसुमों से जाता भर, मरुथल मधुवन बन लहराते,
पाषाण पिघल होते पानी!
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
उन चरणों की मंजुल उँगली पर नख-नक्षत्रों की अवली,
जीवन के पथ की ज्योति भली, जिसका अवलंबन कर जग ने
सुख-सुखमा की नगरी जानी!
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
उन पद-पद्मों के प्रभ रजकण का अंजित कर मंत्रित अंजन,
खुलते कवि के चिर-अंध नयन, तम से आकर उर से मिलती
स्वप्नों की दुनिया की रानी!
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!

उन सुंदर चरणों का अर्चन करते आँसू से सिंधु नयन,
पग-रेखा में उच्छ्वास पवन देखा करता अंकित अपनी
सौभाग्य सुरेखा कल्याणी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
उन चल चरणों की कल छम-छम से ही था निकला नाद प्रथम,
गति से मादक तालों का क्रम—संगीत जिसे सारे जग ने
अपने सुख की भाषा मानी ।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
हो शांत जगत के कोलाहल ! रुक जा रे जीवन की हलचल !
मैं दूर पड़ा सुन लूँ दो पल, संदेश नया जो लाई है
यह चाल किसी की मस्तानी ।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
किसके तम-पूर्ण प्रहर भागे ? किसके चिर-सोए दिन जागे ?
सुख-स्वर्ग हुआ किसके आगे ? होगी किसके कंपित कर से
इन शुभ चरणों की अगवानी ?
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
बढ़ता आता घुँघरू का रव ! क्या यह भी हो सकता संभव ?
यह जीवन का अनुभव अभिनव ! पदचाप शीघ्र, पग-राग तीव्र,
स्वागत को उठ रे कवि मानी !
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
ध्वनि पास चली मेरे आती ! सब अंग शिथिल पुलकित छाती !
लो, गिरतीं पलकें मदमाती ! पग को परिरंभण करने की
पर इन भुज-पाशों ने ठानी ।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी !
रव गूँजा भू पर, अंबर में, सर में, सरिता में, सागर में,
प्रत्येक श्वास में, प्रति स्वर में; किस-किस का आश्रय ले फैले

मेरे हाथों की हैरानी।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
ये ढूँढ़ रहे ध्वनि का उद्गम, मंजीर मुखर युत पद निर्मम,
है ठौर सभी जिनकी ध्वनि सम, इनको पाने का यत्न वृथा,
श्रम करना केवल नादानी।
यह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
ये कर नभ जल-थल में भटके, आकर मेरे उर पर अटके,
जो पग-द्वय थे अंदर घट के, थे ढूँढ़ रहे उनको बाहर
ये युग कर मेरे अज्ञानी।
वह पग-ध्वनि मेरी पहचानी!
उर के ही मधुर अभाव चरण बन करते स्मृति-पट पर नर्तन,
मुखरित होता रहता बन-बन मैं ही इन चरणों में नूपुर।
नूपुर-ध्वनि मेरी ही वाणी!

गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

श्रीयुत गुरुभक्तसिंह 'भक्त' बी० ए०, एल्-एल्० बी० ने नवीन कवियों में अपना एक स्थान बना लिया है। 'सरस-सुमन' और 'कुसुम कुंज'-नामक कविता-संग्रह में आपकी प्रारंभिक रचनाएँ संगृहीत हैं। इन कविताओं में नेचर-निरीक्षण बड़ी सुंदरता के साथ हुआ है। इधर 'नूरजहाँ'-नामक आपका नया काव्य जब से प्रकाशित हुआ है, तब से आप भली भाँति प्रकाश में आ गए। काव्य-सौष्ठव और चरित्र चित्रण की दृष्टि से 'भक्त' जी ने 'नूरजहाँ' में अच्छी सफलता प्राप्त की है। 'नूरजहाँ' ऐतिहासिक काव्य है। इसकी वर्णन-शैली आकर्षक, भाव-पूर्ण और काव्यत्व से पूर्ण है।

नूरजहाँ

[मुग़ल-सम्राट् अकबर के युवराज सलीम (जो बाद में जहाँगीर के नाम से सम्राट् हुआ था) और ईरानी बालिका मेहरुन्निसाँ (जो बाद में नूरजहाँ के नाम से सम्राज्ञी हुई थी) की प्रेम-कथा इतिहास-प्रसिद्ध है। जिस दिन मेहरुन्निसाँ अपने नवीन पति के साथ बंगाल के लिये प्रस्थान करनेवाली थी, उससे पूर्व रात्रि का दृश्य कवि ने निम्न-लिखित कविता में अंकित किया है।]—

अर्धनिशा में महानिविड़ तम घेरे था पृथ्वीतल,
अंधकार-ही-अंधकार दिखलाई देता केवल।
अपर लोकवासी के लख पड़ते थे जो दृग तारे,
वे भी मेघों की पलकों में छिपे नींद के मारे।
वारिद तारों पर पावस ने बिजली को दौड़ाया,
हर्षनाद कर मित्रों को आगम जिसने बतलाया।
सूख गए थे जड़-जंगम जो विरहानल खा-खाकर,
पुनः हरा कर दिया उन्हें जीवन-संदेश सुनाकर।
हरियाली बढ़ी ऊपर को मिलने वारिदमाला,
पुलकित होकर उतर मेघ ने वारि-करों को डाला।
नवलतिकाएँ थिरक-थिरककर घुँघुरू लगीं बजाने,
घन दामिन-सँग ताल बजाकर लगा नाच दिखलाने।
मोती झड़ते देख श्याम अलकों से दामिन-पट से,
कलियाँ झाँक झाँक मुस्कातीं पत्तों के घूँघट से।
रोमांचित भू ने पुलकित हो अगणित पुष्प चढ़ाए,
मेघ धूप ले अपने ऊपर भू को रहे बचाए।
छिपा 'पतंग' देख पृथ्वी ने कोटि 'पतंग' उड़ाए,
निशि में जुगनू के तारों को तम-नभ पर बिखराए।

पवन पृथ्वी को छू-छू लेता, पर्वत से टकराता,
मोर नचाता, नदी बहाता, शोर मचाता आता।
कहता रहता, जले न कोई, सब हों शीतल छाती,
दामिन मुझसे, लतिका तरु से रहे सदा लिपटाती।
पर पतंगनी नहीं मानती, स्नेह-चिता जब जागी,
जीवन-दीप दिया कर ठंडा, सह न सकी विरहागी।
पंख लगाकर अगम पंथ में मानो नव अभिलाषा
नवजीवन के सुख-सोहाग की मन में लिए पिपासा
उड़ी, अभी दो-चार हाथ थी प्रेम-ज्योति देखी जो,
गई वार मोहित-सी होकर तन-मन की सुध बुध खो।
हँसते-हँसते स्नेहानल में हुई एक मिल-मिलकर,
बिखरे पड़े अभी तक उसके हैं आशाओं के पर।
पवन उन्हीं से खेल रहा था ले जा नीचे-ऊपर,
भस्म आँख में डाल रहा था पड़ी रही जो भू पर।
देख रहे थे नयन किसी के निशि-भर थे जो जागे,
कि कैसे हँसकर जलते हैं हृदय प्रेम-अनुरागे।
दृग-मृग चंचल रहे चौकड़ी भरते नभ से भू तक,
निद्रा हरियाली दिखलाकर हारी, सकी न छू तक।
फँसे न पलकों के फंदे में, जो रजनी ने डाले,
मन से होड़ लगाकर उड़ते रहे नयन मतवाले।
हत्याकांड, प्राण की आहुति, कठिन प्रेम की लीला
सका न अधिक देख रमणी का कोमल हृदय रसीला।
किसी सोच में हो विभोर श्वासें कुछ ठंडी खींचीं,
फिर झट गुल कर दिया दिया को आँखें दोनों मींचीं।
ले निःश्वास पुनः खोली जो देखा सम्मुख कोई,
लगी सोचने, मैं जगती हूँ सचमुच या हूँ सोई।

फिर आँखें मल लगी देखने, देखी मूरत काली,
तुरत झपटकर पहुँची उस पर झट तलवार निकाली।
बढ़ती हुई तड़पकर बोली, "ठहर! कौन? क्यों आया?
कर दूँगी तलवार पार मैं पग जो एक बढ़ाया!"
खोल नकाब, कहा, "सलीम हूँ, मेहर! मुझे मत रोको,
'शेर' मारकर बने अकंटक, करो सहाय, न टोको।
बोलो नहीं, बताओ चुपके, कहाँ दुष्ट है सोया?
बस, उसका है अंत आज ही, काटेगा जो बोया।
कल बंगाल कौन जाता है, भेजूँ उसे जहन्नुम,
और अभी ही साथ-साथ ही चुपके चली चलो तुम।"
"कौन? कौन? क्या तू सलीम है? क्या सलीम शाहज़ादा!
परघर जाकर, तस्कर बनकर, ऐसा नीच इरादा?
मेरा तो विश्वास और था, धाखा मैंने खाया,
जाओ, अभी निकल जाओ तुम, पग जो एक बढ़ाया
देती हूँ आवाज़ अभी मैं, चोर पकड़ जाता है,
हत्यारे का हाथ अभी ही अभी जकड़ जाता है।
परनारी के घर में घुसना पति का ख़ून बहाने,
फिर भी अपने को सलीम कह आया मुँह दिखलाने!
रुको नहीं, उलटे पावों तुम फ़ौरन पीछे जाओ,
होकर कौन? चले क्या करने? ज़रा शर्म तो खाओ।"
"मेहर! मेहर! तुम क्या कहती हो, मैं हो गया पराया?
मेरी भावी सम्राज्ञी ने किसको है अपनाया?
क्या चुंबन के नहीं लगे हैं इन अधरों पर ताले?
वही अधर हैं हुए आज यों मुझे रोकनेवाले?
जो मेरी आँखों में रहती, वही आँख दिखलावे,
जो कल संग हवा खाती थी, आज हवा बतलावे।

अपना ही साम्राज्य, उसी में घुमने तलक न पाऊँ,
मेरी वस्तु और ले जावे, मैं तकता रह जाऊँ!
मैं ही ख़ुद ही लूटा जाऊँ, मुझको कहो लुटेरा,
मुझको ही तुम चोर बनाओ, हृदय चुराकर मेरा!
क्या आवाज़ लगाओगी? हाज़िर हूँ, बंदी कर लो,
ज़ंजीरों का कौन काम है, बाहु-पाश में भर लो।
पर 'अफ़ग़ान' दिखला दो पहले, उसे ख़त्म तो कर लूँ,
उसके बाद कहोगी जो कुछ, करने को हाज़िर हूँ।"
"बालापन से पूछो जाके, उच्छृंखलता सारी,
सुमन-विकास, मधुर अलि-गुंजन, मुक्ताओं की क्यारी—
ऊषा निज अंचल में भरकर चलती हुई बिचारी,
जब से उस विवाह-दिनकर की आई इधर सवारी।
आज सलीम! बात करते हो जिससे, परनारी है,
जो अपने कर्तव्य-धर्म पर तन-मन-धन हारी है।
उससे उचित नहीं है तुमको, सोचो, अधिक ठहरना,
और किसी की पत्नी से यों बहकी बातें करना।
नहीं यहाँ साम्राज्य तुम्हारा, मेरा पावन घर है,
इसकी दीवारों के भीतर दंपति-धर्म अमर है।
नहीं तुम्हारा राज्य चाहती, अपने घर की रानी,
ऐसे नहीं गिराना होता कभी आँख का पानी।
मूर्ख बनो मत, सोचो-समझो, धर्म-नीति मत छोड़ो,
महापतन की ओर न जाओ, पापों से मुख मोड़ो।
है वह कौन, मेरे जीते-जी उन पर हाथ लगावे?
कभी न होगा, लाखों ही का सर चाहे गिर जावे।
दोनों में से एक यहाँ पर पहले सो आवेगा,
तब फिर बाल एक भी बाँका उनका हो पावेगा।

एक बार मैं फिर कहती हूँ, चुपके-से चल दीजे।
बहुत हो चुका है इतना ही, अधिक देर मत कीजे।
राह लीजिए घर की अपने, जाने मत यह कोई,
क्षण-भर जो तुम और रुके, तो अपनी इज़्ज़त खोई।
विनय मानते हो चुपके से, या आवाज़ लगाऊँ,
या हो रक्त देखना हो, तो अपने हाथ दिखाऊँ?"
"ओ पाषाण हृदय! बस-बस, अब जाता हूँ, मैं जाता,
क्या सचमुच तू वही मेहर है, समझ नहीं कुछ आता।
कल जो प्यार मुझे करता था, आज वही दुत्कारे!
आज तलक के कोमल नाते रौंदे क्षण में सारे!
स्वप्न देखता था क्या-क्या मैं, तूने मुझे जगाया,
क्या सम्राट विश्व का होना जो न तुम्हें अपनाया।
लाख बधाई! धन्य धन्य है! तू जीती, मैं हारा,
तेरे इस पाषाण कोट में मेरा कहाँ गुज़ारा!
अंतिम बिदा! चूक सब मेरी करना क्षमा दया कर,
रमणी क्या रहस्य है? भगवन! सोचूँगा घर जाकर।"
शीश झुकाकर दृष्टि डालता छिछली-सी रमणी पर,
बड़े वेग से लौट चल दिया फिर नकाब में छिपकर।
मेहर जमी रह गई वहीं पर, हिली न बोली-चाली,
मौन-मूर्ति बन गई लिए कर में करवाल निराली।
ज्यों ही हुआ सलीम निकलकर अंधकार में बाहर,
छूट गई तलवार हाथ से, गिरी अचेत धरा पर।

इलाचंद्र जोशी

पंडित इलाचंद्र जोशी हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ, विद्वान्, समालोचक, कहानी और उपन्यास-लेखक ही नहीं, वरन् एक

विशेष शैली के अनुभूति, कल्पना-प्रधान और जन्मजात कवि हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'विजनवती' नाम से प्रकाशित हुआ है। 'विजनवती' की प्रत्येक कविता की शैली भिन्न है। कविताएँ बड़ी उच्च कोटि की, मार्मिक, गंभीर और भाव-पूर्ण हैं, सभी 'जलवत् तरल और आलोक-रश्मिवत् सरल' हैं। कविता प्रायः रूपकमय हैं, और उनमें विषाद-रस की प्रबलता भी है। इसमें सन्देह नहीं कि जोशीजी उच्च कोटि के सहृदय और श्रेष्ठ कवि हैं। उनके काव्य में भाव-चित्रण बड़ा अनूठा होता है। बँगला और अँगरेज़ी के सुंदर काव्यों के प्रभाव से आपकी शैली भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से गंभीर और बड़े परिमार्जित रूप में उपस्थित हुई है। आपकी जोड़ के कवि इने हो गिने हैं।

मायावती

मैं रोता हूँ, मैं निशि-दिन पल-छिन रोती,
मेरी आँखों से बिखरे पड़ते मोती।
मेरे आँसू हैं पल्लव-पत्र में कंपित,
आनन है मेरे अश्रु-ओस से सिंचित,
मम क्रंदन से तारे हैं नभ में पुंजित,
मैं नयन-नीर से निखिल प्रकृति को धोती।
मैं तरल अश्रु से निशि-दिन अविरल रोती।

मुझको पावस की घन-घन-घटा रुलाती,
वह सजल उसास कहाँ से है नित लाती?
व्याकुल करती है नित मुझको घन-धारा,
रोता हूँ देख नदी का यौवन प्यारा,
उमड़ा पड़ता है आँसू का फव्वारा,
अविदित विषाद से भर जाती है छाती।
मुझको पावस की घन-घन-घटा रुलाती।

मैं देख शरत् की शांत नीलिमा रोती,
मैं देख विजन की छवि निज आकुल होती।
करती है मुझको विकल बाँसुरी क्रंदित;
संध्या मानस में करती आह तरंगित;
मैं त्रिहत्त्व वीणा-सी हो करुणा-झंकृत,
नित नित नूतन सुमनों में अश्रु सँजोती।
मैं देख शरत् की शांत नीलिमा रोती।

मैं हँसती हूँ, मैं नित पगली-सी हँसती,
मेरे मुख से फूलों की झड़ी बरसती।
पुलकित प्रभात-सी रहती हूँ नित विधुरा,
उत्फुल्ल कुसुम - सी रहती हूँ मधु-मधुरा,
नव-अरुण-राग-सी हूँ मैं मादक-अधरा;
मम हास देख हिम बाला नित्य सरसती।
मैं हँसती हूँ, मैं नित पगली-सी हँसती।

हूँ शरच्चंद्र - सी उजियाली मैं बाला,
हँसकर नित करती हूँ त्रिभुवन उजियाला।
द्युति-दीप्त दामिनी से मम हास दमकता,
अति प्रखर सूर्य-कर से यह नित्य चमकता,
इसमें झलमल संध्या का स्वर्ण झलकता,
अरुणोदय ने भी इसमें है रँग डाला।
हूँ शरच्चंद्र - सी उजियाली मैं बाला।

मैं रोती हूँ, हँसती हूँ हो मतवाली,
है सजल नयन में छाई कांति निराली।
निर्झर-शीकर में मम क्रंदन फुहराता,
रवि-किरणों में मम हास सदा लहराता;

संध्या-सागर में अश्रुवेग लहराता,
ऊषा में सजती हास कुसुम की डाली।
मैं रोती हूँ, हँसती हूँ हो मतवाली।

मैं हूँ गंभीरा, हूँ रसवती नवेली,
मैं हूँ कुहेलिका-सम अति कुटिल पहेली;
मैं विजन-वास में रहती हूँ अति क्वथिता,
मैं राग-रंग से हो जाती हूँ मुदिता,
हूँ संध्या-सम विलया प्रभात-सम उदिता,
रजनी की सजनी, सविता की अलबेली।
मैं हूँ गंभीरा, हूँ रसवती नवेली।

मैं महामहिम हूँ भुवन - मोहिनी माया,
निज अश्रु-हास से निखिल जगत् बिरमाया;
है इंद्र-धनुष मेरी माया से अंकित—
मम नयन-वाष्प से होकर नभ में व्यंजित
मम तरल हास से होता है वह रंजित;
है धूप हँसाती मुझे रुलाती छाया।
मैं महामहिम हूँ भुवन-मोहिनी माया।

शांतिप्रिय द्विवेदी

श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'नीरव' नाम के अपने छोटे-से कविता-संग्रह को लेकर आधुनिक हिंदी के काव्य-जगत् में पदार्पण किया था। प्रारंभिक रचनाओं में अविकच कोमलता थी। 'नीरव' के बाद उनकी रचनाओं का दूसरा संग्रह 'हिमानी' नाम से प्रकाशित हुआ, जिसमें कोमलता तो क़ायम रही, किंतु प्रारंभिक अविकचता विकास-क्रम के साथ लीन हो गई। कविता कोमलता,

सब ओर से सीमाबद्ध, किंतु अभिव्यक्ति के लिये व्याकुल भावुकता के कारण और भी मर्मस्पर्शिनी हो गई है।

कवि होने के अतिरिक्त श्रीयुत शांतिप्रिय द्विवेदी आधुनिक हिंदी-कविता के सुंदर समालोचक भी हैं, और इस दिशा में वह एक नवोत्थित शैली के निर्माता हैं। और, वह शैली उगते हुए तरुणों में स्नेहादृत हो रही है। आपकी आलोचनात्मक पुस्तकें 'परिचय', 'हमारे साहित्य-निर्माता' तथा 'कवि और काव्य' नामों से प्रकाशित हुई हैं।

पद-अंक

तुम पग-पग पर पड़े हुए हो मेरे प्रिय के दूत-समान,
दुर्दिन की घड़ियों में मुझको दोगे क्या आश्वासन-दान?
तुममें अंकित हैं प्रियतम के कुछ मधुमय संदेश महान,
उन्हें सुनाकर शीतल कर दो मेरे ये संतापित प्रान।
किंतु हाय तुम तो हो नीरव, बेसुध-से हो हे पद-अंक!
दीन हीन हो उसी तरह से, जैसे पथ में मूर्च्छित रंक।
उन पद-कमलों के वियोग में तुम भी क्या दुख सहते हो,
इसीलिये तो मन मारे नित पड़े धूल में रहते हो!
और आह! मैं चंचल होकर खोज रही प्रिय को वन-वन,
किंतु तनिक भी झलक न पाती, करती रहती हूँ रोदन।
हे नीरव! यों मौन रहो मत, कुछ तो प्रिय की कहो कथा,
कब प्रिय आवेंगे इस पथ से हरने मेरी विपुल व्यथा।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्रीयुत रामधारीसिंह 'दिनकर' की कविताओं का एक संग्रह 'रेणुका' नाम से प्रकाशित हो चुका है। पुस्तक में कविताओं की

संख्या काफ़ी है, और उनके गुणों की सूची भी बहुत छोटी नहीं। बिहार के नए कवियों में श्रीयुत 'दिनकर' का स्थान निस्संदेह ऊँचा है। आपने बिहार के विगत वैभव पर ओज-पूर्ण शब्दों में मार्मिक रचनाएँ लिखी हैं। वर्तमान युग के क़रीब-क़रीब सभी नए कवियों की भाँति आपकी कविताओं में भी अंतर्वेदना का आभास मिलता है, जिसका बाह्य चित्रण के साथ आपने सुंदर सामंजस्य किया है। आपकी भाषा संयत, परिमार्जित और ओज-पूर्ण तथा भाव प्रभाव-पूर्ण हैं। आपकी कविता में आलंकारिक छटा बड़ी सुंदर दिखाई देती है।

अगेय की ओर

गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !

सुनना श्रवण चाहते अब तक
भेद हृदय जो जान चुका है,
बुद्धि खोजती उन्हें, जिन्हें
जीवन निज को कर दान चुका है।
खो जाने को प्राण विकल है
चढ़ उन पद-पद्मों के ऊपर,
बाहु-पाश से दूर जिन्हें
विश्वास हृदय का मान चुका है।

जोह रहे उनका पथ दृग, जिनको पहचान गया है चितवन,
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !

उछल-उछल बह रहा अगम की
ओर अभय इन प्राणों का जल,
जन्म-मरण की युगल घाटियाँ
रोक रहीं जिसका पथ निष्फल,
मैं जल-नाद श्रवण कर चुप हूँ,

सोच रहा यह खड़ा पुलिन पर—
"है कुछ अर्थ, लक्ष्य इस रव का ?
या कुल-कुल कल-कल ध्वनि केवल ?"
दृश्य, अदृश्य कौन सत् इनमें ? मैं या प्राण-प्रवाह चिरंतन ?
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !

जलकर चीख उठा वह कवि था,
साधक जो नीरव तपने में,
गाए गीत खोल मुँह क्या वह,
जो खो रहा स्वयं अपने में ?
सुषमाएँ जो खेल रही हैं
जल-थल में, गिरि-गगन-पवन में,
नयन मूँद अंतर्मुख-जीवन
खोज रहा उनको अपने में।
अंतर-बहिर एक छवि देखी, आकृति कौन ? कौन है दर्पण ?
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !

चाह यही छू लूँ स्वप्नों की
नग्न कांति बढ़कर निज कर से,
इच्छा है आवरण स्रस्त हो,
गिरे दूर अंतःश्रुति पर से।
पहुँच अगाय-गेय-संगम पर
सुनूँ मधुर वह राग निरामय,
फूट रहा जो सत्य, सनातन
कविर्मनीषी के स्तर-स्तर में।
गीत बनी जिनकी झाँकी अब दृग में उन स्वप्नों का अंजन।
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन का श्रोता मन !

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

श्रीयुत 'अंचल' की कविताओं का रूप भावुकता की अल्हड़ आँधी में लहराते हुए कविता-सुंदरी के अंचल से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। आपकी कविताओं में वैसी आतुरता, वैसी ही अकुलाहट मिलती है, और लहराते हुए चीर की भाँति आपकी कविताओं का कैशोरोचित चांचल्य वेदना की अनुभूति के चटकीले रंगों में रँगा हुआ है। इधर के नए कवियों में 'अंचल'जी सबसे अधिक 'रोमांटिक' हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'मधूलिका' नाम से निकलनेवाला है। आपने कहानियाँ भी अनेक और सुंदर लिखी हैं, जो 'तारे' नाम से संग्रह हुई हैं। 'माधुरी' के ख्यातनामा संपादक पंडित मातादीन शुक्ल के आप सुपुत्र हैं। 'अंचल'जी ने नवयुवक कवियों में केवल बाईस वर्ष की ही अवस्था में विशेष स्थान बना लिया है।

जलती निशानी

फिर विकल है प्राण धू धू, उड़ चली जलती निशानी।
फिर पिपासा की परिधि में माधुरी का पुंज जलता;
आज मधु रजनी न पूछो कौन सा उन्माद चलता।
आज सब तृष्णा खुली जाती किसी की याद आई;
आज जीवन में प्रखरतम लालसा उमड़ छाई।
आज झंझावात घिर आए करीलों के विजन में;
आज उल्कापात होते हुए तृषा के श्याम घन में।
दग्ध उर में नीर बरसाती चली फिर वह हिमानी;
जब धधकती आज प्राणों में यही जलती निशानी।
है दृगों में खिंच रही विद्युत् - भरी वह नग्न रेखा;
मेघ पागल हो उठे, कैसी प्रलय की रक्त - लेखा।

आज जोगी की कुटी में फिर किसी की सुधि सुलगती ;
एक अनियंत्रित तृषा अधड़ शिखा-सी आज जगती ।
बस न पूछो रक्त में किसने भरा यह अग्नि-आसव ;
कौन अंगों में लगाता एक आकांक्षा असंभव ।
एक क्षण की संगिनी फिर आइ युग - युग की कहानी ;
फिर विकल उर की भड़कती उड़ चली जलती निशानी ।

वासना के गान गाते कवि चला सूनी डगर में ;
तम घिरे, पर एक ज्वाला दीप्त थी प्रिय के नगर में ।
आज दुर्दिन में सनम का उड़ रहा सावन सलोना ;
आज कैसी तृप्ति, कितना है अभी उन्मत्त होना ।
शून्य मंडल लालसा का आज क्यों विप्लव भरा-सा ;
क्यों तरंगों की तरी पर जल चला तूफ़ान प्यासा ।
बढ़ गए सब दीप पथ में क्यों नियत का मूक वाणी ;
फिर विकल हैं प्राण धू-धू, उड़ चली जलती निशानी ।

आज प्यासे फिर सुलगते मद-भरी मधु वासना में ;
आज फिर उद्भ्रांत लोलुप इस ज्वलित उपासना में ।
फिर महा व्याकुल अरण्यों के निविड़ तूफ़ान पीते ;
आज वेदन की पुरी में डोलते विक्षिप्त जीते ।
प्रज्वलित है मरु तृषा से जल रहे मार्तण्ड प्रतिपल ;
यह जलन की मूर्ति धूनी है अमिट कितनी अचंचल ।
आज यह उद्गार कैसा, कब सजा ऊसर बनानी ;
फिर विकल हैं प्राण धू-धू, उड़ चली जलती निशानी ।

लालसा ! बस कुछ न पूछो, है प्रबल विस्फोट वाहन ;
आज किंशुक अग्निमय जलते जलाते फुल्ल यौवन ।
क्षुब्ध जीवन-स्रोत में कितने बँधे तूफ़ान फिरते ;
रूप रजनी में उमंगों की प्रबल आह्वान घिरते ।

आज पारावार जल चलते सुलगते नील अंबर;
एक उत्पीड़न गरल के गर्त में उलझे बवंडर।
आज लहराते विकल, पागल बने जो थे गुमानी;
फिर धधकती आज प्राणों में यही जलती निशानी।

आह! वह अवनतमुखी लज्जा लजित उन्मादवाली;
आज जगमग हो उठी वह रत्न-दीपों की दिवाली।
जो छलकती झूमती निर्माल्य की हाला बहाती;
जो उमड़ती सिंधु-सी मोती लड़ी-सी टूट जाती।
आज ओरे कवि! वही चिर चचला नंदनवती-सी
घिर चली चिर स्वप्न की संपत्ति अंतर आरती-सी।
और अब क्या? बुझ सकेगी क्या कभी तृष्णा दिवानी!
बस, यहीं अपना विसर्जन और यह जलती निशानी।

इन दिगंतों के डगर पर उग्र गंध-प्रवाह बहता;
फिर विकल हूँ, कौन बोलो तो क्षितिज के पार रहता।
है सुना आदेश मस्ती के वहाँ प्रलया लुटाते;
सब चले जाते वहीं अपनी प्रखर तृष्णा सुनाते।
मैं यहाँ वंचित, सुना उस पार मधु के कुंभ ढलते;
सब बुझाते प्यास, प्यासे बन महासागर निकलते।
पर यहाँ तो एक हाहाकार उच्छृंखल जवानी;
फिर विकल हैं प्राण, धू-धू जल चली जलती निशानी।

नरेंद्र शर्मा

श्रीयुत नरेंद्र शर्मा एम्० ए० ने हिंदी के उदीयमान कवियों में, अपनी भाव-पूर्ण और मार्मिक रचनाओं के कारण, विशिष्ट और श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लिया है। आपकी स्फुट कविताओं के दो संग्रह-ग्रंथ 'शूलफूल' और 'कर्णफूल' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी

रचनाएँ कल्पना और अनुभूति-प्रधान होती हैं। कोमलता और मधुरता भी कविताओं का प्रधान गुण है। सरल, मधुर और भाव-पूर्ण भाषा में हृदय की मार्मिक वेदना का चित्रण शर्माजी की काव्य-रचना की विशेषता है। आजकल की कविताएँ बड़ी प्रौढ़, लोक-प्रिय हो रही हैं। प्रकृति का वर्णन, संतप्त हृदय की वेदना, भावना-संसार के आकुल प्राणियों की पीड़ा, स्वप्नों का उन्माद, आशावाद आपकी कविता की विशेषता है। नवीन कविताएँ विशेष शैली से युक्त हैं। आपने कई पुस्तकें लिखी हैं, जो अभी अप्रकाशित हैं।

कब मिलेंगे

आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
आज से दो प्रेम-योगी अब वियोगी ही रहेंगे!
सत्य हो यदि कल्प की भी कल्पना कर धीर बाँधूँ,
किंतु कैसे व्यर्थ की आशा लिए यह योग साधूँ?
जानता हूँ, अब न हम-तुम मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
आयगा मधु-मास फिर भी, आयगी श्यामल घटा घिर;
आँख भरकर देख लो, पर मैं न आऊँगा कभी फिर।
प्राण तन से बिछुड़कर कैसे मिलेंगे?
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
अब न रोना, व्यर्थ होगा हर घड़ी आँसू बहाना;
आज से अपने वियोगी हृदय को हँसना सिखाना।
अब न हँसने के लिये हम-तुम मिलेंगे!
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
आज से हम-तुम गिनेंगे एक ही नभ के सितारे;
दूर होंगे पर सदा को ज्यों नदी के दो किनारे।

सिंधु-तट पर भी न जो दो मिल सकेंगे;
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
तट नदी के भग्न उर के दो विभागों के सदृश हैं;
चीर जिनको विश्व की गति बह रही है वे विवश हैं।
एक अथ इति पर न पथ में मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
यदि मुझे उस पार के भी मिलन का विश्वास होता,
सत्य कहता हूँ, न मैं असहाय या निरुपाय होता।
व्यर्थ है पर स्वप्न यह—'फिर भी मिलेंगे!'
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
आज तक किसका हुआ सच स्वप्न जिसने स्वप्न देखा;
कल्पना के मृदुल कर से मिटी किसकी भाग्य रेखा!
अब कहाँ संभव कि हम फिर मिल सकेंगे!
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
आह, अंतिम रात वह! बैठी रहीं तुम पास मेरे;
शीश कंधे पर धरे, घन कुंतलों से गात घेरे।
क्षीण स्वर में कहा था—'अब कब मिलेंगे?'
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!
'कब मिलेंगे?' पूछता मैं विश्व से जब विरह-कातर,
'कब मिलेंगे?' गूँजते प्रतिध्वनि-निनादित व्योम-सागर।
'कब मिलेंगे?' प्रश्न, उत्तर 'कब मिलेंगे!'
आज के बिछुड़े न-जाने कब मिलेंगे!

बालकृष्ण राव

श्रीयुत बालकृष्ण राव आई० सी० एस० हिंदी के उदीयमान कवियों में महत्त्व-पूर्ण और विशिष्ट स्थान रखते हैं। आपके पिता

मि० सी० वाई० चिंतामणि देश के इने-गिने नेताओं में से है। यद्यपि श्रीबालकृष्ण राव का मातृभाषा तैलगू है, किंतु हिंदी-साहित्य के विद्वान् होने के साथ ही आप ऊँचे दर्जे के कवि भी हैं, यह हिंदी-संसार के लिये गर्व की बात है। आपकी प्रारंभिक कविताओं का संग्रह 'कौमुदी' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें आपकी जिस सुंदर काव्य प्रतिभा का दर्शन होता है, उसका विकसित रूप आपके द्वितीय काव्य संग्रह 'आभास' में पूर्ण रूप से दृष्टिगोचर होता है। श्रीबालकृष्ण राव की रचनाएँ कल्पना, अनुभूति और वेदना से पूर्ण हैं। छोटी और मार्मिक कविताएँ लिखने में आप विशेष सिद्धहस्त हैं। कवि होने के सिवा श्रीयुत राव उच्च कोटि के समालोचक भी हैं।

कवि और छवि

विजन विपिन था, नीरव खग मृग, निश्चल तरु थे;
तैर रहे थे मेघ व्योम में मथर गति से।
कलिका के कंपित, सस्मित, सुरभित अधरों को
मंद पवन पल्लव-शय्या पर चूम रहा था।
अरुण नयन थे अति प्राची के, तरुण भानु था;
करुण, कांतिहत, क्षीण प्रभा थी राकापति की।
विमल सरोवर के जल पर, शत-शत रवि-किरणें
खेल रही थीं, द्रवित स्वर्ण-सा उसे बनाकर।
कहीं, सरोवर के तट पर ही, था अशोक-तरु—
पल्लव-दल से लदी एक शाखा झुक-झुककर
अपना ही प्रतिबिंब प्रेम से देख रही थी।
नव-जागृति की ज्योति लिए किरणें द्रुत गति से,
किसलय, पल्लव, शाखा के आवरण हटाकर,
प्रकृति देवि के तरु-मंदिर के अतः पुर में

सजनि, कर रही थीं प्रवेश कंपित चरणों से।
छन-छनकर मृदु ज्योति लिए, ज्वाला को तजकर,
किरणें वहीं समुत्सुक, तम की छटा देखने;
जिनकी पद-ध्वनि सुनते ही, भय से हो कातर
तम विलीन हो गया शून्य में तीव्र वेग से—
केवल कुछ पद-चिह्न रह गए छाया बनकर।
विजय-गर्व से तरु के चारों ओर फैलकर
किरणों ने भर दिया प्रकाश विमल, कण-कण में,
दीप्त हो उठा निखिल वनांतर मृदु आभा से;
चमक उठा शुचि शिलाखंड नव धवल ज्योति से—
तरुतल के सन्निकट तमावृत जो रक्खा था।
निविड़ निशा के अंधगर्भ से स्वयं निकलकर,
चिर-अमूर्त सौंदर्य-राशि मानो अनंत की,
किसी अलौकिक अभिलाषा से प्रेरित होकर—
स्फट सीमित, जीवित, सदेह बनने को मानो
व्याप्त हो गई शिलाखंड में सहसा आकर।
विस्मित नयनों से वन के खग-मृग ने देखा,
वन-देवी ही स्वयं निमल प्रस्तर-प्रतिमा बन—
मानो अपने प्रजावर्ग को दर्शन देने—
इस प्राचीन अशोक-वृक्ष के नीचे आकर,
कण-कण से अपना विस्तृत वैभव समेटकर
खड़ी हो गई बालारुण की स्निग्ध ज्योति में।
पुलकित होकर मंद पवन ने चँवर डुलाया;
विहग वंदना करने लगे मधुर कलरव कर;
भक्ति, प्रेम के भावों से भर, तरु ने झुककर
चरणों पर बिखरा दी अंजलि पल्लव-दल की।

किरणों ने मोहित हो प्रतिमा के अंगों को
अपने अद्भुत स्पर्शों से भर दिया कांति से।
स्वयं सजाकर लगीं देखने जब वे सुख से,
सुध-बुध खोकर तब सहसा प्रेमातिरेक से
लगीं चूमने प्रतिमा के शीतल अधरों को ;
दीप्त हो उठे तब सहसा वे मधुर हास से।

वहीं निकट ही शिल्पकार भी स्वयं खड़ा था ;
काँप रहे थे चरण, किंतु अपलक नयनों से
देख रहा था वह अपने श्रम के प्रसाद को।

वह कवि था, प्रेमी था सुमनों का, विहगों का ;
प्रकृति उपास्य देवि थी उसकी, वन मंदिर था।
पवन उसे शुचि स्नेह-स्पर्श से शीतल करता ;
भरकर मन में सुरभि-सुधा की मादक धारा,
सरस सुमन सुख से अचेत-सा कर देते थे।
भर आते थे नयन भक्ति से, कृतज्ञता से।
पर ये अद्भुत भाव हृदय में ही रह-रहकर
कर देते थे विकल कल्पनाओं से कवि को ;
पल-पल पर बनते-मिटते रहते थे सपने।

इन असंख्य आकांक्षाओं की अद्भुत धारा
उमड़ पड़ी बस कवि के मन से अवसर पाकर ;
गूँज उठा वन, सुना स्तब्ध होकर खग-मृग ने,
कवि कहता था "वनदेवी! मैं जब तक तेरी
बना न लूँ अपने हाथों से प्रस्तर-प्रतिमा,
पवन स्पर्श कर सके न मुझको, सुमन सूखकर
बदल जायँ काँटों में, मेरे दृष्टिपात से।

विहग मूक हो जाएँ जब मैं वन में आऊँ;
पशु मेरी पद-ध्वनि सुनकर भय से छिप जावें।"
तब से अथक परिश्रम करके कवि निशि-वासर
पूर्ण कर सका था संध्या को अपनी कविता;
उसी समय आ गई निशा आतुर चरणों से।
पीछे हटा, पूर्ण कर जब कवि उसे देखने,
देखा रजनी ने तब तक चुपके-से आकर,
तम के अंचल में प्रतिमा को छिपा लिया था।
विकल प्रतीक्षा में प्रभात की, तारे गिनकर,
खड़े-खड़े ही कवि ने सारी रात बिता दी—
अब खग-मृग के साथ स्वयं अपनी ही कृति को
कवि आश्चर्य-भरे नयनों से देख रहा था।
काँप रहे थे चरण; अधर भी काँप रहे थे;
काँप रही थी कोमल किसलय दल-सी पलकें;
बिखरे काले केश पवन के आघातों से,
दूर्वा-दल से लहर-लहरकर काँप रहे थे।
जाने कब तक इसी भाँति कवि वहाँ खड़ा था—
विहग और पशु भी स्थिर होकर रहे देखते।
अधिक वेग से काँप उठा सहसा कवि का तन;
आगे बढ़ा सवेग एक पग, किंतु ठिठककर
खड़ा रह गया; काँप उठे तरु अविदित भय से।
चमक उठा सहसा कवि का मुख तीव्र ज्योति से,
"देवि! देवि!" की ध्वनि से सहसा गूँज उठा वन;
कवि अचेत हो गिरा वहीं प्रतिमा के पद पर—
नयन बंद थे, बद्ध प्रणति-अंजलि में कर थे।

❀ ❀ ❀

एकत्रित हो मेघ छा गए तरु-शिखरों पर ;
सूर्य वेग से मध्य गगन पर चढ़ आया था ।

आरसीप्रसादसिंह

बिहार के कवियों में श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह का भी श्रेष्ठ स्थान है। उदीयमान कवियों में आपने बड़ी शीघ्रता से अपनी जगह बना ली है। इधर दो-एक वर्ष में ही आपने काफ़ी और सुंदर कविताएँ लिख डाली हैं। कविताएं भाव और भाषा, दोनो की दृष्टि से उच्च श्रेणी की होती हैं। भिन्न-भिन्न विषयों पर सफलता-पूर्वक लिखने की आपमें सुंदर प्रतिभा है। प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य-वर्णन में, वेदना और मर्म पूर्ण भावों के प्रकाशन में आप कुशल हैं।

शतदल

प्रमुदित कर पद्मों के प्राण,
करता कलियों को मधु-दान,
चढ़ विहगों का स्वर-लहरी पर आता है जब स्वर्ण-विहान,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरी ही मुसकान !
भाँति-भाँति के धर वर वेश,
अनुरंजित कर गगन-प्रदेश,
लहराते जब काले-काले बादल-दल निर्बाध, अशेष,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरे ही घन केश !
शीतल, कोमल किरणों का वन ;
खोल अमरपुर का वातायन,
उझक झाँकता है जब हिमकर पुलकित कर वसुधा के तन-मन,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरा ही आनन !

उतर हिमालय से विस्फीत,
शैल-शिलाओं पर श्री-पीत,
गुंजित करती तानों से जब निर्झरिणी वन-प्रांत पुनीत;
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरे ही संगीत!
चूम शून्य के अधर-प्रवाल,
ताल-ताल पर हो बेहाल,
नर्तन करती रत्नाकर का सरल तरंगावलि उत्ताल,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तेरा ही हृदय विशाल!

गोपालसिंह नैपाली

श्रीयुत गोपालसिंह नैपाली हिंदी-काव्य-क्षेत्र में आशावादी कवि और गायक हैं। आपकी कविताओं में करुणा और वेदना की सुंदर धारा प्रवाहित होती है। बिहार-प्रांत के कवियों में नेपालीजी का भी ऊँचा स्थान है। मर्म, पीड़ा, वेदना और भावना का सुंदर सामंजस्य आपकी कविता की विशेषता है। आपकी कविताओं का सुंदर संग्रह प्रकाशित हो चुका है। कुछ ही वर्षों में आपने अनेक सुंदर कविताएँ लिख डाली हैं, जिनमें काव्य के सुंदर लक्षण पाए जाते हैं।

गीत

चल सखि, चल होता है विलंब, पथ कौन, कहाँ, कैसा दुर्गम?
शृंखला तोड़ बह रहा सलिल,
पर तू पथ में ही पड़ी शिथिल;
बावली, जानती नहीं, यही तो पथ जाता सीधे संगम!

बनती क्यों पथ का विघ्न अटल,
उठ, इठला, इतरा, मचल-मचल;
चेतनता की चंचल पुतली, इतनी जड़ क्यों, तू तो जगम !
यह तन नश्वर, पर अमर चाह,
फिर हम-ऐसों की खुली राह;
जीवन में हम भी तो देखें, होता है कैसा उदधि अगम !

उदयशंकर भट्ट

पंडित उदयशंकर भट्ट हिंदी के पुराने लेखक, कवि और नाटककार हैं। आप संस्कृत, हिंदी के विद्वान् हैं। 'तक्षशिला'-नामक आपका काव्य प्रसिद्ध है। कई नाटक-ग्रंथों की रचनाएँ की हैं। भट्टजी नाटकों के लिखने में पूर्ण सफल हुए हैं। नवीन ढंग की कविताएँ लिखने में आपने अच्छी प्रतिभा का परिचय दिया है। उनमें भाव, कल्पना और अनुभूति की अच्छी मात्रा प्राप्त होती है।

यात्रा

चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं,
जहाँ बसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
आँखवालो, तुम बैठे हो, मैं कर आँखें बंद चला;
अरे, उधर तो रात न होती, सदा सुबह है, शाम नहीं।
चलो-चलो ही की पुकार है, सुस्ताना आराम नहीं;
बिना पैर ही के चलना है, करना कहीं मुक़ाम नहीं।
चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं;
जहाँ बसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
मेरे आँगन में भी कुछ दिन रहा ख़ूब उजियाला था;
मेरे भी अरमान कभी थे, मैंने भी दिल पाला था।

अरे, उलझता था यह यौवन कभी नशीली आँखों से ;
मेरी मधुशाला में भी तो साक़ी, मीना, प्याला था।
चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं ;
जहाँ वसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
मेरी तनी हुई मूछों पर गर्व नाचता रहता था ;
मेरे विजय-रोप के ताने विश्व पराजित सहता था।
मेरे मुख से छलक पड़ा था पागल दुनिया का पानी ;
बिजली बन मुसका उठती थी मेरी आशा दीवानी।
चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं ;
जहाँ वसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
अरे, अतीत गुदगुदा मेरी स्मृतियों पर इतराता था ;
वर्तमान भी इन चरणों पर अपनी आँख बिछाता था।
घूर रहा था यह भविष्य यों, इसका था कुछ ज्ञान नहीं ;
हाय, घरौंदे फूट गए सब, बिखर गया सामान यहीं।
चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं ;
जहाँ वसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
यहीं पराजय के जमघट में रंगत 'सदाबहार' छिपी ;
यहीं गर्व का सिर नीचा है, यहीं विश्व की हार छिपी।
अपना-अपना बना हज़ारों आनेवाले चले गए ;
इस निष्ठुर मादक चितवन से हृदय हमारे छले गए।
चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं ;
जहाँ वसंत सदा हँसता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।
आने पर हँसते, जाने पर रोते हैं मतिमान नहीं ;
तुम सबकी मंज़िल बाक़ी है, यह रहने का स्थान नहीं।
तेरे उदधि उदार भाग में नेकी ही तो आई थी,
और मिलेगी बाँट-बाँट यह रखने का सामान नहीं।

चला, चला, रे छोड़ चला सब, वहाँ, जहाँ का नाम नहीं ;
जहाँ वसंत सदा खिलता है, पतझड़ का कुछ काम नहीं।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

पंडित भगवतीप्रसाद वाजपेयी हिंदी के पुराने कवि और सुलेखक हैं। कहानी और उपन्यासकारों में उनका उच्चतम स्थान है। आपने लगभग एक दर्जन उपन्यास और कहानी के ग्रंथ लिखे हैं। पिछले साल से आपने छायावादी या रहस्यवादी कविताएँ लिखनी प्रारंभ की हैं। कविताओं में कल्पना और भावना का अपूर्व आनंद आता है। नैसर्गिक वर्णन में आपकी सूक्ष्म कल्पना कमाल दिखाती है। वेदना, हृदय की पीड़ा और मर्म का हृदय-स्पर्शी वर्णन आपकी कविता में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

पनघट पर—

तुम मिलीं, और हम पनघट पर दो भरी गगरियाँ लिए चलीं ;
मैं प्यासा ही रह गया खड़ा, तुम छलक लहरियाँ लिए चलीं।
विश्रांत पथिक मैं परदेसी, तुम कल्प-लता इंद्राणी-सी ;
मैं मूक चित्रवत् खड़ा रहा, तुम चलीं चटुल रति-रानी-सी।
प्रत्येक तुम्हारा पद-क्षेप, मेरा विलोल पागलपन था ;
मैं चेतन हूँ कि अचेतन हूँ, इस विभ्रम में मेरा मन था।
यह मन भी एक नवल शिशु है, अतिशय चंचल, अस्थिर प्रतिपल ;
जिसको पाया उसको पकड़ा, फिर चखने को भी चरम विकल।
प्रत्येक खिलौना उसका है, कोई हो, चाहे जिसका हो ;
वह यही चाहता है सदैव, जिसको चाहे, वह उसका हो।
यद्यपि मानवता का विकास अब आगे बहुत चला आया ;
तो भी वह मेरे इस मन की शिशुता को कहाँ बदल पाया।

तिस पर भी मैं था तृषा-तप्त, तुम सुधामयी अभिरामा थीं,
मैं बूँद-बूँद का चातक था, तुम स्वाति-सघन-घनश्यामा थीं।
प्रत्येक तुम्हारा पाद-पद्म ज्यों-ज्यों आगे को पड़ता था,
मैं मन-ही-मन प्रार्थना एक करने को आगे बढ़ता था।
ठहरो, सुन लो, मैं कुछ बातें तुमसे ही करने को आया,
अब तक मैंने उनके कहने का कहीं नहीं अवसर पाया।
मैं आदिकाल का तृषित पुरुष, तुम प्रकृति-रूपिणी माया हो,
जिस व्याख्यान का उपोद्घात मैं, तुम उसकी ही काया हो।
मैं जिस तरुवर का जीवन हूँ, उसकी तुम शीतल छाया हो;
भर दो ऐसी अंजलि, जिस पर प्रतिबिंब तुम्हारा आया हो।
मैं बूँद-बूँद इस भाँति पिऊँ, अंजलि के जल का अंत न हो;
मैं निशि-दिन पीता रहूँ, किंतु तृष्णा का प्रकट दिगंत न हो।
तुम अजर स्रोत-रूपिणी सजनि, कुछ अंजलियों की कौन बात;
मैं चिर अतीत से मुखर मुक्त इस जग-जीवन का हूँ प्रपात।
मैं निशा-उषा-सश्लिष्ट अनिल, मैं मानस की हूँ लहर लोल;
मैं सुख-दुख के निर्द्वंद्व द्वंद्व के पल-पल में करता कलोल।
मैं प्रथम मिलन के अंतर्गत प्रस्फुरण विमल मुसकानों का;
मैं हूँ प्रलयंकर विस्फुलिंग कुछ शिथिल हुए अरमानों का।
मैं दैन्य-दुर्दशा की तड़पन, मैं दुर्बलता का नाशकाल;
मैं आदि-शक्ति-सौभाग्य-चिह्न-सा लाल-लाल वह बिंदु-भाल!
मित्रता-हीन शत्रुता-हीन भावों का मैं हूँ मिलन रूप;
मैं आदिकाल से अनाघ्रात, हूँ सुमन, और निर्धूम धूप!
मैं प्रेम-रूप कामना-कुंज का एकमात्र अविकल निःस्वन,
पति-दर्शन तक से चिरवंचित नव विधवाओं का पागलपन!
तुम चली गईं, यह भी न देख है खड़ा हुआ यह पथिक कौन;
इकटक होकर जो देख रहा, कुछ कहने को है, किंतु मौन।

सोचो कि तुम्हारा पग-चालन था राजहंसिनी के समान ;
तिस पर तुम भारानत चल दीं द्रुत गति का धारण कर विधान ।
इस पनघट के पंकिल पथ का कुछ मर्म तो तुम्हें ज्ञात न था ;
फिसलन से बचने का प्रकार अभिसार और प्रणिपात न था ।
तुम गिरी, और तब साथ-साथ वे अमृत-गगरियाँ गईं फूट ;
तुम अस्त-व्यस्त हो गईं, और चिर-संचित खुशियाँ गईं फूट ।
जो सुधा-बिंदु इस जीवन को अक्षय अविनश्वर कर जाते ;
वे हाय पंक में मिल-मिलकर मेरी तृष्णा हैं झुलसाते !
तुम रिक्त-हस्त और क्षिप्त-ध्वस्त होकर चल दीं चिरखिन्न मौन ;
अब निकट देखकर बोल उठीं, बतलाओ, तुम हो पथिक कौन ?
मैं क्या-क्या हूँ, क्या बतलाऊँ, जब बतलाने की नहीं बात ;
मैं प्यासा ही मर गया तुम्हारा देख अकल्पित घट-निपात ।

गंगाप्रसाद पांडेय

पंडित गंगाप्रसाद पांडेय वर्तमान नवीन काव्य-गगन के जगमगाते हुए उज्ज्वल नक्षत्र हैं। आपकी कविताओं का एक संग्रह 'पर्णिका' नाम से प्रकाशित हुआ है, और दूसरा संग्रह 'वासंतिका' प्रकाशित होनेवाला है। हिंदी का आधुनिक काल गीत-प्रधान काव्य का युग है। पांडेयजी इस युग के सुकुमार, भावुक और उत्कृष्ट कवि हैं। गीतों में इनकी आत्मानुभूति बड़ी प्रबल है। प्रेम, वेदना और करुणा की त्रिवेणी का सरल, स्निग्ध प्रवाह है, साथ ही उसमें विश्व-प्रेम और विश्व-सौंदर्य का निदर्शन है। आपकी भाषा परिमार्जित, शुद्ध और कोमल होती है। कवि होने के सिवा आप सुंदर विवेचक, आलोचक और निबंधकार भी हैं। आपके निबंधों का संग्रह प्रकाशित होनेवाला है। सन् १९३९ ई० से आपका

कविता-काल प्रारंभ होता है। इतने थोड़े समय में ही आपने अपन
अद्भुत काव्य-प्रतिभा से नवोदित काव्य-जगत् को चमत्कृत क
दिया है।

गीत

आज भी प्रिय क्यों न आए?
घुमड़ पावस सघन घन-गन गगन में सखि, देख छाए।

चपल चपला चमक चंचल
चित्त मेरा कर रही है,
प्राण में, तन में हमारे
कसक - कंपन भर रही है,
वेदना की बाढ़ छोटे हृदय में कितनी समाए!

है सजी सब अवनि ऊजड़
सौख्य का वरदान पाकर,
कुछ थकित - सा पवन चलता
सुमन - सौरभ - भार लेकर,
बोल कोकिल डाल पर से विरह - विह्वलता बढ़ाए।

श्याम मेघों से लगाकर
होड मेरे नयन प्रतिपल
हैं बिछाते प्रणय - पथ पर
मोतियों की माल उज्ज्वल,
प्राण आकुल हैं सिसकते, कौन सावन - गीत गाए?
आज भी प्रिय क्यों न आए?

* * *

मिले लोचन से लोचन लोल,
उठे उर आपस में कुछ बोल,
गए हो व्यक्त अचानक हाय,
छिपे दो हृदयों के उद्‌गार,
गया हट मन पर से कुछ भार।
ज्वलित उर ले अधरों में प्यास,
छानता पृथ्वीतल आकाश,
मूक भाषा में आकुल प्राण,
प्राण से करते प्रणय - पुकार,
साधना ही जीवन का सार।
युगल मानस में उठ अनुराग,
जगाता सुप्त निशा का भाग,
सदा अस्पष्ट रही जो साध,
आज सहसा होती साकार,
प्रेम ही जीवन का आधार।
स्नेह - सरिता की विकल तरंग
रही मिल प्रेमांबुधि के संग,
पुलक नभ गाता मंगल - गान,
अमर हो प्रथम मिलन का प्यार,
असीमित सीमित का अभिसार।

'अज्ञेय'

श्रीयुत सच्चिदानंद-हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' हिंदी के श्रेष्ठ और सुंदर कहानी-लेखक हैं। आप पंजाब के निवासी हैं। चरित्र और

मनोभावों का चित्रण आपकी कला की विशेषता है । कविता भाव-प्रधान, वेदना-पूर्ण और सुंदर लिखते हैं । कई वर्ष हुए, आपकी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित हो चुका है । 'विश्व-प्रिया' अभी अप्रकाशित है । इस समय आप 'विशाल भारत' के संपादक हैं ।

वसंत-स्वर*

तरु पर कुहुक उठी पडकुलिया ।
मुझमें सहसा स्मृति-सा बोला
गत वसंत का सौरभ छलिया ।
किसी अचीन्हे कर ने खोला
द्वार किसी भूले यौवन का ;
फूटा स्मृति-संचय का फोला !
लगा फेरने मन का मनका ।
पर हा ! यह अनहोनी कैसी,
बिखर गया सब धन जीवन का !
जीवन - माला पहले - जैसी,
किंतु एक ही उसमें दाना ;
तू निरुपम था, अपने ऐसी !
तेरा कहा न मैंने माना ।
'भर लो अपनी अनुभव-डलिया !'
प्रियतम अब क्या रोना-धोना !
'भर लो अपनी अनुभव-डलिया !'
धूल-धूल मधु की रँगरलियाँ !
परिचित भी तू रहा अनचीन्ही ।
तरु पर कुहुक उठी पडकुलिया !

---

* अप्रकाशित 'विश्व-प्रिया' में ।

मनोरंजन

श्रीयुत मनोरंजन एम्० ए० पुराने और हिंदी के नवयुग के कवियों में प्रतिष्ठित हैं। आपकी कल्पना सीधी और सरस होती है। भाव भी आकर्षक और मधुर होते हैं। कई वर्षों से आप कविता लिख रहे हैं। भाषा प्रौढ़, शुद्ध और सुलझी हुई लिखते हैं। आपकी कविताओं का संकलन 'गुनगुन' नाम से प्रकाशित हुआ है। बिहार के कवियों में आपका स्थान श्रेष्ठ है।

जीवन-तरु

मेरे जीवन - तरु की डाली।
कितनी कोमल, कितनी सुंदर,
कितनी मनमोहक है आली!
जीवन - मदिरा पी झूम रही,
स्वच्छंद हवा में घूम रही।
कुछ हँसती-सी कुछ मस्ती से
डाली डाली को चूम रही।
कुछ झुक - झुककर, कुछ उभक - उभक
है नाच रही हो मतवाली।
मेरे जीवन - तरु की डाली।
मस्ती से लचक लचक डोली,
झुककर अस्फुट स्वर से बोली,
जागो आली, मधु-ऋतु आया,
मधुवन में है कोकिल बोली।
वह देखो, वन की सखियों में
जागी नवकुसुमों की लाली।
मेरे जीवन तरु की डाली।

कुछ सकुची-सी आ गई कली,
घिर आईं मधुपों की अवली,
धीरे से अवगुंठन सरका
मृदु, मंद सुरभि ले वायु चली।
खुलकर इसको खिल लेने दे,
मत तोड़, अरे निष्ठुर माली!
मेरे जीवन-तरु की डाली।
यह आप स्वयं झड़ जाएगी,
गिरकर भू पर पड़ जाएगी,
फिर बात न पूछेगा मधुकर,
आँधी भी धूल उड़ाएगी।
इसकी आग में परवाह किसे,
सब नाचेंगे दे-दे ताली।
मेरे जीवन-तरु की डाली।

विनयकुमार

श्रीयुत विनयकुमार मध्यप्रांत के नवयुवक और भावुक कवि हैं। इधर आपने कुछ कविताएँ ऐसी लिखी हैं, जो आकर्षक, सुंदर और सरस हैं। कविता की भाषा उतनी मँजी अभी नहीं होती, किंतु भाव कोमल और सुंदर होते हैं।

पहेली

जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया?
जाने क्यों निशि-निशि जाग प्रिये! इन आँखों में भिनसार किया?

"झूठे जग के व्यापार सभी,
छोड़ो, किस धुन में कहाँ चले ?
बुझ गए उषा में जो देखो,
प्रियतम ! संध्या के दीप जले ?"
तुम मुझसे कहती रही प्रिये ! पर मैंने कब स्वीकार किया ?
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
इस जगती में आकर मैंने
अपने को सुख-दुख में न भुला ;
बच पाप-पुंज की उलझन से
परलोक अचिंतन में न घुला !
अज्ञात-प्रणय की पूजा की, पागलपन का सत्कार किया।
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
पतझड़ में झाड़ खड़े चुप थे
अनिमेष, उदास सभी वन में !
जब भर लाए रस के दोने
ऋतुराज अचानक ही मन में !
पल्लव डालों पर थिरक उठे, कोकिल ने त्वरित सितार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
सर सूख रहे थे गरमी से,
ज्वाला सुलगी थी भूतल में ;
जब गरज उठे घनश्याम सजल
सूनी दिशि-दिशि के अंचल में !
सुर-चाप लिए सौदामिनि ने पल-पल आलोक-प्रसार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
सुख को मृदु शय्या छोड़ प्रिये !
निर्जन में टीलों पर सोया ;

जब आँख खुली, सुध-सी आई,
तृण-तरु से लिपट-लिपट रोया !
फिर आँसू पोंछ हँसा क्यों मैं ? जी में कुछ नहीं विचार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?
वे दुर्दिन थे, जिनमें मेरी
तुमसे कोई पहचान न थी ;
मैं गायक था माना, इतनी पर
सरस-सुरीली तान न थी ?
यश गूँज उठा त्रिभुवन-भर में, जब तुमने स्वर-शृंगार किया !
जाने क्यों मैंने गीत रचे, जाने क्यों मैंने प्यार किया ?

रसिकरंजन रतूड़ी

श्रीयुत रसिकरंजन रतूड़ी हिंदी के सुकवि और काव्य-मर्मज्ञ हैं। यद्यपि आपकी छायावादी कविताओं की कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है, किंतु भावना और अनुभूति-प्रधान कविताएं अनेक वर्षों से लिख रहे हैं। कविताओं में रहस्यवाद की सुंदर पुट है। सांसारिकता के साथ ही नैसर्गिक, रहस्य-पूर्ण वातावरण का सुंदर चित्रण आपकी कविताओं की विशेषता है। भाषा में भावुकता है, जटिलता नहीं। विचार भाव-पूर्ण हैं, निरर्थक नहीं।

जीवन-प्याला

था छलक रहा जीवन-प्याला, पीना मैंने जब शुरू किया ;
कुछ होश न था, परवाह न थी, सब भय था मैंने भुला दिया।
ग़लती करती हूँ, ध्यान न था,
बस किसी बात पर कान न था।
सब सखी-सहेली गईं हार, शिक्षा उनकी वह व्यर्थ हुई ;
बस रात स्वर्ग में नए-नए रचने में खूब समर्थ हुई।

पर रहे घूँट जब दो बाक़ी,
जा लुका कहीं नटखट साक़ी।
संगी सब चलनेवाले थे, था बुझने को तैयार दिया;
तब 'हाय! हाय! क्या किया!!' सोचकर काँप अचानक उठा हिया!
वह मस्ती मेरी हुई चूर;
वे स्वर्ग जा पड़े कहीं दूर।
मैं छुईमुई-सी लज्जित थी, कहती थी—"प्यारे, प्राण, पिया!"
उस रूप-ज्योति ने आ चुपके हृतल में मुझे उबार लिया।

श्रीवास्तव-बहनें

लखनऊ की दो शिक्षित कवयित्रियाँ—अभिन्न-हृदय बहनें कुमारी सावित्री श्रीवास्तव और कुमारी सरस्वती श्रीवास्तव भाव-पूर्ण और नवीन ढंग की रचना लिखने में अपनी सुंदर प्रतिभा का परिचय दे रही हैं। कविताओं में मौलिकता है, और हृदयस्पर्शी भावनाओं का मार्मिक चित्रण। अनुभूति की अभिव्यक्ति भी कुछ रचनाओं में सुंदरता से प्रकट हुई है। भाषा स्वच्छ और स्पष्ट है। इन बहनों के माता-पिता ऊँचे दर्जे के, हृदयवान्, उदार विचारों के, सुलझे हुए व्यक्ति हैं, पुराण-पंथी नहीं। उनका ही प्रभाव दोनो बहनों पर पड़ा है। श्री एम्० बी० सिंह कई भाषाओं के पंडित, काव्य-रसिक और हिंदी-प्रेमी सज्जन हैं, और अपनी इन होनहार प्रिय पुत्रियों की काव्य कला की ओर रुचि देखकर निरंतर उन्हें उत्साहित करते रहते हैं। दोनो बहनें अनेक पदक-पुरस्कार प्राप्त कर चुकी हैं। उनकी एक-एक रचना क्रम से यहाँ दी जाती है—

मधु-प्याली

मधु-प्याली मेरे जीवन की है खाली हे मेरे साक़ी!
विश्वास न हो, तो आ देखो, है नहीं ज़रा मदिरा बाक़ी।

इस मधुशाला पर ही मधु-ऋतु में मैं ढूँढ रही हूँ मधु-शाला,
पर नहीं पता पाती, क्षण-क्षण बढ़ती जाती जी की ज्वाला।
मैं नहीं खोजती वह शाला, मद जहाँ लोग करते हैं क्रय;
मेरा मदिरालय तो अनंत, जिसमें सब रस होते है लय।
मेरा साक़ी सबका साक़ी, मेरी हाला सबकी हाला,
है समता का साम्राज्य यहाँ, मेरी शाला सबकी शाला।
मैं व्यर्थ हेरती थी साक़ी, तू सदा पास ही था मेरे;
बस, सरस स्नेह मधु ढाले जा, यह मधु-प्याली सम्मुख तेरे।

करुणा

प्रतिमा हूँ मैं पीड़ा की, साकार मूर्ति करुणा का,
जग देख सके, तो देखे मेरी यह बाँकी झाँकी।
ओ पथिक, सुनेगा क्या तू जीवन की करुण कहानी?
मेरी रग-रग में पीड़ा, मैं हूँ पीड़ा की रानी।
जीवन का कोई भी पल पीड़ा से रहित न पाया,
मेरी जगती का रस है केवल पीड़ा की माया।
पीड़ा में रीती होगी जिस क्षण जीवन की प्याला,
अँधियारी, सूनी, अंतिम होगी वह रात निराली।
मैंने अपने जीवन में करुणा का रस ही जाना;
उसमें भी करुणामय की सकरुण छवि को पहचाना।
करुणा में ही जब पाई उस करुणाकर की छाया;
उन करुण पदों में रत हो मेरे पीड़ित मन, काया।

उत्तमोत्तम काव्य-पुस्तकें

१—दुलारे-दोहावली

(सप्तमावृत्ति)

लेखक, सुधा-संपादक पं० दुलारेलाल भार्गव। दुलारे-दोहावली की जितनी धूम पिछले दो वर्षों मे हिंदी संसार में रही, उतनी और किसी भी पुस्तक की नहीं। इसीलिये इसके ६ संस्करण बिक गए। इसी पर सबसे पहला देव-पुरस्कार मिला। अब यह संशोधित और परिवर्धित सुंदर सप्तम संस्करण निकला है। पुस्तक की भूमिका मे कविवर 'निराला'जी लिखते हैं—"हिंदी के वर्तमान कवियों और समालोचकों मे जो अग्रगण्य माने जाते हैं, उनमे से कोई-कोई मुक्त-कंठ से स्वीकार करते हैं कि कविवर श्रीदुलारेलाल वर्तमान समय में व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, और उनकी दोहावली व्रजभाषा-साहित्य की वर्तमान सर्वोत्तम कृति। इसकी व्रजभाषा की कोमलकांत पदावली, शृंगार और करुण-रस के कोमलतम मनोभावों की मंजुल, सजीव कल्पना-मूर्तियाँ, वीर-रस की ओजस्विनी सूक्तियाँ, देश-प्रेम का छलकता हुआ प्याला, शांत रस की सुधा-धारा, रसानुकूल अलंकृत भाषा का मुहाविरेदार प्रयोग और संक्षेप मे कहने का अद्भुत कौशल आदि एक ही जगह देखकर जी प्रसन्न हो जाता है।" इसके अतिरिक्त रत्नाकरजी, शंकरजी, सनेहीजी, पं० पद्मसिंहजी शर्मा, रायबहादुर डॉक्टर हीरालाल, पं० सुमित्रानंदन पंत, पं० हरिशंकरजी शर्मा ने दुलारे-दोहावली के दोहों की सदा प्रशंसा की है। इस संस्करण मे पं० लोकनाथजी सिलाकारी की विस्तृत भूमिका और दो सौ दोहों से ऊपर चुने हुए दोहे दिए

गए हैं। मूल्य सस्ता संस्करण ॥), सजिल्द १), साधारण संस्करण १), सजिल्द १॥) राजसंस्करण २॥), सजिल्द ३)

२—कल्पलता

लेखक, कवि-सम्राट् श्रीप० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध'। वर्तमान हिंदी संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो महाकवि प० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय से परिचित न हो। प्रस्तुत पुस्तक खड़ी बोली मे लिखी गई है। यह आपकी मुक्तक रचनाओं का सुंदर संग्रह है। मुहाविरेदार, चलती हुई खड़ी बोली का उपयुक्त उपयोग काव्य-क्षेत्र मे किस प्रकार हो सकता है, यह इस पुस्तक से ज्ञात हो जाता है। उर्दू की काव्य-भाषा में मुहाविरों का सदुपयोग तथा शब्दों का सुप्रयोग ही प्राण होता है, इससे उर्दू की कविता सरल, सुबोध होकर सुंदर तथा समाकर्षक हो जाती और अपने भावों को पाठकों या श्रोताओं को हृदयंगम करा स्थायी-सा कर देती है। इसी को हिंदी-कविता में भी लाने का सफल तथा सराहनीय प्रयत्न इस पुस्तक मे किया गया है। छंद भी बड़े ही सुंदर, सरल और सुगेय चुने गए हैं। ये हृदय-हारिणी, मनोहर कविताएँ अवश्य पढ़िए। मूल्य १॥), सजिल्द २)

३—बिहारी-रत्नाकर

(।, ॥॥।)

महाकवि बिहारी की जगत्प्रसिद्ध सतसई पर अद्वितीय हिंदी-भाष्य। भाष्यकार, व्रजभाषा-साहित्य के पारदर्शी, मर्मज्ञ विद्वान् स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए०। संपादक, देव-पुरस्कार के सर्व-प्रथम विजेता श्रीदुलारेलाल भार्गव। सुधा-आकार। छपाई-सफ़ाई आदर्श। जिल्द और सजावट भी अपूर्व। हिंदी में इसके जोड़ का

कोई सटीक महाकाव्य नहीं । इस बृहद् ग्रंथ ने हिंदी संसार के व्रज भाषा-साहित्य में युगांतर उपस्थित कर दिया । यू० पी० की विशेष योग्यता और आगरे, बनारस आदि विश्वविद्यालय में कोर्स है । बिहारी और जयशाह आदि के असली चित्र । सजिल्द मूल्य ५)

४—हिंदी-नवरत्न

लेखक, हिंदी-संसार के प्रख्यातनामा समालोचक 'मिश्रबंधु' । इस पुस्तक की प्रशंसा बड़े-बड़े विद्वानों ने की है । हिंदी-भाषा के सर्वोत्तम कविरत्नों के आलोचना-पूर्ण जीवन-चरित्र इसमें हैं । साहित्य-प्रेमी और साधारण जन, सबको समान भाव से यह पुस्तक आनंद देती है । इस बार यह पुस्तक पहले से लगभग दुगुनी बड़ी और दसगुनी उपयोगी हो गई है । इसे सामयिक और सर्वांग-पूर्ण बनाने में कोई भी चेष्टा बाकी नहीं रक्खी गई । अब तक की साहित्यिक खोजों के अनुसार संशोधन और सवर्द्धन होने से पुस्तक अप-टु-डेट हो गई है । ११ तिरंगे सुंदर चित्र । कई शिक्षा-संस्थाओं द्वारा स्वीकृत । मूल्य ४॥), स० ५)

५—साहित्य-सागर

(नया रीति-ग्रंथ)

लेखक, श्रीमन्महाराजाधिराज काशीश्वर ग्रहनिवार पंचम विंध्येल-वंशावतंस श्रीमत्सवाई महाराजा साहब भारत-धर्मेंदु सर सावंतसिंहजू देव बहादुर के० सी० आई० ई० बिजावर-नरेश के राजकवि ब्रह्मभट्ट-वंशोद्भव कविभूषण, कविराज पं० बिहारीलालजी ।

कविराजजी ने कई नरेशों के दरबारों में अपनी काव्य-प्रतिभा का चमत्कार दिखलाकर सम्मान और पुरस्कार प्राप्त किया है । अनेक कवि-सम्मेलनों और कवि-समाजों ने पुरस्कार तथा पदक

देकर आपका आदर किया है। लोग आपको कवि मानते हैं, कविता ही आपका धंधा है। कहने का मतलब यह कि दिन-रात, तीस दिन, बारहो महीने काव्य के ही रंग मे रहा करते हैं। लगातार अनेक वर्षो तक इनकी योग्यता का प्रमाण प्राप्त करने के अनंतर काव्य-मर्मज्ञ श्रीमान् बिजावर-नरेश ने इन्हे 'साहित्य-सागर'-नामक यह रीति ग्रंथ लिखने की आज्ञा दी, और साधन जुटा दिए। लेखक ने तीन वर्ष के लगातार अथक परिश्रम मे इस ग्रंथ को लिखा है। इसमें लगभग २००० छंद हैं। यह ५६० पृष्ठों का विशालकाय रीति-ग्रंथ है, जिसमे षट् प्रत्यय, मात्रिक और गण-छंद, नायिका-भेद, रस एव अलकार आदि काव्य के विविध अंगो के लक्षणो का विवेचन, उदाहरणो-सहित, किया गया है। कवि और कविता-प्रेमियो के काम की चीज़ है। बड़े साइज़ मे दो भागों मे पुस्तक छपी है। मूल्य प्रथम भाग सादी २।।), सजिल्द ३) ; द्वितीय भाग सादी २।।), सजिल्द ३)

६—देव और बिहारी

लेखक, हिंदी-काव्य-मर्मज्ञ एव श्रेष्ठ समालोचक प० कृष्णबिहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०। इस ग्रंथ मे देव और बिहारी, दोनो कवियो की तुलनात्मक समालोचना की गई है। इस पुस्तक के पढ़ने मे दोनो कवियो के कमनीय कवित्व, प्रचड पांडित्य और प्रखर प्रतिभा का प्रकाश सहज ही नेत्रों को आनंद से विकसित कर देता है। इस पुस्तक के विषय मे हिंदी-संसार मे जितनी हलचल हुई है, उतनी किसी भी आलोचना-ग्रंथ पर नही हुई। अनेकों शिक्षा-सस्थाओं मे स्वीकृत भी है। भाषा बड़ी सजीव और लेखन-प्रणाली परम मनोरंजिनी। मूल्य १।।।), सजिल्द २)